मत्स्य—पुराण

(द्वितीय खण्ड)

मत्स्य–पुराण

(द्वितीय खण्ड)

[सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण]

दो शब्द

पुराणों का मुख्य उद्देश्य धर्म-कथाओं और धर्म-इतिहास का वर्णन करना माना गया है,पर बहुसंख्यक पुराणों में इनके अतिरिक्त विभिन्न कलाओं और विद्याओं का विवेचन भी बड़े विस्तारपूर्वक किया गयाहै। नारद पुराण, गरुड़ पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नारद पुराण में वेद के छ:अंगों—शिक्षा,कला व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द शास्त्र का जैसा विस्तृत और विशद वर्णन किया गया है उसे देखकर आश्चर्य होता है।गरुड़ पुराण में रोग और औषधियों का जितना वर्णन मिलता है,उससे उसे एक छोटा-मोटा पृथक् आयुर्वेद ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज-सञ्चालन सम्बन्धी सैकडों पृष्ठ व्यापी एक पूरा शास्त्र ही मौजूद है।

'मत्स्यपुराण' के इस दूसरे खण्ड में भी 'राजनीति, गृह निर्माण विद्या' और 'मूर्तिकला' का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। इसमें केवल राजा के कर्त्तव्य और प्रजापालन का उपदेश दिया गया है,वरन् राजधानी का नगर किस प्रकार बसाया जाय, किलाबन्दी किस प्रकार की जाय, अपनी रक्षा और शत्रुओं का सामना करने के लिए उसमें कैसे अस्त्र-शस्त्रों, युद्ध—सामग्री और हर तरह के घायलों की चिकित्सा, जड़ी-बूटियों तथा औषधियों का संग्रह किया जाय इसका वर्णन दस—बीस अध्यायों में विस्तार के साथ किया गया है।

प्रासाद, भवन, गृह आदि के निर्माण में भी इस देश की प्राचीन 'वास्तु विद्या' (इन्जीनियरिंग)का ज्ञान भली प्रकार प्रदर्शित किया गया है। मकानों में द्वार किस तरफ बनाये जायें और खम्भों के निर्माण में किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है? इसमें चौकोर से लेकर बत्तीस पहलों तक के तरह-तरह के खम्भों का जो वर्णन मिलता है उससे उस जमाने के लोगों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है।

देवताओं की मूर्ति निर्माण में तो काफी जानकारी का होना अनिवार्य ही है। प्रत्येक देवता की मूर्तिमें क्या विशेष लक्षण रखे जायें जिस

से उसे ठीक-ठीक पहिचाना जाय और उसके समस्त साम्प्रदायिक चिन्ह उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ सकें ? उदाहरण के लिये विष्णु-भगवान् की मूर्ति- निर्माण में वर्णन किये कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—

"शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाला—परम प्रशान्त उनका मस्तक छत्र के आकार से संयुत होता है। शंख के समान ग्रीवा, शुभ नेत्र, ऊँची नाक, सीप के से कान, परम प्रशान्त उरु वाला उनका रूप होता है। उनकी मूर्ति कहीं आठ भुजाओं और कहीं चार भुजाओं से युक्त होती है। यदि भुजा बनाई जायें तो खंग, गदा, शर, दिव्य पद्म ये सब आयुध विष्णु जी के दक्षिण भाग में होने चाहिये और धनुष, खेटक, चक्र ये चार भुजा वाले स्वरूप में गदा और पद्म दक्षिण भाग में और शंख तथा चक्र वाम भाग में रखे जायें। उनके नीचे की ओर पैरों के मध्य भाग में पृथ्वी की कल्पना करनी चाहिये। दक्षिण भाग में प्रणति करते हुये गरुड़ और वाम के हाथों में पद्म धारण किये लक्ष्मी देवी को विराजमान करना चाहिये। विभूति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गरुड़ की स्थापना भगवान् के सम्मुख भाग में करनी चाहिए। दोनों पार्श्वों में पद्म से संयुक्त श्री तथा पुष्टि की स्थापना करे। विद्याधरों के ऊपर तोरण बनावे और उसे दुन्दुभिनाद करते हुए गन्धर्व, लतायें, सिंह और व्याघ्र आदि से सजाये।"

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के विशेष चिन्हों का मूर्तियों में दर्शाने का पूरा विवरण दिया गया है। अन्त में सब मूर्तियों के अङ्ग अनुपात के अनुसार कितने बड़े और छोटे होने चाहिये इसको भी स्पष्ट कर दिया गया है। एक जगह कहा गया है कि "मूर्ति की कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए। स्त्री-मूर्ति की कटि बाईस अंगुल की रखी जाती है और दोनों स्तन बारह-बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह बयालीस अंगुल का अभीष्ट होता है। पुरुषों में यह विस्तार पचपन अंगुल होता है। दोनों कन्धे छः-छः अंगुल के बताये

गये हैं। ग्रीवा आठ अंगुल और दोनों भुजाओं का आयाम ब्यालीश अंगुल का होता है।" इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अङ्ग की—हथेलियों और पाँच अंगुलियों तक की नाप ठीक-ठीक बतलाई गई है, जिससे मूर्ति सब प्रकार से सुन्दर दिखाई दे और उसमें कहीं वेडौलपन न हो।

और भी कई अन्य महत्वपूर्ण विषय इस खण्ड में मिलते हैं। भृगु, अङ्गिरस, अत्रि, कुशिक, कश्यप, वसिष्ठ आदि सभी प्रमुख ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश, प्रवर स्पष्ट रूप में दिये गये हैं। ये ऋषि भारतीय संस्कृति के आदि जनक माने जाते है और अधिकांश पौराणिक उपाख्यान इन्हीं वंशों से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है। नरसिंह और वाराह अवतारों के चरित्र के विषय में भी मत्स्य पुराण का वर्णन कुछ विशेषता लिये हुए है। देवासुर संग्राम में दोनों पक्षों के सेनानायकों तथा वीरों का परिचय और उनका संग्राम कवि कल्पना का अच्छा परिचय देने वाला है। सावित्री सत्यवान की कथा इस पुराण में भी छः सात अध्यायों में दी गई है और उसकी वर्णन शैली प्रभावशाली है। मंगल-अमंगल सूचक शकुनों, तरह-तरह के स्वप्नों और अङ्गों को फड़कने का जो फलादेश दिया गया है वह अधिकांश पाठकों को आकर्षक जान पड़ेगा।

अठारहों पुराणों के स्तर पर विचार करते हुए "मत्स्य पुराण" को महत्वपूर्ण ही माना जायगा। यह न बहुत अधिक बड़ा है और न बहुत छोटा और पुराण के पाँचों अंगों के साथ इसमें पर्याप्त जीवनोपयोगी और समाज की दृष्टि से प्रगतिशील विद्याओं और कलाओं का परिचय दिया गया है। यद्यपि हम एक हजार पृष्ठ में सब बातों को पूरे विस्तार के साथ नहीं दे सकते तब भी संशोधित संस्कारण में पाठकों को सभी आवश्यकीय बातों का ज्ञान हो सकेगा और वे स्वयं इसके महत्व को अनुभव कर सकेंगे।

—सम्पादक

मत्स्य पुराण

(द्वितीय खण्ड)

६१—नरसिंह माहात्म्य वर्णन

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ।१
पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः ।२
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ।३
ततः शमदमाभ्याञ्च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ।४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ।५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।६
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ।७

ऋषिगण ने कहा—हे मुनिवर ! इस समय में हम लोग हिरण्य-कशिपु के वधके विषय में श्रवण करने की इच्छा रखते हैं तथा भगवान्

नरसिंह प्रभु के माहात्म्य को भी सुनना चाहते हैं जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है ।१। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र-वृन्द ! पहिले कृत युग में हिरण्यकशिपु राजा दैत्यों का आदि पुरुष था और उसने दश सौ दश हजार वर्ष तक महान् घोर तपश्चर्या की थी । वह स्नान-मौन और व्रतको धारण करने वाला होकर जलमें ही निवास करने वाला हो गया था २३। इसके अनन्तर उस हिरण्यकशिपु दैत्य-राज के उस महान् उग्र तप से और नियमों के परिपालन से शमदम और ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्माजी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये थे । जब वे अत्यधिक प्रसन्न हो गये तो स्वयम्भू भगवान् स्वयं ही वहाँ पर उसके तप के स्थल पर आ गये थे । हंसयुक्त-सूर्य के समान वर्ण वाले भास्वान् विमान के द्वारा ब्रह्माजी ने वहाँ पर पदार्पण किया था । उस समय में उनके साथ आदित्य, वसुगण, साध्य, मरुद्गण, दैवत, रुद्र, विश्व सहायक, यक्ष, राक्षस, पन्नग, दिशायें, विदिशायें, नदियाँ, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त्त, खेचर और महान् ग्रह सब थे ।४-७।

देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ।८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ।९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनसुव्रत !
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ।१०
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम ! ।११
ऋषयो वा न मां शापः शपेयुः प्रपितामह ।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतोमया ।१२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाऽथवा ।१३

भवेयमहमेवार्कः सोमोवायुर्हुताशनः ।
सलिलञ्चान्तरिक्षञ्च नक्षत्राणि दिशो दश ।१४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ।१५

ब्रह्माजी जब वहाँ आये थे तो वे देवगण, ब्रह्मर्षि, सिद्ध और सप्तर्षियों के साथ में थे । बड़े २ राजर्षि, पुण्यवान्, गन्धर्व, अप्सराओं के समुदाय तथा समस्त दिवौकसों के साथमें वे चरों और अचरोंके गुरु ब्रह्मवेत्ताओं में परम श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी परिवृत थे । वहाँ पहुँचकर जगद्गुरु ब्रह्माजी ने उस दैत्यराज से यह वचन कहा था ।८-९। हे सुव्रत ! तुम मेरे परम भक्त हो । मैं इस समय में आपके इस अत्यन्त उग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण हो, अब जो भी कोई वरदान मुझसे चाहते हो माँग लो और जो भी आपकी परम अभीष्ट कामना हो उसे प्राप्त करलो ।१०। वह ब्रह्माजी का वचन सुनकर हिरण्यकशिपु ने कहा—हे देव सत्तम ! मैं यही चाहता हूँ कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, पिशाच और मानुष कोई भी मेरा हनन न करें ।११। हे प्रपितामह ! ये ऋषिगण भी अपने शापों के द्वारा मुझे अभिशप्त न करने पावें । यदि भगवान् आप मुझपर पूर्णतया प्रसन्न हो गये हैं तो मैं आपने यही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ।१२ हे भगवन् ! मेरी मृत्यु का साधन कोई भी अस्त्र, शस्त्र, गिरि, पादप, आदि न होवें अर्थात् इनमें किसीके भी द्वारा मैं न मारा जा सकूँ । मैं किसी भी शुष्क स्थल में अर्थात् भूमि पर और आर्द्र भाग में अर्थात् जल में न मरूँ । मुझे दिन में तथा रात्रि में किसी भी समय में मृत्यु न आवे अर्थात् मुझे दिन और रात में कोई भी न मार सके ।१३। हे ब्रह्मन् ! मैं ही सूर्य हो जाऊँ तथा सोम-वायु और हुताशन मैं ही बन जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे अन्दर ही हो जावे । मैं ही सलिल-अन्तरिक्ष, नक्षत्र, दशों दिशाएँ हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे

ही अन्दर उपस्थित हो जावे। हिरण्यकशिपु ने कहा कि मैं क्रोध, काम वरुण इन्द्र, यम, धनद, धन का स्वामी, किम्पुरुषों का अधिप यक्ष हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी क्षमता मेरे ही अन्दर हो जानी चाहिए और मेरे सामने ये सब शक्तिहीन हो जावें।१४-१५।

एते दिव्या वरास्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कर्मान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्वं न संशयः ।१६
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।१७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ।१८
वरप्रदानाद्भगवन् ! वधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ।१९
भगवन् ! सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः ।
स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुधः ।२०
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभिः ।२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! ये सब दिव्य वरदान हैं और बहुत ही अद्भुत हैं किन्तु मैंने तुमको ये सभी वरदान दे दिये हैं। हे वत्स ! तुम अपने सम्पूर्ण कामों को सदा प्राप्त कर लोगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।१६। इस प्रकार से उन भगवान् ब्रह्माजी ने कहा था और फिर आकाश के मार्ग से ही वापिस चले गये थे। ब्रह्माजी उस समय में ब्रह्मर्षि गणों से सेवित ब्रह्माजी के घर वैराज को चले गये थे।१७। इसके पश्चात् देव, नाग, गन्धर्व आदि सब ऋषिगण के साथ इन वरों के प्रदान को सुनकर ही ब्रह्माजी पितामह के समीप में उपस्थित हुए थे।१८। देवगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके इस प्रकार के वरदानों के दे देने से तो यह हमारा सबका वधकर डालेगा। हे भगवन् !

इसलिये आप प्रसन्न होइये और शीघ्र ही इसका कोई वध होने का वध होने का उपाय भी सोचिये ।१९। हे भगवान् ! आप तो समस्त भूतों के आदि कर्त्ता है और स्वयं प्रभु हैं । आप हव्य-द्रव्यों के सृजन करने वाले हैं । अव्यक्त प्रकृति और परम बुध है । इस समस्त लोकों के हित करने वाले वाक्य को सुनकर प्रजापति देव ने सब सुरों को सुशीतल वचन रूपी सुन्दप जलों के द्वारा समाश्वासन दिया था ।२०-२१।

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ।२२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ।२३
लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपु दैत्यो वरदानेन दर्पितः ।२४
आश्रमेषु महाभगवान् स मुनीन् शंसितव्रतान् ।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयमास दानवः ।२५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ।२६
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियाञ्च देवताः ।२७
तदादित्याश्चे साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
सेन्द्रा देवगणायक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ।२८
शरणं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवदेव यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ।२९

हे देवगणो ! उस असुर ने तपस्या की है अतएव उसका फल तो उसे अवश्य ही प्राप्त करना ही था । इस तप के फल के अन्त हो जाने

पर इसका वध भगवान् विष्णु ही करेंगे ।२२। हे विप्रो ! उस समय में सब देव पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले पितामह के इस वाक्य को श्रवण कर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानों को चले गये थे ।२३। ऐसे वरदानों के प्राप्त होने के साथ ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण प्रजाओं को बाधा पहुँचाने लगा था। वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त दर्पित हो गया था अर्थात् उसे बड़ा घमंड हो गया था ।२४। वह दानव जो अपने-अपने आश्रमों में रहने वाले महाभाग मुनिगण थे और जो शसित व्रतों वाले-सत्यधर्म में परायण एवं परम दमनशील सत्पुरुष थे उन सबको घर्षित करने लगा था ।२५। त्रिभुवनों में स्थित देवों को उस महासुर ने पराजित करके पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में ले लिया था और वह दानव स्वयं स्वर्ग में निवास किया करता था। जिस समय में वह वरदान के मद से अत्यन्त ही उत्सिक्त हो गया था तब वह काल के धर्म से प्रेरित हो गया और उसने दैत्यों को यज्ञिय बना दिया था और अयज्ञियों को देवता कर दिया था।२४-२७। उस समय में आदित्य, साध्य, विश्वेदेवा वसुगण इन्द्र के सहित देवगण, यक्ष, सिद्ध, द्विज, और महर्षि, वृन्द सबके सब महान् बल सम्पन्न भगवान् विष्णु की शरणागति में पहुँचे थे जो प्रभु देवों के भी देव—यज्ञमय सनातन वासुदेव थे और आप ही हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं—यह प्रार्थना करने लगे थे ।२८-२९।

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणंगताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ! ।३०
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ।
त्वं हि नः परमोदेवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ।३१
भयन्त्यजध्वममरा अभयं वो ददान्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ।३२

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणं दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ।३३
एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्य त्रिदशेश्वरान् ।
वधं सङ्कल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः ।३४
सहायश्च महाबाहुरोंकारं गृह्य सत्वरम् ।
अथोंकारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ।३५

देवगण ने भगवान् विष्णु से कहा—हे नारायण ! आप तो महान् भाग वाले हैं । हम समस्त देवगण आपकी शरणागति में उपस्थित हो गये हैं । हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करो और इस दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु का वध करो ।३०। हे सुरोत्तम ! हम सबके आप ही परम धाता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं—आप ही हमारे सर्वोपरि विराजमान देव हैं और ब्रह्मा आदि सब में आप सवश्रेष्ठ देव हैं ।३१। भगवान् विष्णु ने कहा—हे अमर गणो ! भय का पूर्ण रूप से त्याग करदो-मैं आपको अभय का दान करता हूँ । हे देवताओ ! पूर्व की ही भाँति आप सब लोग अपने त्रिदिव को पुनः बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लोगे । ।३२। यह मैं ही वरदान प्राप्त करने ये अत्यन्त घमन्ड में भरा हुआ जो यह दैत्यराज है उसको गणों के सहित मार दूंगा जो कि यह दानवेन्द्र अन्य सग अमरेन्द्रों के द्वारा अवध्य है ।३३। इस प्रकार से कहकर भगवान् ने उन सब त्रिदशेश्वरों को विसर्जित कर दिया था और फिर प्रभु ने उस दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु वध के करने के लिए मन में संकल्प किया था ।३४। सहायता करने वाले महाबाहु प्रभु ने बहुत शीघ्र ओङ्कार का ग्रहण किया था । इसके अनन्तर अव्यय भगवान् विष्णु ओङ्कार की सहायता वाले हो गये थे ।३५।

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः ।
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येवचापरः ।३६
नरस्य कृत्वार्द्धं तनुं सिंहस्यार्द्धं तनुं तथा ।

नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।३७
ततोऽपश्यत विस्तीर्णा दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ।३८
विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम् ।
वैहायसींकामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम् ।३९
जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम् ।
वेश्महर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।४०
अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्म्मणा ।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ।४१
नीलपीतसितश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ।४२

ईश्वर हरि भगवान् हिरण्यकशिपु के स्थान को गये थे। उस समय में वह तेज से भास्कर के आकार के तुल्य और कान्ति से एक दूसरे चन्द्रमा के समान थे। नर का आधा शरीर बनाकर तथा आधा शरीर सिंह का धारण करके नरसिंह वपुसे युक्त होकर, पाणि के द्वारा पाणि का स्पर्श करते हुए हरि हिरण्यकशिपु की सभामें पहुँचे थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अत्यन्त विस्तीर्ण,दिव्य, रम्य, मनोरम, समस्त कामों से समन्वित और शुभ्र दैत्यराज हिरण्यकशिपु की सभा का अवलोकन किया था।३६—३८। वह सभा सौ योजन विस्तार वाली—शत मध्यर्द्ध, वैहायसी, काम पूर्वक गमन करने वाली तथा पाँच योजन विस्तृत थी।३९। हिरण्यकशिपु की सभा जरा शोक और क्लम से अपेत अर्थात् रहित थी तथा निष्प्रकम्प—शिव—सुखप्रद–वेश्म और हर्म्यों से संयुत रम्य एवं तेज से जाज्वल्यमान जैसी थी।४०। इस सभा के मध्य में सलिल रहता था और इसकी रचना विश्वकर्मा के द्वारा की गयी थी। वह सभा परम दिव्य फल-पुष्प प्रदान करने वाले रत्नों से परिपूर्ण वृक्षों से समन्वित थी। नील—पीत—सित—श्याम—कृष्ण

लोहित अवतारों से युक्त तथा मंजरी शतधारी गुल्मों से संयुक्त वह सभा थी जिसकी अवर्णनीत शोभा हो रही थी ।४१-४२।

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत ।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ।४३
सुमुखा न च दुःखा सा न शीता न च धर्मदा ।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्यतां प्राप्नुवन्ति ते ।४४
नानारूपैरुपकृता विचित्रैरति भास्वरैः ।
स्तम्भैर्न विभृता सा च शाश्वती चाक्षया सदा ।४५
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।
रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्ष्यभोज्यमनन्तकम् ।४६
पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि संति च ।४७
पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालांकुरधारिणः ।
लताविनानसंच्छन्ना नदीषु च सरःसु च ।४८
वृक्षान् बहुविधांस्तत्र मृगन्द्रो ददृशे प्रभुः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानिच ।४९

सित मेघाभ्र के सदृश वह सभा प्लवन करती हुई जैसी दिखलाई दिया करती थी । रश्मियों से युक्त—परम भास्कर और दिव्यगन्ध से समन्वित एवं मनोहर थी ।४३। सुन्दर सुखों से परिपूर्ण दुःखों से रहित न अधिक शीत-युक्त और न धूप को प्रदान करने वाली थी । वहाँ पर जो भी पहुँच जाया करते थे वे फिर भूख-प्यास और ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ करते थे । नाना प्रकार के रूपों वाले—विचित्र और भास्कर स्तम्भों से उपकृत वह सभा थी । वह विभृता नहीं थी प्रत्युत शाश्वती तथा सदा अक्षया थी । उस सभा में सभी कामनाएं चाहे वे दिव्य हों या मानुषी हों प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहा करती थीं । रस से युक्त अन्त से शून्य प्रभूत भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ उसमें रहा करते थे ।४५।

।४६। इस दैत्यराज की महासभा में पुण्य गन्ध वाले वृक्ष बारहों महीने नित्य ही पुष्प और फलों के प्रदान करने वाले थे । वहाँ पर उष्णकाल में शीतल और शीत काल में उष्ण जल रहा करते थे ।४७। नदियों में और सरोवरों में ऐसे वृक्ष थे जिनके अग्रभाग पुष्पित थे—जिनकी महान् शाखायें थी और जो प्रवालांकुरों के धारण करने वाले थे तथा लताओं के वितानों से संच्छन्न थे ।४८। मृगेन्द्र प्रभु ने वहाँ पर इस प्रकार के बहुत-सी तरह के वृक्षों को देखा था जिनमें गन्ध से युक्त पुष्प थे और रस से समन्वित फल थे ।४९।

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
स्त्रीसहस्रै: परिवृतो विचित्राभरणाम्बर: ।५०
अनर्घ्यंमणिवज्राचिशिखाज्वलितकुण्डल: ।
आसीनश्चासने चित्रे दश मल्वप्रमाणत: ।५१
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते ।
दिव्यगन्धवंहस्तत्रमारुत:सुसुखोववौ ।५२
हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डल: ।
उपचेरुमहादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा ।५३
दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमा: ।
विश्वाची महजन्याच प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ।५४
दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ।
मिश्रकेशीचरम्भाचचित्रलेखाशुचिस्मिता ।५५
चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशीतथा ।
एता: सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदा: ।५६

उस समय में उस सभा में वह दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु समवस्थित था जो स्त्री समुदायों की सहस्र संख्यासे परिवृत था तथा विचित्र आभरण और वस्त्रों से समलंकृत था ।५०। बहुमूल्य मणि और वज्रों की रश्मियों की शिखाओं से ज्वलित कुण्डलों वाला था । दश मल्व प्रमाण

युक्त विचित्र सिंहासन पर वह दैत्यराज समवस्थित था। वह सिंहासन सूर्य के समान परम दिव्य एवं दिव्य आस्तरण से संस्तृत था। वहाँपर दिव्य गन्ध के वहन करने वाला सुन्दर सुख का देने वाला वायु वहन कर रहा था।५१-५२। वहाँ पर जाज्वल्यमान कुण्डलों वाला हिरण्य-कशिपु दैत्यराज स्थित था। उस समय में हिरण्यकशिपु दैत्यराज की परिचर्या बहुत सी अप्सराएँ कर रही थीं।५३। श्रेष्ठ गन्धर्वगण दिव्य मान क द्वारा गीतों का गान कर रहे थे। विश्वाची, सहजन्या, अभि-विश्रुत, दिव्या, सौरभेयी, समीची, पुञ्जिक स्थली, मिश्र केशी, रम्भा शुचिस्मित वाली चित्र लेखा-चारु केशीघृताची-मेनका और उर्वशी ये और सहस्रों अन्य अप्सराएँ जो नृत्य तथा गीतों के गायन करने में परम विशारद उस दैत्यराज की परिचर्या कर रही थीं।५४।५६।

उपतिष्ठन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।५७

उपासन्त दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा।
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः।५८

बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः।
प्रह्लादो विप्रचित्तश्च गविष्ठश्च महासुरः।५९

सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः।
घटादरो महापार्श्वः क्रथनः कठिनस्तथा।६०
विश्वरूपः सुरूपश्च सबलश्च महाबलः।
दशग्रीवश्च वालीच मेघवासा महासुरः।६१

घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः।
दैत्यदानवसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः।६२
स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः।६३

वहाँ पर उस महती राज सभा में समवस्थित महान बाहुओं वाले महाराज हिरण्यकशिपु प्रभु की सेवामें सब उपस्थित होकर सेवायें कर रहे थे ।५७। दिति के सभी पुत्र जिन्होंने वरदान प्राप्त कर लिए थे वे सब सैकड़ों और सहस्रों की महा संख्या में अप्रतिम कर्म वाले उस दैत्य राज की उपासना कर रहे थे । उन दैत्यों में बलि, विरोचन, नरक पृथ्वी सुत प्रह्लाद-विप्रचित्ति महासुर गविष्ठ-सुरहन्ता दुःख हन्ता—सुनामा, सुमति वर, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, कठिन, विश्वरूप,सुरूप सबल, महाबक, दृशग्रीव, वाली, महासुर मेघ बासा, घटास्य, कम्पन, प्रजन, इन्द्र तापन आदि थे । इन सब दैत्य दानवों के संघ थे जो सभी जाज्वल्यमान कुण्डलों वाले थे ।५८-६२। सभी लोग स्रग्वी अर्थात् मालाधारी—वाग्मी और सदैव चरित व्रत वाले थे । इन सभी ने वरदान प्राप्त कर लिए थे—सब शूर वीर और मृत्यु के भय से रहित थे ।६३।

एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
उपासन्ति महात्मानः सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ।६४

विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ।
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः ।६५

भूषिताङ्गा दितेःपुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः ।
तस्यां सभायान्दिव्यायामसुराःपर्वतोपमाः ।६६

हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ।
न श्रुतन्न दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्यथा ।६७

ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः ।
कनकरजतचित्रवेदिकायां परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम् ।६८
कनकविमलहारविभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपोददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभालसं तन्दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ।६९

ये तथा अन्य बहुत-से दिव्य परिच्छन्दों वाले सब असुरगण महान् आत्मा वाले उस प्रभु हिरण्यकशिपु की उपासना कर रहे थे।६४। विविध भाँति के आकार प्रकार वाले अग्निके सदृश भ्राजमान बिमानों के द्वारा अद्भुत अङ्गदों से समलंकृत बाहुओं वाले और महेन्द्र के तुल्य वपु को धारण करने वाले-भूषित अङ्गदोंसे युक्त सब दिति के पुत्र सभी ओर से उस दैत्यराजकी समुपासना कर रहे थे। उस महान् राजसभा में जो कि अत्यन्त दिव्य थी सभी असुरगण पर्वत के समान विशालथे। ।६५-६६। सभी लोग हिरण्यवपु वाले वहाँ पर थे जिनकी दिवाकर के तुल्य प्रभा थी दैत्यों में सिंह के समान उस महान् आत्मा वाले हिरण्यकशिपु का जैसा ऐश्वर्य था वैसा न तो कभी किसी का देखा गया था और न कहीं पर सुना ही गया था। जिस सभा में स्थित होकर वह मृगाधिप नरसिंह देख रहे थे वह भली भाँति निर्मित गवाक्षों से सुशोभित थी और परिहृत किये हुए रत्नों से विचित्र वीथिका वाली थी तथा सुवर्ण एवं चाँदीकी निर्मित अद्भुत वेदिका से समन्वित थी। उन मृगाधिप नरसिंह प्रभु ने सुवर्ण के विमल हारों से विभूषित अङ्गों वाले तथा सूर्य के तुल्य महती प्रभा से युक्त और सैकड़ों एवं सहस्रों दैत्योंके द्वारा सेवित उस दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु को देखा था।६७-६८।

६२—अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम् ।
नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ।१
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादोनाम वीर्यवान् ।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ।२

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभूतपूर्वान्तनुमाश्रितम् ।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ।३
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
न श्रुतं न च नोद्दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ।४
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
दित्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम ।५
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्च याः ।
हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ।६
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह ।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जिस समय में नरसिंह भगवान् उस सभा में पहुँचेथे तो उस समयमें हिरण्यकशिपु के पुत्र वीर्यवान् प्रह्लाद ने महान् आत्मा वाले नरसिंह के शरीर में छिपे हुए साक्षात् आये हुए कालचक्र के समान तथा भस्म में छन्न अग्नि के समान उनको आरम्भ में देखा था ।१-२। वहाँ पर स्थित सब दानवों ने और हिरण्यकशिपु ने भी पूर्व शरीरमें समाश्रित सुवर्णके पर्वत की आभा वाले उन नरसिंह प्रभु को देखकर सभी को उस समय में बहुत विस्मय हो गया था ।३। उसी समय में प्रह्लाद ने कहा था-हे महान् बाहुओं वाले ! हे महा-राज ! हे दैत्यों के आदि जन्मधारी ! मैंने तो अब तक ऐसा नरसिंह वपु न कभी देखा है और न कहीं पर सुना ही है । यह अव्यक्त प्रभव (जन्म) वाला—परम दिव्य क्या रूप सामने आ गया है ! मेरे मन में तो ऐसा ही संशय हो रहा है कि यह कोई घोर स्वरूप वाला दैत्यों के अन्त कर देने वाला ही यहाँ आकर समुपस्थित हुआ है ।४-५। इनके इस विशाल शरीर में समस्त देवगण स्थित हैं—सब सागर—समस्त नदियाँ, हिमवान्, पारियात्र और अन्य सब कुल पर्वत भी इनके शरीर में विद्यमान हैं । समस्त नक्षत्रों के साथ तथा वसुगण और आदित्यों के

सहित चन्द्रमा भी इनमें वर्तमान हैं। धनद (कुबेर)—वरुण-यम और शची का पति इन्द्र देव भी इनके इस नारसिंह शरीर में विद्यमान दिखलाई दे रहे हैं।६-७।

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधना:।
नागा यक्षा: पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमा: ।८
ब्रह्मा देव: पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च।९
भवांश्च सहितोऽस्माभि: सर्वैं दैवगणैर्वृत:।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवत: सभा।१०
सर्वं त्रिभुवनं राजन्! लोकधर्माश्च शाश्वता:।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिस्तथेदमखिलं जगत्।११
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च महीरुहाश्च।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च।१२
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षा धर्म्मश्च मोह: पितरश्च सर्वे।१३
प्रह्लादस्य वच: श्रुत्वा हिरण्यकशिपु: प्रभु:।
उवाच दानवान् सर्वान् गणश्च स गणाधिप: ।१४
मृगेन्द्रा गृह्यतामेष अपूर्वं सत्वमास्थित:।
यदि वा संशय: कश्चिद्वध्यतां वनगोचर:।१५

मरुद्गण, देव, गन्धर्व, तप के ही धनों वाले सब ऋषि वृन्द, नाग यक्ष, पिशाच, भीम विक्रम वाले राक्षस, ब्रह्मा, देव पशुपति ये सब इनके ललाट प्रदेश में स्थित हुए भ्रमण कर रहे हैं। सम्पूर्ण स्थावर तथा सभी जङ्गम जीव इनके शरीर में दिखाई दे रहे हैं।८-९। सब देवों से परिवृत हम सबके सहित आप भी इनके शरीर में स्थित देखे जा रहेहैं। सैंकड़ों विमानोंसे संकीर्ण यह आपकी महती राजसभा तथा हे राजन् यह संपूर्ण त्रिभुवन और समस्त शाश्वत लोक धर्म इस नार-

सिह शरीर में दिखाई दे रहे हैं। उसी भाँति यह सम्पूर्ण जगत्-महात्मा प्रजापति मनु--सब ग्रह--योग---महीरुद्र इसमें दृष्टिगत हो रहे हैं।१०।।१२। इनके अतिरिक्त उत्पात का काल---धृति---मति---रति---सत्य--तप---दम इसमें विद्यमान हैं। महानुभाव सनत्कुमार---विश्वेदेवा---सब ऋषिगण--क्रोध--काम--हर्ष--धर्म---मोह---सब पितृगण इनके इस महान विशाल एवं परम दिव्य शरीर में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहे हैं।१३। इस प्रकार के कहे हुए वचन का श्रवण कर वह गणों का अधिप प्रभु हिरण्यकशिपु समस्त दानवों और गणों से यह बोला था---देखो, आप सब मिलकर इस अत्यन्त अद्भुत अपूर्व सत्व के रूप में संस्थित नरसिंह को पकड़ लो और यदि कुछ भी संशय हो तो इस वन में भ्रमण करने वाले को मार डालो।१४-१५।

ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा।१६
सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः।
बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्यइवान्तकः।१७
सभायांभज्यमानायांहिरण्यकशिपुःस्वयम्।
चिक्षेपास्त्राणिसिंहस्य रोषाद्व्याकुललोचनः।१८
सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम्।
कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम्।१९
पैतामहं तथात्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत्।
विचित्रामशनीञ्चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम्।२०
रौद्रं तथोग्रशूलञ्च कंकालं मुसलं तथा।
मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम्।२१

हिरण्यकशिपु के इस आदेश को प्राप्त करके वे समस्त दानवगण उस भीम विक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षेप करते हुए बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे और वे सब अपने ओज के बलसे उन नरसिंह प्रभु को त्रास देने

लगे थे ।१६। उस समय में महान् बलशाली नरसिंह प्रभु ने एक सिंह-नाद करके उस सम्पूर्ण हिरण्यकशिपु की सभाका फैलाये हुए मुँहवाले अन्तक काल के समान भङ्ग कर दिया था ।१७। जिस समय में वह पूरी सभा भज्यमान हो गई थी तब हिरण्यकशिपु ने स्वयं ही रोष से व्याकुल नेत्रों वाला होकर उन नरसिंह भगवान् के शरीर पर अपने ही अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था । समस्त अस्त्रों में सबसे बड़ा-महान् दारुण दण्ड अस्त्र--घोर काल चक्र-परमोत्तम विष्णुचक्र तथा अत्यन्त ही उग्र पितामह का अस्त्र जो इस महान् त्रैलोक्य के दाह कर देने वाला था इन सब अस्त्रोंसे हिरण्यकशिपु ने नारसिंह वपु पर प्रहार किये थे । विचित्र अशनी तथा शुष्क और आर्द्र दोनों प्रकार के अशनि रौद्र तथा उग्रशूल, कङ्काल, मुसल, मोहन, शोषण, सन्तापन, विलापन नाम वाले अस्त्रों से दैत्यराज ने नरसिंह प्रभु के शरीर पर डर-डर कर प्रहार पर प्रहार किए थे ।१८-२१।

वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैंकरम् ।
तथाप्रतिहतां शक्ति क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ।२२
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा ।
कम्पनं शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभैरवम् ।२३
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनञ्च महाबलम् ।
संवर्तनं मादनञ्च तथा मायाधरं परम् ।२४
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ।
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ।
अस्त्रं पाशुपतञ्चैव यस्याप्रतिहता गतिः ।२५
अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ।
नारायणास्त्रमैन्द्रञ्च सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम् ।२६
पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा ।
महाबलं भावनं च प्रस्थापनविकम्पने ।२७

एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ।२८

वायव्य, मथन, कापाल, कैङ्कर, अप्रतिहता शक्ति, क्रौञ्च अस्त्र ब्रह्म शिरास्त्र, सोमास्त्र शिशिर, कम्पन, शतत्र, त्वाष्ट्र, सुभैरव, काल मुदगर, अक्षोभ्य, महाबल, सम्वर्त्तन, मादन, परममायाधार, गान्धर्वास्त्रदयति, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, उत्तम वारुणास्त्र और पाशुपत अस्त्र जिसकी गति अप्रतिहत हुआ करती है ।२२-२५। हयशिर अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्र, अद्भुत सार्प अस्त्र, पैशाचास्त्र अजित, शोषद, शामन, महाबल, भावन, प्रस्थापन, विकम्पन इन सब अस्त्रों को जो महान दिव्य थे दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने भगवान नरसिंह के शरीर पर छोड़ दिया था किन्तु वे सब अस्त्र उनके शरीर का स्पर्श करते ही ऐसे नष्ट भ्रष्ट होकर भस्मसात् हो गये थे जिस तरहसे प्रदीप्त हुई अग्निमें हवि पड़ते ही जल कर भस्म हो जाया करती है ।२६-२८।

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमाः ।
विवस्वान् धर्म्मसमयेहिमवन्तमिवांशुभिः ।२९
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः ।३०
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः ।३१
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ।३२
ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगाः ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकाया स्त्रितोस्त्रिशीर्षा इव नागपाशा ।३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ।३४

उन असुरोत्तमों ने प्रज्वलित अस्त्रों के द्वारा उन नृसिंह प्रभु को आवृत कर दिया था जैसे घाम के समय सूर्य हिमालय को अपनी किरणों से कर देता है ।२६। अमर्ष की अग्नि से अद्भुत दैत्यों के उस सेनारूपी सागर ने क्षण भर में मैनाक को समुद्र की भाँति सबको प्लावित कर दिया था ।३०। असुरों की उस विशाल सेना ने प्राश-पाश, खंग, गदा, मूसल, वज्र, अशनि, अग्नि के सहित महान द्रुम, मुद्गर, भिन्दिपाल, शिला, उलूखल, पर्वत, दीप्त शतघ्नी और सुदारुण दण्ड आदि के द्वारा नृसिंह प्रभु पर प्रहारों की भरमार कर दी थी ।३१-३२ पाशों को हाथों में ग्रहण करने वाले, महेन्द्रके समान अशनि वज्रके वेग से युक्त सभी ओर से अभ्युद्यत बाहु और काया वाले वे सब दानव तीन शीर्षों वाले नागपाशों की भाँति स्थित थे ।३३। सुवर्ण की मालाओं के समूह से विभूषित अङ्गों वाले तथा पीत वर्ण के वस्त्ररूपी आभोग से विभावित अङ्गों से युक्त और मुक्तावली की माला से समन्वित कक्षों से संयुत विशाल पक्षों वाले हंसों के तुल्य वे दानवगण शोभित हो रहे थे ।३४।

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीबलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ।३५
क्षिपद्भिरुग्रैर्ज्वलितैर्महाबलैर्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरोद्रुमैः ।३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ।३७
सन्त्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ।३८

वायु के समान ओज से युक्त, केयूर-मौली और वलय से उत्कट उन दानवों के उत्तम अङ्ग सभी ओर से प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के तुल्य प्रभा वाले शोभित हो रहे थे ।३५। वह नरसिंह प्रभु महान

अस्त्रों के समूहों से भली-भाँति आवृत होकर कन्दराओं के अन्दर अन्ध-कार कर देने वाले द्रुमों से और निरन्तर वर्षा करते हुए मेघों से पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहे थे।३६। महान् बलवान्—सब ओर से एकत्रित हुए उन दैत्य गणों के द्वारा महान् अस्त्रों के जाल से हन्यमान भी वह नृसिंह प्रभु उस युद्ध स्थल में प्रताप से स्थित प्रकृति के द्वारा हिमाचल की भाँति बिल्कुल भी कल्पायमान नहीं हुए थे।३७। उन नृसिंह के रूपधारी भगवान् के द्वारा जिनका पावक के समान तेज था वे सब दिति के पुत्र दैत्य सन्त्रासित कर दिये गये थे और वे सब भय से भीत होकर पवन से उद्धूत अङ्गों वाली सागर के जल में समुत्पन्न ऊर्मियों की भाँति भय से विचलित हो गये थे अर्थात् भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये थे।३८।

६३—नरसिंह-हिरण्यकशिपु युद्ध-वर्णन

खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः ।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिताः ।१
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा ।
अर्द्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा ।२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ।
सिंहास्यालेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ।३
द्विजिह्वकावक्त्रशीर्षास्तथोल्का मुखसंस्थिताः ।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः ।४
शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शस्त्रवृष्टिभिः ।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रु साहवे ।५
एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवेश्वराः ।

मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगा: ।६
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिता: ।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस महान् भीषण युद्ध में बहुत से दानवों ने नृसिंह भगवान से युद्ध किया था जिनके नाम ये हैं—खर,खर मुख, मकराशी, त्रिशानन, ईहामृगमुख, वराह मुख, बाल सूर्यमुख, धूमकेतु, मुख, अर्द्ध चन्द्रार्ध मुख, अग्निदीप्तमुख, हंस कुक्कुट मुख व्यादितास्य, भयावह सिंहास्य लेलिहान, काक गृध्रमुख, द्विवक्त्र, द्विशीर्ष, उल्कामुख, महाग्राह मुख आदि महान् भीषण मुखाकृतियों वाले बल के घमण्ड से परिपूर्ण दानव थे जो शैल के समान संवर्ण वाले और वध के अयोग्य भगवान् मृगेन्द्र के शरीर में निरन्तर शरोंकी वर्षा से भी युद्ध में किञ्चित् मात्र भी व्यथा न कर सके थे।१-५। इसी प्रकार से फिर दूसरी बार उन दानवेश्वरों ने अत्यन्त क्रोधित होकर गर्म श्वास छोड़ते हुए फुसकारें करने वाले सर्पों की भाँति मृगेन्द्र प्रभु के शरीर के ऊपर दूसरे परम घोर अस्त्रों को छोड़ा था ।६। वे सब दानवेन्द्रों के द्वारा प्रक्षिप्त किए हुए अतीव घोर दानवीय शर पर्वत में खद्योतों की भाँति आकाश में जा विलय को प्राप्त हो गए थे ।७।

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्या क्रोधसमन्विता: ।
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्तत: ।८
तैरासीद्गगनं चक्रै: सम्पतद्भिरितस्तत: ।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ।९
तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमात्मना ।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्चि: समानिवै ।१०
तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै ।
मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ।११
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूय: प्रासृजदूर्जिताम् ।

शक्ति प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्प्रभाम् ।१२
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् ।
हुंकारेणैव रौद्रेण वभञ्ज भगवांस्तदा ।१३
रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेण महीतले ।
स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केवदिवश्च्युता ।१४

इसके उपरान्त उन दैत्यों ने महान क्रोध से समन्वित होकर चारों ओर से प्रज्वलित होने वाले दिव्य चक्रों को नरसिह प्रभु के शरीर पर बड़ी ही शीघ्रता से छोड़ दिया था।८। इधर-उधर गिरने वाले उन चक्रों से युग के अन्त में भली भाँति प्रकाश लाने वाले चन्द्र-सूर्य ग्रहों की भाँति उस समय में आकाश था।९। अशमात्मा उन मृगेन्द्र(नरसिंह) के द्वारा वे समस्त चक्र उस समय में अग्नि की अचियों के तुल्य ग्रस्त और उदीर्ण होते थे ।१०। वे सब चक्र जो दानवों के द्वारा नरसिंह प्रभु पर छोड़े गये थे उन्हीं के मुखमें प्रवेश प्राप्त करते हुए बादलों से युक्त घाटियों में चन्द्र-सूर्य ग्रहों के समान शोभा दे रहे थे।११। हिरण्यकशिपु दैत्यराज ने पुनः अत्यन्त प्रज्वलित, परम घोर, धौत शस्त्र विद्युत की प्रभा से समन्वित अतीव अजित शक्ति का प्रहार नरसिंह भगवान् पर किया था ।१२। उस समय में अत्यन्त समुज्वल अपने ऊपर आपतन करती हुई शक्ति को देखकर नृसिंह भगवान् ने महान् रौद्र हुङ्कार की ध्वनि से ही उसका भंजन कर दिया था ।१३। महीतल में मृगेन्द्र भगवान के द्वारा भग्न की हुई वह शक्ति विस्फुलिंगों से युक्त और प्रज्वलित दिवलोक से च्युत महोल्का के समान शोभित हो रही थी । ।१४।

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे बिदूरतः ।
नीलोत्पलपलाशानाः मालेवोज्ज्वलदर्शना ।१५
स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम् ।
तत्सैन्यमप्सारितवान् तृणाग्रानेव मारुतः ।१६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभागताः ।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः ।१७
तदश्मवर्षं सिंहस्य महान्मूर्द्धं निपातितम् ।
दिशोदश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ।१८
तदाश्मौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
छायायां चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ।१९
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघादेवसत्तमम् ।
भीमवेगोऽचलश्रेष्ठः समुद्र इव मन्दरम् ।२०
ततोऽश्मवर्षविहिते जलवर्षमनन्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ।२१

नृसिंह भगवान के शरीर पर प्राप्त हुई नाराचों की पंक्ति से ही नीलोत्पल के पलाशों की उज्ज्वल दर्शन वाली माला के समान दीप्ति हो रही थी ।१५। नृसिंह महाप्रभु ने न्यायानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक बल-विक्रम दिखाकर उस दानवेन्द्र की सेना को तिनको के अग्रभागों को वायु की तरह अपसारित कर दिया था ।१६। इसके उपरान्त दैत्येन्द्रों ने आकाश में स्थित होते हुए नग मात्र शिला खण्डों के द्वारा, महती प्रभा से युक्त गिरि के द्वारा पाषाणों की वर्षा का विसर्जन कर रहे थे । वह पत्थरों की महान् वर्षा नरसिंह प्रभु के मस्तक पर डाली गयी थी और वह दशों दिशाओंमें खद्योतों के प्रकरों की भाँति विकीर्ण हो गयी थी ।१७-१८। अरियों के दमन करने वाले नृसिंह प्रभु को फिर उन दैत्यों के गणों ने पाषाणों की वृष्टि में डाले हुए पत्थरों के द्वारा मेघ जैसे अपनी वर्षाई हुई जल की धाराओं से पर्वत को ढाँक दिया करते हैं वैसे ही छाया में कर दिया था ।१९। उन दैत्यों के विशाल समुदायों ने देवों में परम श्रेष्ठ नृसिंह महाप्रभु को जिस प्रकार से भीम वेग वाला सागर अचलों में श्रेष्ठ मन्दराचल को चलायमान कर दिया जाता है उसी तरह से चलायमान कर दिया था

।२०। इसके उपरान्त उस पाषाणों से की गई वर्षा के अनन्तर जल की वृष्टि से अकस्मात धाराओं के द्वारा चारों ओर से प्रादुर्भूत हो गये थे ।२१।

नभस:प्रच्युताधारास्तिग्मवेगा: समन्तत: ।
आवृत्य सर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा ।२२
धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाञ्च सर्वश: ।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्तोऽनिशं भुवि ।२३
बाह्यतो ववृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषु: ।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ।२४
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ।२५
महेन्द्रस्तोयदै: सार्द्धं सहस्राक्षो महाद्युति: ।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ।२६
तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानव: ।
असृजत् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्तत: ।२७
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ।२८

आकाश से अत्यन्त तीव्र वेगों वाली गिरी हुई धारायें चारों ओर से आवृत करके सभी व्योम-दिशाओं और उप दिशाओं को घेर करके हो रही थी तथा दिवलोक में और सर्वत्र पृथ्वी में निरन्तर गिरती हुई वे धाराएँ इस भूमण्डल में उन नृसिंहदेव का फिर स्पर्श नहीं कर रही थीं ।२२-२३। वे धारायें बाहर से बरस रही थीं किन्तु उनके ऊपर वे नहीं बरस रही थीं । उस युद्ध स्थल में एक मृगेन्द्र के प्रतिरूप धारण करने वाले प्रभु की माया से उस तुमुल पाषाणों की वर्षाके हत होनेपर तथा जल की वर्षा के एकदम शोषित कर डालने पर फिर उस दानवने अग्नि और वायु से समीरित माया का सृजन किया था ।२४-२५।

उस समय में महान् द्युति वाले सहस्र महेन्द्रदेव ने जलदों के द्वारा महान् जल की वृष्टि से उस मायाकृत अग्नि का शमन कर दिया था। जब वह माया भी प्रतिहत करदी गई तो उसके पीछे युद्ध में उस महा-दानव ने चारों ओर से महान् घोर तम का बड़ी ही तीव्रता के साथ विशेष रूप से सृजन किया था।२६-२७।सम्पूर्ण लोक तम से जब परि-वृत हो गया था तो उस समय में आयुधों के धारण करने वाले उन दैत्यों के विशाल समुदाय में वह महाप्रभु नृसिंहदेव अपने ही तेज से परिवृत होकर दिवाकर के समान शोभा सम्पन्न हो गये थे ।२८।

त्रिशाखां भृकुटीञ्चास्य ददृशुर्दानवा रणे ।
ललाटस्थां त्रिशूलांकां गङ्गां त्रिपथगामिव ।२९
ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ।
हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णा शरणं ययुः ।३०
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा ।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ।३१
आवाह प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः ।
परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ।३२
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः ।
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ।३३
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै ।
ते सर्वे गगने हृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ।३४
अन्ययुक्ते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः ।
संग्रहैः सहनक्षत्रैःराकापतिररिन्दमः ।३५

रणस्थल में स्थित दानवों ने फिर इन नृसिंह प्रभु की तीन शाखाओं वाली भृकुटी का त्रिशूलसे अङ्कित ललाट प्रदेशमें स्थित त्रिपथ गामिनी गङ्गा की भाँति दर्शन किया था। इसके अनन्तर जब सभी की गयी मायाऐं हत हो गयी थीं तो वे सब दितिके पुत्र महादैत्यगण विवर्ण

होकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु की शरणागति में प्राप्त हो गये थे ।२९-३०। इसके पश्चात् वह मानो अपने ही तेज से सबको प्रदग्ध कर रहा था ।वह दैत्यराज महान क्रोधसे प्रज्वलित हो गया था ।जब वह दैत्येन्द्र इस भाँति क्रुद्ध हो गया तो उस समय में सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से परिपूर्ण हो गया था ।३१। उत्पातों के भय को सूचित करने वाले और महान बल तथा पराक्रम से युक्त आवह, प्रवह, विवह, उदावह, परावह संवह और परिवह ये सात प्रकार के मरुत परम क्षुभित होते हुए आकाश में सञ्चरण करने वाले दिखलाई दे रहे थे ।३२-३३। जो ग्रह सम्पूर्ण लोकों के क्षय होने के समय में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं वे सभी ग्रह यथा सुख आकाश में विचरण करते हुए देखे गए थे । रात्रि में निशाचर मार्ग में अन्यगत हो जाने पर विचरण कर रहा था और अरिन्दम राकापति को नक्षत्रों के सहित संग्रहीत कर लिया गया था ।३४-३५।

विवर्णताञ्च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ।
कृष्णं कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि ।३६

अमुञ्चार्चिषां वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः ।
गगनस्थञ्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते ।३७
सप्त धूम्रनिभा घोराः सूर्य्या दिवि समुत्थिताः ।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ।३८
वामेन दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती ।
शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमुद्यतो ।३९
समं समधिरो हन्तः सर्वे ते गगनेचराः ।
शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ।४०
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैर्ग्रहैः सह तमोनुदः ।
चराचरविनाशाय रोहिणी नाभ्यनन्दत ।४१

गृह्यते राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ।
उल्का: प्रज्वलितश्चन्द्रे विचरन्ति यथासुखम् ।४२

भगवान दिवाकर दिवलोक में विवर्णता को प्राप्त हो गए थे और वह उस सुमहान दिवलोक में कृष्ण कबन्ध की भाँति दिखलाई दे रहे थे ।३६। अर्चियोंका वृन्द यह भूमि वृत्ति, विभावसु और गगनमें स्थित भगवान् अभीक्ष्ण में परिदृश्यमान हो रहे थे ।३७। दिवलोक में धूम्र के तुल्य महान् घोर सात सूर्य समुत्थित होगये थे ।३८। उसके वाम भाग में और दक्षिण भाग में शुक्र और बृहस्पति ग्रह स्थित हो गये थे । शनैश्चर और लोहितरङ्ग अग्निके अङ्गके समान द्युति वाले थे । वे सम्पूर्ण गगन चर समरूप से ही समाधिरोहण कर रहे थे । ये युगान्त में आवर्त्तन करने वाले महान घोर ग्रह शनैः-शनैः शृङ्गों पर अधिरोहण करते थे । तमका नोदन करने वाला चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहों के सहित चराचर सबके विनाश करने के लिए रोहिणी क अभिनन्दन नहीं कर रहा था । ।३९-४१। राहु के द्वारा चन्द्र निगृहीत हो रहा था और उल्काओ से उसका अभिहनन किया जा रहा था । प्रज्वलित उल्काएँ सुख पूर्वक चन्द्रमा में विचरण कर रहीं थीं ।४२।

देवानामपि यो देव: सोऽप्यवर्षतशोणितम् ।
अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपमहास्वना: ।४३
अकाले च द्रुमा:सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ।
लताश्च सफला: सर्वा येचाहुर्दैत्यनाशानम् ।४४
फलै:फलान्यजायन्त पुष्पै:पुष्पं तथैव च ।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्तिच रुदन्ति च ।४५
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च ।
प्रतिमा: सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम् ।४६
आरण्यै: सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिण: ।
चक्रु: सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम् ।४७

नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदका: ।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुला: ।४८
वनस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हा: कथञ्चन ।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यंते प्रणमन्ति च ।४६

ज्योतिष के अनुसार युगान्तकारी महान् भीषण ग्रहों की स्थिति जो उस समय हुई थी—वह जतला कर उसका प्रतिफल बतलाते हुए कहते हैं कि समस्त देवों का भी जो देव है वह भी इस भीषण ग्रहोंकी स्थिति के कारण रक्त की वर्षा कर रहा था और गमन से महान् घोर ध्वनि करने वाली विद्युत्के स्वरूपमें स्थित उल्काओं का पतन हो रहा था ।४३। अकाल में ही सब बृक्ष पुष्प और फल देने वाले होगये थे जो कि महान् उत्पात के सूचक थे । सम्पूर्ण लतायें भी फलों से युक्त होगई थीं जो दैत्यों के विनाश को स्पष्टतया बतला रही थीं ।४४। फलों में से फल और पुष्पों के द्वारा पुष्पों की उत्पत्ति होने लग गयी थी । ये सब उन्मीलित और निमीलित हुआ करते थे तथा कभी-२ हँसतेथे और किसी समयमें रुदन करने वालेथे । ये सल महाविनाश की सूचना करने वाले हो गये थे ।४५। समस्त देवों की प्रतिमाएँ जो अति गम्भीर थी-धूमित बन रही थी और प्रज्वलित हो जाया करती थीं । ये सभी महान् भय के समागम को प्रकट कर रही थीं और महान् असगुन को ज्ञात कराती थीं ।ग्राम्य पशुगण और पक्षिवृन्द आरण्यक(जंगली) पशु पक्षियों के साथ संतुष्ट होने लगेथे । वहाँ पर अत्यन्त भैरव महान् युद्ध करने लगे थे । कलुषित जलों से युक्त होकर सभी नदियाँ प्रतिकूल रूप से बहने लगी थीं । सभी दिशाएँ लाल वर्ण की रेणुओं से समाकुल होकर प्रकाश नहीं करने वाली हो गई थीं । पूजन करने योग्य वनस्पतियाँ किसी भी समय में पूजित नहीं थीं और वायु के वेग से वे सब हन्यमान-भञ्जन शील और नीचे की ओर झुकी हुई हो गई थी ।४६। ।४६।

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ।
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां युगसंक्षये ।५०
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु ।५१
असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शना: ।५२
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः ।
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः ।५३
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
महीधरा नागगणा निपेतुर्नमितौजसः ।५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ।
चतुः शीर्षाःपञ्चशीर्षाःसप्तशीर्षाश्च पन्नगाः ।५५
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
एलामुखः कालिकश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ।५६
सहस्रशीर्षा नागो वै हेमतालध्वजः प्रभुः ।
शेषोऽनंतोमहाभागो दुष्प्रकम्प्यःप्रकम्पितः ।५७
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ।५८

जिस समय में समस्त प्राणियों की छाया परिवर्त्तित नहीं होती है और लोकोंके युग संक्षय में सूर्य भगवान् अपराह्न गत हो जाया करते हैं ।५०। उस समय में दैत्यराज हिरण्यकशिपु के निवास-गृह के ऊपर भाण्डागार और आयुधागारमें मधु निविष्ट हो गया था ।५१। घोर निदर्शन वाले विविध भाँति के स्वरूप वाले महान् उत्पात इन असुरों के विनाश के लिए तथा देवगणों की विजय प्राप्त होने के लिए दिखाई दे रहे थे ।५२। अन्य भी और जो बहुत-से अत्यन्त घोर उत्पात उठ खड़े हुए थे वे सब काल बलीके द्वारा विनिर्मित उस दैत्येन्द्र के सर्वतो भाव

से विनाश के लिए ही दिखाई दे रहे थे ।५३। उस महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र के द्वारा कम्पायमान इस मेदिनी में अमित ओज से सम्पन्न महीधर और नागगण गिर गये थे ।५४। चार शीर्ष वाले-पाँच फणों से युक्त और सात मस्तकों वाले पन्नग (सर्प) विष की ज्वालाओं से समाकुल मुख से हुताशन का विमुञ्चन कर रहे थे । प्रमुख पन्नगों में वासुकि–तक्षक–कर्कोटक–धनञ्जय–एलामुख–कालिक और महान् वीर्य शाली महापद्म एवं सहस्र शीर्षों वाला–नग–हेमतालध्वज—प्रभु शेष और महाभाग अनन्त—दुष्प्रकम्प्य—प्रकम्पित–-जल के अन्दर स्थित रहने वाले दीप्त और पृथिवी धारण थे । उस समय में ये सब चारों ओर में महान् क्रुद्ध उसके द्वारा कम्पित हो गये थे ।५५-५८।

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्ट्वान्महीम् ।५९

संदष्टौष्ठपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः ।
नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ।६०

यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणी च निम्नगा ।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा ।६१

चर्मण्वती च च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः ।
कलमप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदकः ।६२

नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी ।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पर्वसरस्वती ।६३

मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी ।
जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरत्नोपशोभितम् ।६४

तेज के धारण करने वाले और पाताल तल में संचरण करने वाले नाग भी कम्पायमान हो गये थे । उस समय में दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने इस मही को स्पर्श किया था और वह क्रोध से अपने होठों को

काटता हुआ पूर्वज बाराह की भाँति हो गया था। समस्त नद और नदियाँ भी प्रकम्पित हो गये थे जिनके प्रमुख नाम ये हैं-भागीरथी नदी सरयू, कौशिकी, यमुना, कावेरी, कृष्णवेणी, निम्नगा, सुवेणा, महाभागा गोदावरी नदी, चर्मण्वती, सिन्धुनद, नद नदीपति, कमल प्रभन और मणि के सदृश स्वच्छ जल वाला शोणनद-शुभ तोया मर्मदा, वेत्रवती नदी-गोमती, गोकुलाकीर्णा तथा पूर्व सरस्वती, मही, कालमही, तमसा और पुष्प बापिनी ये सभी नद और नदियाँ प्रकम्पित होगये थे। जम्बू द्वीप और सब प्रकार के रत्नों के उपशोभित रत्न भी कम्पायमान थे। ।५९-६४।

सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ।
महानदञ्च लौहित्यं शैलकाननशोभितम् ।६५
पत्तनं कोशकरणं ऋषिवीरजनाकरम् ।
मागधाश्च महाग्रामा मुडाः शुङ्गास्तथैव च ।६६
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः ।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ।६७
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा ।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ।६८
उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम् ।
सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघपङ्क्तिनिषेवितः ।६९
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ।७०

सुवर्ण के आकरों (खानों) से मण्डित सुवर्ण प्रकट तथा शैल और काननों से शोभा संयुत लौहित्य महान-ऋषि और वीरजनों की खान-कोशकरण पत्तन, मागध, महाग्राम, मुड तथा शुङ्ग, सुह्म, मल्ल, विदेह मालव, काशी, कोसल और वैनतेय का भवन ये सब देश और स्थल उस दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु के द्वारा अभिकम्पित होगये थे।६५-६७। यह

भवन कैलास पर्वत के शिखर के समान आकार वाला था और विश्व-कर्मा के द्वारा इसकी रचना की गयी थी। महान् भीम स्वरूप वाला जिसका जलरक्त वर्ण का था ऐसा लोहित नाम वाला सागर—उदय महाशयल जिसकी सौ योजन ऊँचाई थी—मेघों की पंक्तियों से निषेवित सुवर्ण वैदिक जो पुष्पित कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, सूर्य के सदृश जात रूपमय द्रुमों से भ्राजमान था।६८-७०।

अधोमुखश्च विख्यातः सर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः।७१
सुराष्ट्रश्च सवाल्हीकाः शूरभीरास्थैव च।
भोजाः पाण्ड्याश्च बङ्गश्चाकलिङ्गास्ताम्रलिप्तका।७२
तथैवोड्राश्च पौण्ड्रश्च वामचूडाःसकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणः।७३
अगस्त्यभवनञ्चैव यदगम्यङ्कृतं पुरा।
सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम्।७४
विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव।७५
चन्द्रसूर्यांशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतैः।
विद्युत्वान् सर्वः श्रीमानायतः शतयोजनम्।७६
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे।
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः।७७

अधोमुख परम विख्यात था जो सभी ओर से धातुओं से मण्डित था तथा तमाल के बनो की गन्ध से युक्त मलय पर्वत परम शुभ था। सुराष्ट्र, वाह्लीक, शूर, आभीर, भोज, पाण्ड्य, बङ्ग, कलिङ्ग, ताम्र-लिप्त, उड्ग पौण्ड्र, वामचूड़, केरल इन सब देशों को उस दैत्य ने क्षोभ युक्त बना दिया था और देवों के सहित अप्सराओं के समुदाय को भी क्षुब्ध कर दिया था।७१।७२।७३। अगस्त्य भवन

जो कि पहिले अगम्य कर दिया था वह सिद्ध—चरणों के समूहों से विप्रकीर्ण और अत्यन्त मनोहर था ।७४। उसमें विचित्र भाँति के अनेक विहग रहते थे तथा सुन्दर पुष्पोंसे युक्त महान् वृक्ष लगे हुए थे । उसने सुवर्णमय शिखर इतने ऊँचे थे मानो वे गगनको लिखित बना रहे हैं । ।७५। वह सागर के जलों से समावृत चन्द्र सूर्य की किरणों के सदृश विद्युत वाला शोभा से सुसम्पन्न सौ योजन पर्यन्त आयति वाला था । जिस नगोत्तम पर विद्युतों के संघातों का निपातन किया जाता था ऋषभ और श्री सम्पन्न वृषभ संज्ञा वाला पर्वत था ।७६-७७।

कुञ्जरः पर्वतः श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ।
विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी ।७८
तथा भोगवतीचापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिताः ।
महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः ।७९
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ।
प्राग्ज्योतिषपुरञ्चमापि जातरूपमय शुभम् ।८०
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ।
विशालाक्षश्च दुर्द्धर्षो मेघगम्भीरनिस्वनः ।८१
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः ।
तरुणादित्यसंकाशो मेरुस्तत्र महागिरिः ।८२
यक्षराक्षसगंधर्वै र्नित्यं सेवितकन्दरः ।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखोगिरिः ।८३
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः ।
हेमपुष्परसक्षेत्रं ते च बैखानसं सरः ।८४

श्री से सम्पन्न कुञ्जर पर्वत अगस्त्य का परम शुभ गृह था भोगवती भी उस दैत्येन्द्र के द्वारा अभिकम्पित हो रही थी । महासेन पर्वत पारियात्र गिरि-चक्रवान् श्रेष्ठ गिरि, वाराह पर्वत-प्राग्ज्योतिषपुर जो परम शुभ और जातरूप मय था । जिसमें दुष्ट आत्मावाला नरक नाम

भारी दानव निवास किया करता था वह मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला दुर्धर्ष विशालाक्ष था ।७८-८१। हे द्विजोत्तमो ! वहाँ पर साठ हजार पर्वत थे और वहाँ तरुण आदित्य के सदृश महान् गिरि मेरु था ।८२। यक्ष, गन्धर्व, राक्षसों के द्वारा नित्य ही जिसकी कन्दराओं का सेवन किया जाता था वह महान् शैल हेम गर्भ था तथा हेम सखा गिरि था ।८३। ये समस्त महाशैल और शैलो का प्रमुख स्वामी कैलास को भी उस दानवेन्द्र ने कम्पित कर दिया था । उसने हेम पुष्प रस क्षेत्र वैखानस सरोवर को भी प्रकम्पित कर दिया था ।८४।

कपितं मानसञ्चैव हंसकारण्डवाकुलम् ।
त्रिशृङ्गपर्वतञ्चैव कुमारी च सरिद्वरा ।८५
तुषारचयसञ्छन्ना मंदरश्चापि पर्वतः ।
उशीरबिंदुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्तथाद्रिराट् ।८६
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ।
देवाभ्रपर्वतश्चैव यथाग्नो रेणुकोगिरिः ।८७
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः ।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ।८८
नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः ।
कपिलश्च महोपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः ।८९
खेचराश्चैव सतीपुत्राः पातालतलवासिनः ।
गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामांकुशायुधः ।९०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ।
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ।९१

हंसों और कारण्डवों से समाकुल मानस सरोवर को भी कम्पायमान कर डाला था । त्रिशृङ्ग पर्वत, सरिताओं में परम श्रेष्ठ, तुषार के समुदाय से सञ्छन्न कुमारी नदी, मन्दर पर्वत, उशीर बिंदु गिरि, अद्रियों का राजा चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्रपर्वत,

रेणुक गिरि, क्रौञ्च, सप्तर्षि, शैल, धूम्रवर्ण पर्वत तथा अन्य गिरिगण, देश तथा जनपद, सागरों के सहित समस्त नदियों आदि को उस महा-दानव ने कम्पित कर दिया था। मही का पुत्र कपिल और व्याघवान् पर्वत को भी कम्पायमान बना दिया था।८५-८६। खेचर, सतीपुत्र, पाताल तल के निवासिगण, पर रौद्र, मेघ नाम वाला अंकुशायुध, ऊर्ध्वग और भीम वेग ये सभी अभिकम्पित हो गये थे। उस समय में हिरण्यकशिपु गदा के धारण करने वाला, शूलधारी और महान् कराल हो गया था।९०-९१।

जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिस्वनः।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान्।९२
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत्।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः।९३
तदोंकारसहायेन विदार्य निहतोयुधि।
मही च कालश्च वशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्चसर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादन्दितिपुत्रनाशात्।९४
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम्।९५
यत्त्वया विहितं देव ! नारसिंहमिदं वपुः।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजनाः।९६
भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमाः !।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः।९७
पराञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देवं परञ्च मन्त्रं परमं हविश्च।
परञ्च धर्मं परमञ्च विश्वं त्वामुहुरग्रयं पुरुषं पुराणम्।९८

उस हिरण्यकशिपु का स्वरूप उस काल में जीमूत कृष्णमेघ के समान था और मेघके ही तुल्य घोर ध्वनि वाला यह था। उसकीघोर

गर्जना भी मेघ के ही तुल्य थी तथा जीमूत के समान ही वेग से युक्त था ।९२। इस प्रकार के स्वरूप वाला वह दिति का पुत्र और देवों का शत्रु था उस वीर ने नृसिंह महाप्रभु पर आक्रमण किया था । इसके अनन्तर उसी समय में ओङ्कार की सहायता वाले मृगेन्द्र ने उछाल मारकर अपने परम तीक्ष्ण विलाल नखों से उस दानवेन्द्र हिरण्यकशिपु को पकड़ कर विदीर्ण कर दिया था और नृसिंह प्रभु के द्वारा वह युद्ध में निहत हो गया । दिति पुत्र के विनाश हो जाने से यह मही-काल-शशीनभ, सूर्य, सम्पूर्ण ग्रह, समस्त दिशाएँ, नदियाँ, शैल और महासागर सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गए थे।९३ ९४। इसके पश्चात् सब देव वृन्द—ऋषिवर्ग और तापस गण परम प्रमुदित हो गये थे और फिर उन्होंने दिव्य नामों के द्वारा उन सनातन आदि देव का स्तवन किया था ।९५। उन्होंने कहा—हे देव! आपने जो यह नारसिंह वपु धारण किया है आपके इसी स्वरूप का परावर वेत्ता जन अर्चन किया करेंगे ।९६। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान् ! आप ही ब्रह्मा, रुद्र महेन्द्र और परम श्रेष्ठ देव हैं । आप ही इन लोकों के कर्त्ता, विकर्त्ता, प्रभव और अव्यय हैं ।९७। आपको ही परम सिद्ध, पराम्पर देव, परम मन्त्र, परम हवि, परमधर्म, परम विश्व और सबसे आदि में होनेवाला पुरातन पुरुष कहते हैं ।९७-९८।

परं शरीरं परमञ्च ब्रह्म परञ्च योगं परमाञ्च वाणीम् ।
परं रहस्यं परमाङ्कृतिञ्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।९९

एवं परस्यापि परं पदं यत् परं परस्यापि परञ्च देवम् ।
परं परस्यापि परञ्च भूतन्त्वामाहुरग्र्यं पुराणम् ।१००

परं परस्यापि परं निधानं परं परस्तापि परं पवित्रम् ।
परं परस्यापि परं च दान्तन्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।१०१

एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः ।
स्तुत्वा नारायण देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ।१०२

तप्तो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ।१०३
नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तमत् ।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ।१०४
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता ।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवं स्वस्थानं गतवान् प्रभुः ।१०५

हे भगवन् ! आपको ही परम शरीर—परम ब्रह्म-परमयोग-परम वाणी—परम रहस्य तथा परम गति एवं आद्य पुराण पुरुष कहा करते हैं। इस प्रकार से जो पराक्रमी परम पद है और परकामी परम देव है तथा परकामी परकामी परमभूत है। उस आद्य पुरुष एवं परम पुराण आपको ही कहते हैं ।९९-१००। इसी भाँति परकामी परम निधान—पारकामी परम पवित्र तथा परसेवी परम दान्त आद्य पुराण पुरुष आपको ही कहते हैं ।।१०१।। इस रीति से समस्त लोकों के पितामह भगवान् ने नारायण देव का स्तवन करके प्रार्थना की और फिर वे प्रभु अपने ब्रह्मलोक को वापिस चले गये थे ।१०२। इसके अनन्तर सूर्यों के घोष होने पर और अप्सराओं के नृत्य होने पर ईश्वर श्री हरि क्षीर सागर के उत्तर कूल पर गमन कर गये थे ।१०३। देवेश्वर ने सुदीप्ति से युक्त नारसिंह वपु की स्थापना कराकर फिर गरुड़ध्वज प्रभु पौराण स्वरूप में समास्थित होकर प्रयाण कर गयेथे । भूतयुक्त-भास्वान् आठ चक्रों वाले यान के द्वारा अव्यक्त प्रकृति देव प्रभु अपने स्थान को चले गये थे ।१०४-१०५।

———

६४—मनुमत्स्य संवाद वर्णन

पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत् ।१

कथञ्च वैष्णवी सृष्टि: पद्ममध्येऽभवत्पुरा ।२

श्रुत्वा च नारसिंहंमाहात्म्यं रविनन्दनः ।

विस्मयोत्फुल्लनयन: पुन: प्रयच्छ केशवम् ।३

कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत् ।

जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन ! ।४

प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपत: सागराम्भसि ।

पुष्करे च कथं भूता देवा: सर्षिगणा:पुरा ।५

एनमाख्याहि निखिलं योगं योगविदाम्पते ! ।

शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिनं तृप्तिरुपजायते ।६

कियता चैव कालेन शेते वै पुरुषोत्तम: ।

कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भव: ।७

ऋषिगण ने कहा—हमारी यह प्रार्थना है कि सृष्टि रचना को कुछ और अधिक विस्तार के साथ आप वर्णन कीजिए ।१-२। यह सम्पूर्ण जगत् किस प्रकार से हेममय पद्म के स्वरूप वाला हो गया था और पहिले उस पद्म के मध्य में यह वैष्णवी सृष्टि किस प्रकार से हुई थी ।३। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रविनन्दन ने प्रभु नरसिंह के माहात्म्य का श्रवण करके विस्मयसे उत्फुल्ल नेत्रों वाला होकर पुनः केशव प्रभु से पूछा था ।४। मनु ने कहा—हे जनार्दन ! पाद्म महा कल्प में जिस समय में आप जलार्णव में लीन होकर स्थित थे तब यह पद्ममय जगत् आपकी नाभि से किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? सागर के जल में शयन करने वाले पद्मनाभ के प्रभाव से उस पुष्कर में पहिले देव—ऋषिगण और समस्त भूत किस रीति से समुत्पन्न हुए थे ।५। हे योग के वेत्ताओंके स्वामिन् ! इस सम्पूर्ण योग का वर्णन कृपा करके

कीजिए ! उसकी कीर्ति का श्रवण करने वाले मेरे हृदय की तृप्ति नहीं हो रही है। पुरुषोत्तम प्रभु कितने लम्बे समय से वहाँ पर शयन किया करते हैं और किस काल पर्यन्त शयन करते रहते हैं। इस काल की उत्पत्ति क्या है ? ।६-७।

कियता वाथ कालेन ह्यु त्तिष्ठति महायशाः ।
कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलं जगत् ।८
के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने ! ।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम् ।९
प्रथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे ।
दग्धदेवासुरनरे प्रणष्टोरगराक्षसे ।१०
नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले ।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ।११
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः ।
आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ।१२
शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः ।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ ! यशो नारायणात्मकम् ।१३

यह महान् यशस्वी प्रभु कितने काल में वहाँ पर उत्थित हुआ करते हैं और किस प्रकार से उठकर इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन भगवान् किया करते हैं ? हे महामुने ! पहिले कौन प्रजापति थे और इस अत्यन्त विचित्र जगत् तथा सनातन लोक का किस प्रकार से निर्माण किया था ।८-९। प्रथम इस प्रकार एक मात्र आर्णव में जबकि सभी स्थावर और जङ्गम नष्ट होकर यह एकदम शून्य था और सब देव-असुर एवं नर दग्ध हो गए थे तथा उरग और राक्षस भी सब नष्ट हो गये थे। अनिल और अनल भी विनष्ट हो गए थे। लोक में आकाश एवं महीतल का नाम निशान भी नहीं था। महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर यह केवल एक गह्वर के तुल्य ही था। उस समय में महान्

तेजस्वी–सुरवरों में परम श्रेष्ठ–महाभूतों के स्वामी—योगवेत्ता विभु विधि में समास्थित होकर थे ।१०-१२। हे ब्रह्मन् ! मैं परम भक्तिपूर्वक पूर्णरूप से इस सबको श्रवण करना चाहता हूँ । हे धर्मिष्ठ ! आप इस नारायण के ही स्वरूप वाले परम यश का वर्णन करने के योग्य होते हैं ।१३।

श्रद्धया चोपविष्टानां भगवान् ! वक्तुमर्हसि ।
नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ।।१४
तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्षभ ! ।
शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ।१५
ब्राह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ।
यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ।१६
पराशरसुतः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति ।१७
यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः ! ।
कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ।१८
विश्वायनश्च यद्ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः ।
तत्कर्म्मं विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम् ।१९
तमीज्यं सर्वयज्ञानां तत्तत्वं सर्वदर्शिनाम् ।
तदध्यात्मविदां चिन्त्यंनरकं न विकर्मिणाम् ।२०
अधिदैवञ्च यद्दैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम् ।
तद्भूताधिभूतञ्च तत्परं परमर्षिणाम् ।२१

हम सब श्रद्धा के साथ श्रवण करने के लिए यहाँ पर समुपस्थित हैं आप अब कहने की कृपा कीजिए क्योंकि इसके वर्णन करने की पूर्ण क्षमता रखते हैं । मत्स्य भगवान् ने कहा–जो यह आपकी स्पृहा भगवान् नारायण के यशको श्रवण करने की समुत्पन्न हुई है वह हे रविकुलर्षभ! उसी वंश में होने वाले अन्वय में उत्पन्न आपकी बहुत उचित ही है ।

वेदों में तथा आदि पुराणों में जिस प्रकार से सुना गया है उसका अब श्रवण करो ।१४-१४। सुन्दर और महान् आत्मा वाले बोलते हुए ब्राह्मणों का कथन सुनकर और बृहस्पति के समान श्रुति वाले पाराशर के पुत्र श्रीमान् गुरु द्वैपायन ने जिस प्रकार से तपश्चर्या के द्वारा देख कर बोला था उसी को मैं अपनी शक्ति और श्रवण के अनुसार आपको सब कहूँगा।१६-१७। हे श्रेष्ठतमो! ऋषि मात्र मेरे द्वारा जो भी जाना जा सकता है उस परम नारायण के स्वरूप को अन्य कौन जानने का उत्साह कर सकता है ।८। विश्व जिसको अपना बनाता है वह ब्रह्माजी तात्विक रूप से जिसको नहीं जानते हैं । विश्व वेदों का यज्ञ कर्म महर्षियों के लिए भी एक रहस्य है। सब यज्ञों के यजन करने के योग्य वह सर्व दर्शियों का तत्व है । वह अध्यात्म के वेत्ताओं के चिंतन के योग्य विषय है और विकर्म्मियों का नरक नहीं है । वह अधिदैव और अधियज्ञ संज्ञा से युक्त एवं वह भूत अधिभूत है तथा परमर्षियों का वह परम है ।१९-२१।

स यज्ञो वेदनिर्दिष्टःस्तत्तपः कवयो विदुः ।
यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ।२२
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते ।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च ।२३
कालः शाकश्च यन्ता च द्रष्टास्वाध्याय एव च ।
उच्यते विविधैर्देवः स एवायं न तत्परम् ।२४
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृताम् ।२५
यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेच्छाम निर्वृताः ।
यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यच्चाहन्तद्ब्रवीमि वः ।२६
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते ।
याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः ।२७

विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः ।
यत् सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत् यद्‌भूतं परममिदं च यद्‌भविष्यत्
यत् किञ्चिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्
तत् सर्वंपुरुषवरः प्रभुः पुराणः ।२८

वह वेदों से द्वारा निर्दिष्ट यज्ञ है और कविगण उसको तप कहते हैं । जो कर्त्ता, कारक, बुद्धि, मन, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शास्त्र और एक ही विभावित होता है । पाँच प्रकार का प्राण—ध्रुव और अक्षर है । काल, शाक, यन्ता, दृष्टा और स्वाध्याय है । विविध देवोंके द्वारा वह देव कहा जाता है और यह वह ही है उससे पर कोई नहीं है । वह ही भगवान सब कुछ किया करते हैं और बिगाड़ते हैं । वह इन सबको कराता है और व्याकुलीकृतों का अतिगमन करता है ।२२-२५। उसी आदि में होने वाले के लिए हम यत्न किया करते हैं और निर्वृत (प्रसन्न) होकर उसी को हम सब चाहते हैं । जो वक्ता है और वक्तव्य है तथा जो मैं हूँ उसको ही मैं आपको बतलाता हूँ । जो श्राव्य सुनाया जाताहै और जो अन्य परिजल्पित किया जाता है । जो कथायें वर्तमान हैं । जो श्रुतियाँ हैं वे तत्पर ही हैं । यह विश्व और विश्व का स्वामी है वह ही नारायण कहा गया है । जो सत्य है—अक्षर और पर है । जो परम भूत हैं और भविष्यत् है—जो चर—अचर तथा जो अन्य है वह सभी पुरुषों में श्रेष्ठ पुराण प्रभु है ।२६-२८।

६५—विष्णु प्रादुर्भाव वर्णन

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वञ्च कृते युगे ।
वैकुण्ठत्वञ्च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ।१
ईश्वरस्य हितस्यैषा कर्म्मणां गहनागतिः ।

संप्रत्यतीतान् भव्यांश्चश्रृणुराजन् ! यथातथम् ।२
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः ।
नारायणोह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्ययएवच ।३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः ।
ब्रह्मावायुश्चसोमश्च धर्म्मःशक्रोबृहस्पतिः ।४
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन ! ।
एष विष्णुरितिख्यात इन्द्रस्यानुजो विभुः ।५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्यः पुत्रकारणम् ।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवराक्षसाम् ।६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः ।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुराकल्पे प्रजापतीन् ।७

श्रीमत्स्य भगवान ने कहा—अब तुम विष्णु के विष्णुत्व का श्रवण करो और कृत युग में हरित्व का—देवों में वैकुण्ठत्व का और मनुष्यों में कृष्णत्व के स्वरूप का भी श्रवण करलो। हितकारी ईश्वर के कर्मों की अतीव गहन गतियाँ हैं। हे राजन् ! अब इस समय में जो व्यतीत हो गये हैं उनको तथा आने जो होने वाले हैं उनको ठीक ठीक रीति से श्रवण करलो।१-२। यह जो अव्यक्त भगवान प्रभु हैं वह व्यक्त लिगों (चिह्नों) में स्थित होते हैं वही अनन्त आत्मा वाले सबका प्रभव (उत्पत्ति) और अविनाशी साक्षात् नारायण ही है।३। यह पहिले नारायण होकर सनातन श्रीहरि हुए थे। हे रवि के नन्दन ! फिर इस ने ही ब्रह्मा—वायु—सोम—धर्म—इन्द्र—बृहस्पति तथा अदिति के पुत्रत्व को प्राप्त किया था और यह ही फिर इन्द्र का छोटा पीछे उत्पन्न होने वाला भाई विभु विष्णु इस नाम से विख्यात हुए हैं।४-५। देवगण इस विभु के पुत्र होने का कारण उनकी प्रसन्नता से होने वाला समझते थे जो कि सुरों के शत्रु दैत्य-दानव और राक्षसों के वध

करने के लिए ही था पहिले प्रसन्न आत्मा इस प्रभु ने ब्रह्मा का सृजन किया था। फिर उस पूर्व पुरुष ने पहिले कल्पमें प्रजापतियों का सृजन किया था।६-७।

असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम् ।८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् ।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ।९
वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे ।
नासीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ।१०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः ।
घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ।११
ते बध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणारणे ।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुः ।१२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः ।
सार्कचन्द्रग्रहगणंच्छादयन्तो नभस्तलम् ।१३
वेणुर्विद्युद्गणोपेता घोरनिह्लादकारिणः ।
अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः ।१४

वहाँ पर अत्युत्तम ब्रह्मा के वंश वाले मानवों का उनने सृजन किया था फिर उन सब महान आत्माओं वालो से यह शाश्वत ब्रह्म ही बहुत से स्वरूपों में समुत्पन्न हुआ था। यह ही आश्चर्य स्वरूप वाले भगवान विष्णु के कर्मो का अनुकीर्त्तन है। लोकों में कीर्त्तन करने के योग्य के उस कीर्त्यमान कर्म को अब मुझसे तुम भली भाँति समझलो। ।८-९। वर्तमान कृत युग में वृत्रासुर वध होने पर वहाँ पर त्रिभुवन में विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था। जिस युद्ध में दुर्जय समस्त घोर दानव गण यक्ष–उरग और राक्षसों के सहित सब देवों का हनन किया करते थे।१०-११। उस रण में वध किए जाते हुए क्षीण आयुधों वाले

विमुख होकर सबके सब मन से त्राण करने वाले प्रभु देव नारायण की शरण में गये थे ।१२। इसी बीच में निर्वाण अङ्गार वर्चस वाले मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से युक्त नभस्तल का आच्छादन करते हुए छा गये थे । ये मेघ वेण विद्युद्गण से युक्त थे तथा घोर गर्जन करने वाले थे । परस्पर में वेग से अभिहत सातों मरुत वहन करने लगे थे । ।१३-१४।

दीप्ततोयाशनिर्वज्रैर्वेगानलानिलैः ।
रवैः सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ।१५
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि ।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ।१६
चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्भयं भवेत् ।
अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ।१७
जातञ्च निष्प्रभं सर्वं न किञ्चन प्रज्ञायते ।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशोदश ।१८
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ।
द्यौर्नभश्चाभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ।१९
तान घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः ।
वपुः स्वन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ।२०
बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ।२१

उस समय में यह सम्पूर्ण आकाश दीप्त और अशनि (वज्र) से संयुक्त घनों के द्वारा—वज्र वेग अनल और अनिलों के द्वारा—सुघोर ध्वनि और उत्पातों से दह्यमान की तरह हो रहा था ।१५। इसके पश्चात् आकाश में स्थित भी सहस्रों उल्कायें गिर गयी थीं तथा दिव्य विमान उड़ते थे और नीचे की ओर गिरते थे ।१६। चतुर्युगों के अन्त में लोकों के पर्याय में जो भय होता है उस उत्पात के लक्षण में सभी

रूप बिना रूप वाले हो जाते हैं ।१७। लोकोंमें सभी कुछ प्रभा से हीन हो जाता है और कुछ भी नही जाना या समझा जाया करता है । अन्धकार के अत्यन्त घोर एवं गहन समुदाय से परिक्षिप्त हुई दशों दिशायें प्रकाशित नहीं होतीथीं । उस समयमें काल मेघ में अवगुण्ठित होकर रूपधारिणी काली का प्रवेश हो जाता था। अत्यन्त घोर तम से समावृत दिवलोक तथा अन्तरिक्ष जिसमें सूर्य एकदम अभिभूत हो जाता है बिल्कुल भी दिखाई नहीं दिया करता है ।१८-१९। तिमिर से परिपूर्ण उन घनों के समूहों को वह प्रभु अपने हाथों से आक्षिप्त करके कृष्ण वपुधारी श्री हरि अपने दिव्य शरीर को दिखाया करते थे ।२०। बलाहक के सदृश काले बलाहक के समान रोमों से युक्त-वपु और तेज के एक कृष्ण स्वरूप को प्रकट किया था ।२१।

दीप्तापीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।२२
चतुर्द्विगुणपीनांसङ्किरीटाच्छन्नमूर्द्धजम् ।
बभौ चामीरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ।२३
चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ।२४
शक्तिचित्रफलोदयंशङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ।२५
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् ।
सर्वलोकमनः कान्तं सर्वसत्वमनोहरम् ।२६
नानाविमानविटपन्तोयदाम्बुमधुस्रवम् ।
विद्याहङ्कारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम् ।२७
विशेषपत्रंनिचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् ।
दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोके प्रकाशितम् ।२८

वह दीप्तियुक्त पीत अम्बर को धारण करने वाला—तथा तपे हुए सुवर्ण के भूषणों से संयुक्त—धूम सहित अन्धकार के शरीर वाला युगांत करने वाली अग्नि के तुल्य समुपस्थित हुआ था ।२२। चौगुने और दुगुने पीन अंश से संयुक्त—किरीट से समाच्छन्न केशों वाला वह दिव्य वपु चामीर प्रख्य आयुधों से उपशोभित होकर प्रकट हो रहा था ।२३।चन्द्र और सूर्य की किरणों के उद्योत वाला अत्यन्त ऊँचे गिरि के शिखर के सदृश था । नन्दक से आनन्दित करों वाला—शर तथा आशीविष के धारण करने वाला—क्षमा का मूल—विष्णु शैल—श्री वृक्ष और शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाला वह दिव्य स्वरूप था ।२४-२५। उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है—वह देवों का उदार फल देने वाला—स्वर्गीय स्त्रियों का चारु पल्लव—सब लोगों के मन को रमणीय-सब जीवों में अत्यन्त मनोहर—नाना विमानों के विटपों वाला—मेघों के जलरूप मधु का श्रवण करने वाला—विद्या के अहंकार—सार का आद्य महान् भूतों का प्ररोहरण करने वाला—विशेष पत्रों से निचित ग्रह और नक्षत्र रूपी पुष्पों से संयुक्त और वह दिव्यरूप दैत्यों के लोकका महान् स्कन्ध था जो कि इस मर्त्य लोक में प्रकाशित हुआ था ।२६-२७।

सागराकारनिर्ह्रादं रसातलमहाश्रयम् ।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम् ।२९

शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् ।
अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहंकारफेनिलम् ।३०

महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् ।
विमानगरुतव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ।३१

जन्तुमत्सजनाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् ।
त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ।३२
वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैबलम् ।

द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ।३३
वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
सन्ध्यासङ्ख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिशसेवितम् ।३४
पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ।३५

पुनरपि उसी परम दिव्य स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है कि वह सागरके आकारके तुल्य निर्ह्राद था और रसातल के महान आश्रय वाला था। मृगेन्द्र के पाशों से बितत–पक्षिगण एवं जन्तुओंसे निषेवित शैलार्थ और सुन्दर गन्ध में आढ्य–सब लोकों का महान् द्रुम-अव्यक्त एवं अनन्त सलिल वाला—व्यक्त अहङ्कार से फेनयुक्त-महान् भूतों की तरङ्गों के ओघ वाला—ग्रह तथा नक्षत्रों के बुलबुलों से समन्वित—विमान गरुत व्याप्त और तोयदों के आडम्बर से समाकुल था।२६-३१। वह रूप जन्तुओं वाला—जनों से समाकीर्ण—शैल शंखों के कुलों से संयुक्त-त्रैगुण्य के विषयों का आवर्त्त—समस्त लोकों का तिमिङ्गिल वीर रूपी वृक्ष लता और गुल्मों वाल-भुजङ्गों के उत्कृष्ट शैवाल वाला—द्वादश सूर्यों के महाद्वीपों वाला–एकादश रुद्रों के पत्तनों से युक्त—आठ वसुरूपी पर्वतों से युक्त—त्रैलोक्य लपी महा सागरों वाला-संध्या संख्या की ऊर्मियों का सलिल—सुपर्ण की वायु से सेवित—दैत्य और रक्षोगण रूपी ग्राहों वाला-यक्ष और उरगरूपी भुजोंसे समाकुल पितामह के समान महान् वीर्य वाला और सब स्त्रियों के स्वरूप वाले रत्नों से सुशोभित था।३२-३५।

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् ।
कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम् ।३६
तन्तु योगमहापार नारायणमहार्णवम् ।
देवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तिवत्सलम् ।३७
अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् ।

हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ।३८
ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते ।
अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ।३९
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ।४०
ददृशुस्तेऽस्थितं देवं दिव्ये लोकमये रथे ।
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।४१
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणङ्गताः ।
स तेषां ताङ्गिरं श्रुत्वा विष्णुर्देवेश्वरस्स्वयम् ।४२

उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि वह दिव्य रूप श्रीकान्ति और लक्ष्मी से तथा नदियों से उपशोभित था—कालयोगी और महापर्व एवं प्रलय तथा उत्पत्ति के वेग वाला था। तन्तुयोग का महापार—नारायण रूपी महार्णव से युक्त—देवों का भी अधिदेव—वर देने वाला जो अपने भक्तों को प्रदान करते थे—भक्तों पर प्यार करने वाला वह स्वरूप था ।३६-३७। वह अनुग्रह करने वाला–देव-प्रशान्ति करने वाला शुभ था। हर्यश्व रथ में समन्वित-ध्वज से सेवित—ग्रह चन्द्र और सूर्य से विरचित—मन्दराक्ष वर से आवृत—अनन्त रश्मियों से युक्त—विस्तीर्ण मेरु गह्वर से युक्त—तारे रूप विचित्र कुसुमों से परिपूर्ण—ग्रह और नक्षत्रों से बन्धुर (सुडौल)—भय के अवसरों पर अभय देने वाले उस स्वरूप को व्योम में दैत्यों से पराजित देवों ने देखा था। उन देवों ने परम दिव्य लोकमय रथमें स्थित देव का दर्शन प्राप्त किया था। उस समय में इन्द्र को अपना अग्रणी बना करके उन समस्त देवों ने अपनी अंजलियां को बद्ध कर लिया था। जयकार के शब्द को पहिले समुच्चारित करके शरण्य प्रभु की वे सब शरणागति में प्राप्त हो गए थे। उन देवों के भी देवेश्वर विष्णु भगवान् ने देवगण की शरणागति मे प्राप्त होने के लिए कथित वाणी का श्रवण किया था। ।३८-४२।

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ।४३
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ।
शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः ।४४
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ।४५
देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमनुत्तमम् ।
ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः ।४६
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ताश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमञ्चक्रुः प्रदक्षिणम् ।४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिंधवः ।
विरजस्का अभवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः ।४८
याथार्थमूहुः सरितो नापिचुक्षुभिरेऽर्णवाः ।
आसंश्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ।४९
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ।५०
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ।५१

देवों की परित्राण के लिए कही हुई वाणी को सुनते ही विष्णुदेव ने उस महान युद्ध में दानवों के विनाश करने के लिए मन में स्थिरता करली थी । उस समय में भगवान् विष्णु उत्तम वपुमें समास्थित होकर आकाश में ही स्थित थे । उन्होंने समस्त देवों से प्रतिज्ञा के सहित यह वचन कहा था कि अब आप सब लोग शान्ति धारणकरें अर्थात् एकदम प्रशान्त हो जावें हे मरुतों के गणो ! अब आप डरो मत—आपका कल्याण होगा । मैंने सभी दानवों को जीत ही लिया है—ऐसा समझलो और सब इस त्रैलोक्य को जो तुमसे उन्होंने छीनकर अपना अधिकार

कर लिया है पुन: वापिस ग्रहण कर लो। इस प्रकार के वचन जब उन समस्त देवगण ने सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु भगवान् के सुने थे तो उनके वाक्य से सबको बहुत ही अधिक सन्तोष हो गया था।४३-४५। उस समय में उस अत्युत्तम अमृत का प्राशन करके देवगण परम प्रीति को प्राप्त हो गये थे। इसके बाद वह सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो गया था और अभी बलाहक विनाश को प्राप्त हो गये थे। सर्वत्र परम मङ्गल कारी वायु वहन करने लगी थी और दशों दिशायें एक दम प्रशान्त हो गयी थी। शुद्ध प्रभा वाली ज्योतियाँ अर्थात् नक्षत्रादि सोम की प्रद-क्षिणायें करने लगी थीं।४६-४७। उस समय में ग्रह गण परस्पर में कोई भी विग्रह नहीं करते थे और सभी सिन्धु परम प्रशान्त हो गए थे। स्वर्ग वर्गादि तीनों ही रज से रहित मार्गों वाले हो गये थे। सम्पूर्ण सरितायें ठीक मार्ग से यथार्थ रूप में वहन कर रही थीं और आर्णवों में भी किसी भी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था। सभी मनुष्यों की अन्तरात्माओं में परम शान्ति थी और इन्द्रियाँ परम शुभ-वृत्ति वाली हो गई थी।४८।४९। सब महर्षिगण शोक से रहित होकर वेदों का उच्च स्वर से अध्ययन कर रहे थे। यज्ञों में जो भी हवि प्रक्षिप्त किया जाता था पावक उसका अति शिव पाक करने लगा था।५०। सभी लोक परम प्रमुदित मनों वाले होकर अपने-२ धर्मों में प्रवृत हो गए थे जिस समय में सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवान विष्णु की समस्त शत्रुओं के विनाश कर देने की वाणी का सबने श्रवण कर लिया था, सभी को परमानन्द प्राप्त हो गया था।५१।

———

६६—दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन

ततोऽभयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः ।
उद्योगंविपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च ।१
मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम् ।
चतुश्चक्रं सुबिपुलं सुकल्पितमहायुगम् ।२
किंकिणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ।
रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ।३
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् ।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम् ।४
स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् ।
गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ।५
हेमकेयूरबलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ।
सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिव मन्दरम् ।६
गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित् केसरिवर्चसम् ।
युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ।७
दीप्ताकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ।
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ।८

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—इसके अनन्तर उस अभय से पूर्ण भगवान् विष्णु के बचन का श्रवण करके दैत्यों और दानवोंने विजय की प्राप्ति करने के लिए विपुल उद्योग वाला युद्ध किया था ।१। विभिन्न दानवों के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का वर्णन किया जाता है—मय दानव ने जिस रथ में विराजमान होकर समर किया था वह काञ्चन-मय था—त्रिनल्व आयत और अक्षय था। उस रथमें चार चक्र थे-अतीव विपुल था और सुन्दर कल्पना किया हुआ महायुग वाला था ।२। मय का रथ किङ्किड़ी जालों के निर्घोष से युक्त-हाथियों के चर्म से परिष्कृत

रत्नों के जालों से अत्यन्त मनोरम—हेम रचित जालों से शोभित—ईहा मृग गणों से समाकीर्ण—पक्षियों की पंक्ति से शोभा सम्पन्न-दिव्य अस्त्र और तूणीर को धरने वाला तथा पयोधरों के समान ध्वनि से पूर्ण था ।३-४। सुन्दर अक्षों वाला श्रेष्ठ रथों में भी अतीव उदार—सुपस्थ—गगन के सदृश-गदा और परिघ से परिपूर्ण मूर्तिमान एक अर्णव के ही समान वह यम का पथ था ।५। वह हेम के केयूर और बलय से युक्त-स्वर्ण मण्डल कूवर वाला-पताओं के सहित ध्वजा वाला और आदित्य से मन्दराचल के समान दिखलाई देता था ।६। गजेन्द्र के आभोग वपु वाला—किसी स्थल पर केशरी के वर्चस से युक्त—सहस्रों ऋक्षों से युक्त-समृद्ध अम्बुद के समान गर्जन वाला—दीप्त-आकाशमें गमन करने वाला—पर रथारूज वह अतीव दिव्य रथा था। जिस तरहसे अशुमान् अशुमान दीप्त मेरु पर अधिरोहण किया करता है कि ठीक उसी भाँति वह रण की आकांक्षा रखने वाला मय दानव उस अपने पूर्वोक्त प्रकार के रथ पर अधिष्ठित हुआ था ।७-८।

तारमुत्क्रोशविस्तारं पूर्णं हेममयं रथम् ।
शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ।९

कार्ष्णायासमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम् ।
तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ।१०

लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणायश्च मुद्गरैः ।११
प्रासैः पाशैश्च विततैर्नरसंयुक्तकण्टकैः ।
शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ।१२
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ।१३
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तग्रह इवाचलः ।१४

तार का रथ उत्क्रोश के विस्तार वाला था और वह सम्पूर्ण रथ हेम से परिपूर्ण था वह रथ शैल के समान आकार वाला—बाधाओं से रहित—नील अञ्जन के निश्चय की उपमा वाला—काले लोह के पूर्ण दिव्य–लोहेषा से बृद्ध कूबर वाला—तिमिर के उद्गरण करने वाली किरणों से संयुत—गर्जना करने वाले तोयद के सदृश–गवाक्ष से युक्त महान् हेम जाल दंशित—आयस परिघों से तथा क्षेपणीय और मुद्गरों से पूर्ण—प्रासों पाशों और वितत नर संयुक्त कंटकों से शोभित–त्रास यानों, तोमरों और परश्वधों से शोभा सम्पन्न—सद्वष पुरुषों के कारण ही उदीयमान दूसरे मन्दर के ही समान वह रथ था। सहस्र खरों से संयुक्त वह उत्तम रथ था जिस पर उस दानव ने अध्यारोहण किया था ।९-१३। विरोचन तो भली भाँति क्रुद्ध होता हुआ अपने हाथ में गदा उठाकर उसकी सेना के सामने दीप्त ग्रहों वाले तचल के समान अवस्थित होगया था ।१४।

युक्तं रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ।१५

व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत् ।
वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ।१६

खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् ।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनं संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत ।१७

त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः ।
व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान् ।१८
विप्रचित्तिवपुश्चैव श्वेतकुण्डलभूषणः ।
श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धस्याभिमुखे स्थितः ।१९
अरिष्ठोबलिपुत्रश्च वरिष्ठाद्रिशिलायुधः ।
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ।२०
किशोरस्त्वभिसंघर्षात् किशोर इति चोदितः ।

सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम् ।२१

शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाले हयग्रीव नाम वाले दानव ने एक सहस्र रथों से युक्त अपने स्यन्दन (रथ) को वाहित किया था ।१५। एक सहस्र किष्कुओं से समन्वित—व्यायत महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ वाराह संमुख में प्ररोह से संयुक्त एक अचलकी भाँति समवस्थित हो गया था ।१६। खर नामधारी दानव घमन्ड से अपने नेत्रों के द्वारा रोष से समुत्पन्न जल को विक्षरित कर रहा था और वह भी जिसके दाँत—ओष्ठ और नेत्र फड़क रहे थे संग्राम करने का आकांक्षा कर रहा था ।१७। त्वष्टा नामवाला दानव आठ हाथियों वाले परम घोर यान में समास्थित होकर वीर्य वाला वह दानवों के व्यूह की भली भाँति व्यूहित करने के लिए चारों ओर घूम रहा था ।१८। श्वेत वर्ण के कुण्डलों से विभूषित विप्रचित वपु वाला श्वेत प्रती काश श्वेत युद्ध करने के लिए अभिमुख में समवस्थित होगया था ।१९ बड़े बड़े पर्वतोंको भी कम्पितकर देने वाला—वरिष्ठ पर्वत की शिखाओं के आयुधों से समन्वित होकर अरिष्ठ और बलि का पुत्र संग्राम करने के लिए सामने स्थित हो गया था ।२०। अभिसंघर्ष से किशोर और किशोर इसी नाम से प्रेरित होने वाला था । इस प्रकार से अपने-अपने बलों के सहित दानव गण यथा क्रम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे थे ।२१।

अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ।
लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बावरभूषणः ।२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ।
स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः ।२३
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ।२४
सिंहव्याघ्रगतश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे ।

केचित् खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहना: ।२५
पतिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादार्द्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ।२६
आस्फोटयन्तो वसवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे ।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषं नेदुर्दानवपुङ्गवाः ।२७
ते गदापरिघैरुग्राः शिलामुसलपाणयः ।
बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्तिस्म देवताः ।२८

दैत्यों की सेना के मध्य में प्रलम्ब अम्बर और भूषणों से संयुत-नूतन मेघ की आभा के तुल्य आभा वाला लम्ब नाम वाला दैत्यसूर्यके समान उदित हो गया था ।२२। दैत्यों के व्यूह में प्राप्त होने वाला-आस्ययोधी—दाँत ओष्ठ, नेत्र और आयुधों वाला स्वर्भानुनी हारसे युक्त अशुमान् के समान शोभित हो रहा था ।२३। वह महान् ग्रह दैत्यों के समक्ष में हँसता हुआ स्थित था । वहाँ पर अन्य हयोंपर स्थित थे और दूसरे गजों के स्कन्धों पर समवस्थित थे ।२४। कुल सिंहों तथा व्याघ्रों पर सवार थे और दूसरे वराह एवं ऋक्षों पर अधिरूढ़ थे । कुछ लोग खरों तथा उष्ट्रोंके द्वारा गमम करने वाले और कुछ श्वपादों के वाहनों वाले थे ।२५। अन्य सेनापति दैत्य परम भीषण और विकृत मुखों वाले थे । कुछ एक पैर वाले कोई आधे पैरों वाले थे जो युद्ध करने की इच्छा से युक्त होकर नृत्य कर रहे थे ।२६। बहुत से आस्फोटन कर रह थे—दूसरे क्ष्वेड़न करने वाले थे । प्रसन्न शार्दूल के समान गर्जन की ध्वनि करने वाले दानव श्रेष्ठ निर्घोष कर रहे थे ।२७। वे सब शिलाएँ और मूसल हाथोंमें लिए हुए अत्यन्त उग्रगदा और परिघों के द्वारा तथा परिघों के आकार वाले बाहुओं के द्वारा देवगणों की तर्जनाएँ (फटकारें) दे रहे थे ।२८।

पाशैः प्रासैश्च परिघैस्तोमरांकुशपट्टिशैः ।
चिक्रीडुस्ते शातघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ।२९

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
शक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ।३०
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ।३१
तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ।३२

वे दानव गणों पाशों—प्राशों, परिघों—तोमर—अंकुश और पट्टिशों—शतघ्नी—शतधार और मुद्गरों से क्रीड़ा कर रहे थे ।२६। वे दैत्यों में प्रवर गण्डशैलों—शैलों—उत्तम आयस वाले परिघों और चक्रों के द्वारा अपने बल को आनन्द से युक्त बना रहे थे ।३०। युद्ध करने के मद में अत्यन्त उत्कट यह सम्पूर्ण दानवों की सेना उद्धत मेघों की अनीक के समान देवों के अभिमुख में स्थित थी ।३१। वह अति अद्भुत—सहस्रों दैत्यों से अत्यन्त गहन—वायु अग्नि, शैल और अम्बुद तोय के तुल्य दानवों का बल (सेना) रथों के समूह के अभ्युदय में अभ्युदीर्ण युद्ध करने की इच्छा से उन्मत्त के समान अवभासित हो रहा था ।३२।

६७—सुरसैन्य विस्तार वर्णन

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन ! ।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु ।१
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ।२
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् ।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुह्योहसुरद्विषम् ।३

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवररंहसः ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ।४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ।५
वज्रविस्फूर्जितोद्‌भुतैर्विद्यु दिन्द्रायुधादितैः ।
युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ।६
यमारूढ़ः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! तुमने दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन श्रवण गत कर लिया है । अब सुरगणों की सेना का भी वैष्णव विस्तार श्रवण करलो । द्वादश आदित्य—आठ वसुगण एकादश रुद्र—महान् बल सम्पन्न अश्विनीकुमार ये सब बलों और अनुगामियों के सहित क्रम के अनुसार ही सन्नद्ध हो गये थे ।१-२। समक्ष में सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव-समस्त लोकपाल-सब देवों की ग्रामणी सुरों के शत्रु पर समारोहण करने वाले हो गये थे ।३। मध्य में समस्त पक्षियों में श्रेष्ठ (गरुड़)के वेग वाले इनका सुचारु (सुन्दर चक्र) चरणों वाला हेम और वज्र से परिष्कृत रथ था ।४। उस रथ के पीछे सहस्रों देव-गन्धर्व और यक्षों समुदाय अनुगमन करने वाले थे तथा वे दीप्तिमान सदस्यों के द्वारा और ब्रह्मर्षियों के द्वारा अभिष्टुत हो रहे थे ।५। वज्र के तुल्य विस्फूर्जित एवं अद्‌भुत—विद्यु त और इन्द्रायुधों से समुदित स्वेच्छया गमन करने वाले पर्वतों के समान बलाहकों के गणों से युक्त थे ।६। जिस रथ पर वह भगवान् समारूढ़ थे वह रथ समस्त जगत में परिगमन करता था और यज्ञशालाओं में समवस्थित विप्रगण हविर्धानों में गायन किया करते थे ।७।

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसाङ्गणे ।८

तीन वृत्तियाँ होती हैं। हम जो वनाश्रम निवासी हैं उनकी यही वृत्ति परम श्रेष्ठ है।३१-३४।

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
अश्मकुट्टा दश तथा पञ्चातपसहाश्च ते।३५
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति पराङ्गतिम्।३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदोजनाः।३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्रह्मणा दिवि संस्थिता।३८
नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः।
नास्ति लोके यशोः मूलं ब्रह्मचर्यात् परन्तपः।३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम्।
ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः।४०
अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम्।४१
क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः।
नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा।४२

जल के भक्षण करने वाले—वायु के भक्षण करने वाले तथा दन्तोलूखली—दश चश्म कुट्ट और जो पाँच आतपों के सहन करने वाले हैं ये तप में आस्थित रहा करते हैं और जो परम दुष्कर व्रतों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पूर्ण परिपालन करके परागति की प्रार्थना किया करते हैं।३५-३६। परलोक में भी ब्रह्मचर्य के महान् महत्व के ज्ञाता लोग इसी प्रकार से कहा करते हैं कि ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व स्थित रहा करता है।३७। इस ब्रह्मचर्य में ही धैर्य की स्थिति रहा करती है और इस ब्रह्मचर्य से ही तप स्थित रहता है। जो ब्राह्मण अपने पूर्ण

ब्रह्मचर्य व्रत में टिके हुए हैं वे दिवलोक में संस्थिति रक्खा करते हैं। ।३८। योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं हुआ करती है और जब कोई सिद्धि नहीं होती है यश भी लोक में नही हुआ करता है तथा लोक में यश का मूल नहीं है और ब्रह्मचर्य से अधिक कोई भी तप नहीं होता है ।३९। जो कोई भी पुरुष अपनी इन्द्रियों के समूह को पाँचों भूत ग्रामों को निग्रहीत करके ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण पालन किया करता है फिर इससे अधिक अन्य क्या तप हो सकता है। यही सबसे परमश्रेष्ठ तम होता है ।४०। अयोग में केशों का धारण करना—बिना ही किसी सङ्कल्प के व्रतों की क्रिया का सम्पादन करना और अब्रह्मचर्य ने अपनी चर्या रखना ये तीनों कर्म दम्भ की संज्ञा वाले ही कहे गये हैं ।४१। कहाँ तो दारा का संयोग हुआथा और कहाँ भावों का विपर्यय ही हुआ था अर्थात् दारा-संयोग और भावों की विपरीतता ये तीनों ही बातों का बिल्कुल अभाव था तो भी ब्रह्मा के द्वारा मन से ही इस मानसी प्रजा का सृजन किया गया था ।४२।

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ।४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभि. ।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ।४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम् ।४५
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम् ।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ।४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः ।४७
और्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ।
ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्तं प्रभवारणिम् ।४८
तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।४९

यदि आत्मा के ज्ञान को जानने वाले आप लोगों में कुछ भी तप का वीर्य विद्यमान हैं तो आप प्राजापत्य कर्म के द्वारा मानस पुत्रों का सृजन करिए ।४३। मनके द्वारा ही निर्मित की हुई योनि ही तपस्वियों को आधान करनी चाहिए । दारा के साथ योग करना तथा बीज का प्रयोग करना तपस्वियों का व्रत नहीं बताया गया है ।४४। यहाँ पर आप लोगों ने जो भी निर्भय होकर इस लुप्त धर्म और अर्थ से युक्त वचन को कह डाला है । यद्यपि आप लोक सत्पुरुष है जिन्होंने इसको यहाँ पर प्रतिपादन किया है तो भी वह मुझको असत्पुरुष के कथन के समान ही प्रतीत होता है मैं इस दीप्त अन्तरात्मा वाले वपु को मनोमय करके दारा के योग के बिना भी आत्म तनूरुह पुत्र का सृजन करूंगा । इसी प्रकार से यह मेरी आत्माको जन्म ग्रहण करायेगी और इसी वन्य विधि के द्वारा प्रजा की भाँति ही जलाने वाली हो जायेगी । उस और्व ने तप से समाविष्ट होकर अपने उरुको हुताशन में निवेशित कर लिया था और एक धर्म में उनकी दर्भारणि का मंथन किया था । ।४५-४८। उसके अरु का सहसा भेदन करके बिना ही ईंधन वाला ज्वालामाली और इस जगत् को अन्त कर देने की आकांक्षा वाला अग्नि पुत्र समुत्पन्न हुआ था ।४९।

ऊर्वस्योरुं विनिभिद्यऔर्चा नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञेपरमकोपनः ।५०
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं श्लक्ष्णया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात ! जगद्भक्ष्ये त्यजस्वमाम् ।५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालजृम्भमाणो दिशो दश ।
निर्दयन् सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः ।५२
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयांकुरु ।५३

अस्यापत्यस्य ते विप्र ! करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
तथ्यमेतद्वचः पुत्र ! शृणु त्वं वदताम्बरः ।५४
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवांच्छिशोः ।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहायवै ।५५
प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवन् ! तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ।५६
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम्
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः ।५

उस उर्व की ऊरु का विनिर्भेदन करने और्वा अन्त कर देने वाला परम कोप से समन्वित तीनों ल करता हुआ समुत्पन्न हुआ था । उत्पन्न होने के ही विनम्र वाणी में अपने पिता से प्रार्थना की थी कि हे क्षुधा अत्यन्त अधिकता के साथ सता रही है । मैं इ करूँगा आप मुझे अपनी क्षुधा के निवारण करने के लिए छुट् दीजिए ।५०-५१। त्रिदिव में समारोहण करने वाली ज्वालाओं से दश. दिशाओं में जृम्भमाण होता हुआ समस्त भूतों को दया से रहित होकर दलित करता हुआ गया था । इसी बीच में वह अन्तक अनल वृद्धि को प्राप्त हो गया था ब्रह्मा ने ऊर्व मुनि का सभाजन करते हुए उससे कहा था कि हे पुत्र ! इसका वारण करो तथा इस जगत् पर दया करो । ५४-५४। हे विप्र ! मैं आपकी इस सन्तति को समुचित स्थान स्थिर कर दूँगा । हे पुत्र ! बोलने वालों मे परम श्रेष्ठ आप मेरे अतीव तथ्य वचन का श्रवण करो ।५४। ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य और अतीव अनुगृहीत हूँ कि आज भगवान आपने इस समय में इस शिशु को ऐसी बुद्धि मुझ पर परम अनुग्रह करने के लिए प्रदान की है । प्रभात काल के सम्प्राप्त होने पर आपका समागम आकांक्षणीय हैं । हे भगवन् ! यह बतलाइए कि किन हव्यो से तर्पित हुआ मेरा पुत्र सुख प्राप्त करेगा । इसका निवास स्थल कहाँ पर होगा और इसके भोजन

का स्वरूप होगा? भगवान् आप इस महान् ओज वाले के वीर्य के तुल्य ही इन बातों की व्यवस्था कर देंगे ।४५-५७।

बडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति ।
मम योनिर्जलं विप्र ! तस्य पीतवतः सुखम् ।५८
यत्राहमास नियतं पिबन् वारिमयं हविः ।
तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयञ्च तत् ।५९
ततो युगान्ते भूतनामेष चाहञ्च पुत्रक !
सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापहः ।६०
एषोऽग्निरन्तकाले ते सलिलाशी मया कृत ।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ।६१
एवमस्त्विततिं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः ।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरिप्रभाम् ।६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः ।
ऊर्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वाकृतिमुपाश्रिताः ।६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समुद्र में वड़बा के मुख में इसका निवास स्थल होगा । हे प्रिय ! मेरी उत्पत्ति की योनि जल पीने वाले इसको सुखकर होगी और जहाँ पर है वहींपर नियत रूप से वारिमय हविका पान करेगा तथा वह हवि आपके पुत्र के निमित्त लय काल पर्यन्त विसर्जित कर देता हूँ ।५८-५९। इसके पश्चात् हे पुत्र ! भूतों के युग के अन्त में यह आपका पुत्र और मैं दोनों एक साथ से मिलकर निष्पुत्रों के ऋण का अपहरण करने वाले विचरण करेंगे । इस अग्नि को अन्त काल में मैंने सलिल का अशन करने वाला कर लिया है जो समस्तभूतों का तथा देव-असुर और राक्षसों का दमन करने वाला होगा । ऐसा ही होवे—यह कहकर वह अग्नि संवृत ज्वालाओं के मण्डल वाला अपने पिता ऊर्व में प्रभा को प्रक्षिप्त करके अर्णव के मुख में प्रवेश कर गया था । इसके अनन्तर ब्रह्माजी तथा सब महर्षिगण प्रतियान कर गये थे ।

ऊर्व की अग्नि की प्रभा को जानकर सब अपनी गति का उपाश्रय कर गये थे ।६०-६३।

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् ।
उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ।६४
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम् ।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ ! परितुष्टः पितामहः ।६५
अहन्तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ! ।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा ।६६
तन्मा पश्य समापन्नं तवाराधने रतम् ।
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ ! तवैव स्यात् पराजयः ।६७
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुः स्थितः ।
नास्तिमे तपसानेन भयमद्येहसुव्रत ! ।६८
तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
निरिन्धनामग्निमयीन्दुर्धर्ष पावकैरपि ।६९
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे ।
संरक्षत्यात्मपक्षञ्च विपक्षञ्च प्रधर्षति ।७०

उसी समय में उस महान् अद्भुत को हिरण्य कशिपु देखकर उच्च भाव से सब अङ्गों को प्रणत करने वा ा होकर यह वाक्य बोला था ।६४। हे मुनिश्रेष्ठ ! यह लोक का साक्षिक अद्भुत हो गया है। हे भगवन् ! आपकी तपश्चर्या से पितामह भी परितुष्ट हो गये हैं ।६५। हे महाव्रत ! मैं तो आपके पुत्र का और आपका भृत्व ही हूँ—ऐसा ही अवगमन कर लीजिए जो कि यहाँ पर कर्म के द्वारा साधना के योग्य है। इसलिए उस मुझको आपके ही समाराधन में समापन ही देखिये। हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मैं आपका अनुगामी सेवक होकर भी दुःखित रहता हूँ तो यह आपका ही पराजय होगा। उर्व ने कहा—मैं परम धन्य हूँ और परम अनुगृहीत हूँ कि जिस तुझको मैं गुरु समवस्थित हो गया हूँ।

हे सुव्रत ! आज यहाँ पर मेरे इस तप से कोई भी भय नहीं है। मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को ग्रहण करो जो बिना ईंधन वाली पावकों द्वारा भी दुर्धर्ष और अग्निमयी है। यह तेरे अपने वंश में गमन करने वाले अरियों के विशेष निग्रह में अपने पक्ष की रक्षा करेगी और विपक्ष को प्रदर्षित करेगी ।६६-७०।

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ।७१

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
औवेंण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ।७२
तस्मिस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्येषा न संशयः ।
शापोह्यस्याः पुरा दत्तो सृष्टायेनैवतेजसा ।७३

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान् सुखी ।
दीयतां मे सखा शक्र ! तोययोनिर्निशाकरः ।७४
तेनाहं सह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्नसंशयः ।७५

ऐसाही होगा—ऐसा कहकर उसको ग्रहण किया था और फिर उस श्रेष्ठ मुनिको प्रणाम करके दानवेश्वर प्रसन्न एवं कृतार्थहोकर त्रिदिव को चला गया था ।७१। यह माया दुर्विषय है ओर देवगणों के द्वारा भी गुरासद है। इसको उर्व के पुत्र पावक औवं के द्वारा पूर्व में निर्माण किया गया था ।७२। उस दैत्व के व्यस्थित होने पर यह निर्वीर्य हो जाया करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जिस-जिस तेज के द्वारा इसका सृजन किया गया था उसीके द्वारा पहिले इसको शाप भी दिया गया है। यदि यह माया प्रतिहनन के योग्य करनी है तो भगवान को सुख से सम्पन्न एवं प्रसन्न करना चाहिए। हे इन्द्रदेव ! अतएव तोयकी योनि निशाकर मेरा सखा दे दो ।७३-७४। उसके साथ मैं संगत होकर

और यादव गणों से समवृत होकर आपकी कृपा एवं प्रसाद से उस माया का मैं हनन कर दूँगा—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।७५।

=×=

६६—देवासुर संग्राम वर्णन (२)

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ।
सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ।१
गच्छ सोम ! सहायं त्वं कुरु पाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयार्थञ्चदिवौकसाम् ।२
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषश्चेश्वरेश्वरः ।
त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ।३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।
परिवर्त्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ।४
लोकच्छायामयः लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः ।
न विदः सोमदेवोपि ये च नक्षत्रयोनयः ।५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्यखिलं जगत् ।६
अधिकृत्कालयोगात्मा इष्टोयज्ञस्यसोऽव्ययः ।
औषधीशः क्रियायोनिरब्जयोनिरनुष्णभाः ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—ऐसा ही होवेगा—यह कहकर परम प्रहर्षित और देवों की वृद्धि करने वाले इन्द्र ने सोम के समक्ष में युद्ध करने के लिए शिशिर आयुद्ध के प्रयुक्त करने का सन्देश दे दिया था और सोम से उसने कहा था कि हे सोम ! तुम तुरन्त ही चले आओ और पाशधारी वरुण देव की युद्ध में सहायता करो यह इस प्रकार से तुम्हारा इस समयमें वरुणका सहायक होना असुरों के विनाश के लिए

तथा देवगणों की विजय प्राप्त करने के लिए ही होगा ।१-२। हे सोम! आप मत्त हैं और मुकाबले के प्रतिवीर्य विक्रम वाले हैं तथा आप समस्त ज्योतियों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं । रसों के वेत्ता लोग सब लोकों में आप से परिपूर्ण रस को भली भाँति कहा करते एवं जानते हैं ।३। मण्डल में सागर की ही भाँति आपकी क्षीणता तथा वृद्धि स्पष्ट है और जगत् में अहोरात्र के काल को योजित करते हुए आप परिवर्तित हुआ करते हैं । आपका यह शश के सदृश जो अङ्क के चिन्ह हैं यह लोकों की इच्छा से ही परिपूर्ण हैं और इसको नक्षत्रों की योनि वाले जो देवगण भी हैं वे भी हे सोम ! नहीं जानते हैं ।४-५। आप आदित्य के पथ से भी ऊपर सब ज्योतियों के उर्ध्वभाग में समवस्थित हैं । आप सहसा इस तम को प्रोत्साहित करके सम्पूर्ण जगत् को अपने सुन्दर प्रकाश से भासित कर दिया करते हैं ।६। आप अधिकृत कालयोग के स्वरूप वाले—यज्ञ के अभीष्ट और अविनाशी हैं । आप औषधियों के स्वामी—सब क्रियाओं की योनि अब्ज योनि और शीतल दीप्ति से समन्वित हैं ।७।

शीतांशरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ।
त्वं कान्तिः कान्तिवपुषात्वं सोमःसोमपायिनाम् ।८
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ।
तद्गच्छ त्वं महासेन ! वरुणेन वरूथिना ।
शमयत्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ।९
यन्मा वदसि युद्धार्थे देवराज ! वरप्रद ! ।
एवं वर्षामि शिशिरन्दैत्यमायापकर्षणम् ।१०
एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य स्वहितमवेष्टितान् ।
विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे ।११
तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सपाशा हिमवृष्टयः ।
वेष्टयन्तिस्म तान् घोरान्दैत्यान्मेघगणाइव ।१२

तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्दू महाबलौ ।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ।१३

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ।१४

हे सोम ! आप शीतल किरणों वाले—अमृत के आधार—चपल श्वेत वाहन हैं । आप इस अपने कान्तिपूर्ण शरीर के द्वारा स्वयं ही कान्ति हैं और सोम के पान करने वालों के लिए साक्षात् सोम स्वरूप वाले हैं । आप समस्त भूतों के लिए परम सौम्य हैं तथा सब ऋक्षों के राजा और तिमिरके नाश करने वाले हैं । इसलिए हे महासेन ! वरूथी वरुण के साथ सहायता करने के लिए आप शीघ्र ही चले जाइए तथा जिससे हम सब युद्ध में दग्ध हुए जा रहे हैं उस इस आसुरी माया का शमन कीजिए ।८-९। इन्द्रदेव के इस प्रकार से प्रार्थना करने पर सोम ने कहा—हे देवराज ! हे वर प्रदान करने वाले देव ! जो आप युद्ध करने के लिए मुझे कह रहे हैं । मैं अभी दैत्यों की माया के आकर्षण करने वाले शिशिर की वर्षा करता हूँ । आप इन सबको मेरे हिम से संवेष्टित और मेरे शीत से निर्दग्ध देखिए । इस महायुद्ध में इन सब दैत्य सिंहों को मद और माया से रहित हुए ही आप देखेंगे ।१०-११। उनको हिमकिरणों से समुत्सृष्ट पाशों के सहित हिम की वृष्टियों में घोर दैत्यों को मेघ गणों की ही भाँति वेष्टित कर दिया था ।१२। महान् बलवान पाश और शीतल किरणों को धारण करने वाले वरुण और चन्द्र दोनों ने उन दानवों का हिम के पातों तथा पाशों के पातोंके हनन कर दिया था ।१३। वे दोनों अम्बुके स्वामी—पाश और हिम से युद्ध करने वाले उस महान घोर रण में जलों से क्षुब्ध दो महार्णवों की भाँति ही विचरण कर रहे थे ।१४।

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानमदृश्यत ।
जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिवसंवृतम् ।१५

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशांकवरुणावुभौ ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ।१६
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे ।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ।१७
शीतांशुनिहतास्ते ते दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ।१८
तेषान्तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै ।
विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्तिच ।१६
तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितांश्छीतरश्मिभिः ।
मयोददर्शमायावी दानवान्दिविदानवः ।२०

उन दिनों में आप्लावित दानवों की सेना उस समय में दिखलाई नहीं दे रही थी और यह सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हुए सम्वर्त्तक अम्भोदों के द्वारा संवृत की तरह ही हो गया था ।१५। उन समुद्यत हुए शशांक और वरुण दोनों अम्बुनाथों ने देवों ने दैत्यों के द्वारा निर्माण की हुई उस माया का एकदम शमन कर दिया था । शीतांशुओं के जाल से निर्दग्ध हुए तथा पाशों से रणस्थल में स्पन्दित हुए सब दैत्यगण बिना शिर वाले पर्वतों के समान ही चलने में असमर्थ हो गए थे ।१६-१७। शीत किरणों से निहत हुए तथा जल और हिम से अर्दित तथा हिम से प्लावित समस्त अङ्गों वाले सब दैत्यगण बिना ऊष्मा (ताप) वाली अग्नियों के ही तुल्य हो गये थे ।१८। दिवलोक में उन दैत्यों के विपरीत प्रभावाले विचित्र बिमान ऊपर उड़ते थे और नीचे भूमि पर गिर जाया करते थे । उस समय में दिवलोक में मायावी दानव मय ने उन सब दानवों को पाशहस्त ग्रथित और शीत रश्मियों से समाच्छादित देखा था ।१६-२०।

स शिलाजालबितता खड्गचर्माट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ।२१

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्गजयूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ।२२
निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् ।
प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्समन्ततः ।२३
सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चप्यजीवयत् ।२४
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ।२५
साश्मयन्त्रायुधधना द्रुमपर्वतसङ्कटा ।
अभवत् घोरसञ्चार्या पृथिवी पर्वतैरिव ।२६
अश्मना प्रहताः केचित् शिलाभिः शकलीकृताः ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चनः ।२७
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ।२८

उस समय में उस मय दानव ने शिला के जालों से वितत-खंग चर्मों के अट्टहास वाली—पादपों के उत्कट कूटों के अग्रभाग वाली—कन्दराओं से समाकीर्ण, कानों से युक्त—सिंह एवं व्याघ्रों के गुणों से संकुल-चिघाड़ते हुए गजों के यूथों से समन्वित-ईहामृग गणों से आकीर्ण पवन से आघूर्णित द्रुमों वाली-दिवलोक में स्वेच्छया गमन करने वाली कूजित और अपने ही यत्न से निर्माण की हुई परम प्रथित पार्वती माया को चारों ओर सृजित कर दिया था। उसने असि के शब्दों से और सम्पात करने वाले पादपों से देवों के संघों का हनन कर दिया था तथा दानवों को जीवित कर दिया था। उस पार्वती माया में नैशाकरी और वारुणी दोनों मायाएँ अन्तर्हित हो गई थीं और देवगणों को असि तथा आयस गणों से रण में तितर-बितर कर दिया था। ।२१-२५। अश्म यन्त्र और आयुधों से धन—द्रुम और पर्वतों के संकट

वाली वह माया पर्वतों से युक्त पृथिवी के समान अति घोर संचरण के योग्य हो गई थी ।२६। कुछ पाषाणों से प्रहत हुएथे और कुछ शिलाओं से खण्ड-२ कर दिये गये थे और द्रुमगणों से अनिरुद्ध कोई भी देवता दिखाई नहीं दे रहा था। भगवान गदाधर को वर्जित करके संपूर्ण सुरों की सेना अपध्वस्त धनुषों वाली भग्न प्रहरणों से आविल (मलिन) और प्रयत्न रहित बन गई थी ।२७।

स हि युद्धगत: श्रीमानीशानोऽश्मभिरकम्पत ।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोधगदाधर: ।२९
कालज्ञ: कालमेघाभ: समीक्षन् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दन्तु द्रष्टुकामस्तदा हरि: ।३०
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ।३१
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ।३२
सोऽनिलोऽनलसंयुक्त: सोऽनलश्चानिलाकुल: ।
दैत्यसेनान्ददहतुर्युगान्तेष्विवमूर्च्छितौ ।३३
वायु: प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ।३४

उस समय में युद्ध में गमन करने वाले श्रीमान् ईशान पाषाणों से कम्पित हो गए थे किन्तु जगत् के स्वामी भगवान गदाधर ने सहिष्णुता के गुण होने के कारण से क्रोध नहीं किया था। काल के ज्ञाता कालमेघ के तुल्य आभा वाले हरि ने उस समय में उस युद्ध में कालको देखते हुए वह देवासुरों के विमर्दको देखनेकी कामना वाले हो गये थे। इसके उपरान्त भगवान् ने उस रण में पावक और मारुत को देखा था और वे दोनों विष्णु के वाक्यसे प्रेरित होकर उस माया का अपकर्षण

करने वाले हुए थे। उस महायुद्ध में उद्भ्रान्त वेगों वाले और प्रवृद्ध उन दोनों के द्वारा वह पार्वती माया दग्ध तथा भस्मीभूत होकर नष्ट होकर नष्ट हो गई थी।२६-३२। वह अनिल (वायु) अनल (पावक)से संयुक्त और वह अग्नि वायु से समाकुल होकर इन दोनों ने युग के अन्त मे मूर्छित होने के समान दैत्यों की सेना का दहन कर दिया था।३३। वहाँ पर वायु प्रधावित हुआ था और पीछे से अग्नि वायु के अनुसार ही धावमान हुआ था। इस तरह से अनिल और अनल दोनों दानवों की सेना में क्रीड़ा करते हुए चरण करते थे।३४।

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च।
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः।३५
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्म्मणि पावके।
मया वधे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे।३६
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने।
संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः।३७
जये दशशताक्षस्य दैत्यानाञ्च पराजये।
दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्म्मविस्तरे।३८
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्ते दिवाकरे।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारित्रबन्धुषु।३९
यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु।
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने।४०
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च।
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु।४१
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्म्मणाम्।
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति।४२

चारों ओर से दानवों के विमानों के नीचे गिर जाने पर उनके ऊपर उड़कर भूमि पर गिरने तथा भस्मीभूत अवयवों के होने पर एवं

वात स्कन्ध से अपविद्ध हो जाने पर पावक के द्वारा किए हुए कर्म में मय का वध हो गया था और भगवान् गदाधर का स्तवन किया गया था ।३५-३६। जिस समय में मय दानव का वध हो गया था तो सभी दैत्य निष्प्रयत्न हो गए थे तथा त्रैलोक्य बन्धन से मुक्त हो गया था । सब देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और सभी ओर 'साधु-साधु अर्थात् अच्छा हुआ कि ध्वनियाँ होने लगी थी ।३७। इन्द्रदेव की जय होने पर और दैत्यों का पराजय हो जाने पर सब दिशाएँ विशुद्ध हो गई थीं एवं धर्म का विस्तार प्रवृत्त हो गया था ।३८। चन्द्रदेव अपावृप्त हो गये थे तथा दिवाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये थे एव चरित्र के बन्धु तीनों लोक अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो गये थे ।३९। यजमानों में और भूतों में पाप प्रशान्त हो गये थे तथा अभिन्न बन्धन वाला मृत्यु अग्नि में हूयमान हो गया था ।४०। सब देवगण यज्ञों में शोभा प्राप्त करने लगे तथा स्वर्ग के अर्थ का प्रदर्शन करते थे । सभी लोकपाल अपनी-अपनी दिशाओं में यानों से वर्तमान हो गये थे ।४१। उस समय में सिद्धों का तपश्चर्या में भाव स्थित हो गया था और जो पाप पूर्ण कर्म करने वाले थे उनकी अभाव में स्थिति थी । देवों का पक्ष परम प्रमुदित हो गया और दैत्यों का पक्ष एकदम विषाद से ग्रस्त था ।४२।

त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ।
अपावृत्ते महाद्वारे वर्त्तमाने च सत्पथे ।४३
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च ।
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ।४४
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे ।
अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते संग्रामकर्म्मणि ।४५
तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां तज्जयकृतक्रिया ।
पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् ।४६

कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ।
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणांगदः ।४७
बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान् ।
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान् ।४८

उस समय में तीन पादों वाला धर्म का निग्रह था और अधर्म केवल एक ही पादसे युक्त था। महाद्वार के अपावृत्त होने पर सब लोग सत्पथ में वर्तमान हो गये थे।४३। लोक अपने-अपने धर्मों और आश्रमों में प्रवृत्त थे तथा सब नृपति गण अपनी प्रजा की रक्षा कार्यमें युक्त एवं भ्राजमान हो गये थे।४४। सम्पूर्ण लोक प्रशान्त कल्मषों वाले थे एवं दानवीय तम भी एक दम शान्त हो गया था। वहाँ पर अग्नि और मारुत का संग्राम जब हुआ था तभी यह सब हो गया था। बहुत से लोक तन्मय हो गये थे और उन दोनों मे उनके विजय की करने वाली क्रिया भी हुई थी। मारुत और अग्नि के द्वारा किये हुए महान् पूर्व देवों का भय श्रवण करके परम विख्यात कालनेमि नाम वाला दानव वहाँ पर दिखलाई दिया था जिसका भास्कर के आकार के सदृश मुकुट था और वह शिञ्जित आभरणों एवं अङ्गदों वाला था। वह कालनेमि अपनी बाहुओं से व्योम तोलन करने लगा और पैरों से बड़े-बड़े महीधरों को भी क्षिप्त करता था। वह वृष्टि से युक्त बलाहकों को मुख के निश्वासों के द्वारा प्रेरित करता था।४५-४८।

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ।४९
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशोदश ।
संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम् ।५०
सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलांगुलिपर्वणा ।
लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितकर्म्मणा ।५१
उच्छ्रितेमाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।

दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ।५२
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम् ।
वीक्षन्तेस्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः ।५३
तं वीक्षन्तिस्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमाधिकमतं नारायणमिवापरम् ।५४
सोऽत्युच्छ्रयपुरः पादमारुता घूर्णिताम्बरः ।
प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः ।५५
समयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे ।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः स विष्णुरिव मन्दरः ।५६
अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शुक्रपुरोगमाः ।
कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ।५७

जिस समय में वह कालनेमि वहाँ रणस्थल में समागत हुआ था। उस समय वह तिर्यक—आयत और रक्त नेत्रों वाला था—उसका स्वरूप मन्दर गिरि के तुल्य उदग्र वर्चस से युक्त था—युद्ध में सब देवों को संतृप्त करता हुआ समायात हुआ था।४६। समस्त सुरों को बाँटता फटकारता हुआ दशों दिशाओंमें समाच्छादन करता हुआ और सम्वर्त्त काल में तृषित समुत्थित मृत्यु की भाँति दिखलाई दिया था। उच्छ्रय से युक्त—सुन्दर तल वाले—विपुल अंगुलियों के पर्वों से पूर्ण लम्बे आभरणों से संयुक्त कुछ चलित कर्मों वाले—उच्छ्रित—वपुष्मान दाहिने हाथ से देवों के द्वारा मारे हुए दानवों से उठकर खड़े हो जाओ ऐसा कह रहा था।५०-५२। उस समर क्षेत्र में द्वेष करने वाले शत्रुओं का काल चेष्टित कालनेमि को भय से विशेष भीत लोचनों वाले समस्त सुरगण देख रहे थे।५३। चारों ओर क्रमण करते हुए उस कालनेमि को त्रिविक्रम (वामन) से भी अधिक माने हुए दूसरे नारायण के भी समान स्वभूता (प्राणी) देखते थे।५४। अत्यन्त उच्छ्रयपुर वाले—पैरों की मारुत घूर्णित अम्बर से सम्पन्न उस असुर ने

प्रक्रमण करते हुए युद्ध स्थल में देवगणों को डरा दिया था ।५५। इसके अनन्तर रण में समय वाले असुरेन्द्र से परिष्वक्त होकर वह कालनेमि विष्णु मन्दर के समान शोभित हुआ था ।५६। इसके अनन्तर समस्त देवगण जिनमें इन्द्र देव सबके अग्रगामी थे दूसरे काल के ही समान आते हुए उस कालनेमि को देखकर विशेष रूप से व्यथित हुए थे ।५७।

७०—कालनेमि वृत्तान्त वर्णन

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः ।
विवर्द्धितमहातेजास्तपान्ते जलदो यथा ।१
तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ।२
ते वातभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः ।
तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ।३
रेजुरायोधनगता दानवाः युद्धकाङ्क्षिणः ।
मन्त्रमभ्यसतान्तेषां व्यूहञ्च परिधावताम् ।४
प्रेक्षताञ्चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ।
ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ।५
ते तु सर्वे भयन्त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।६
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ।
अरिष्टोबलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ।७
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः ।
एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः ।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दानवों की सेनाओं में महासुर कालनेमि विशेष वर्धित हुए महान् तेज वाला तप के अन्त में जलद के तुल्य ही था ।१। त्रैलोक्य के अन्तर्गत उसको देखकर ही दानवेश्वर अत्युत्तम अमृत का पान करके अपरिश्रान्त होते हुए उठकर खड़े हो गये थे ।२। तारकामय संग्राम में निरन्तर जित काशी के सब दानव जिनमें मय और तार पुरोगामी थे भय और सन्त्रास को व्यतीत कर देने वाले थे ।३। मन्त्रों का अभ्यास करने वाले और व्यूह का परिधावन करने वाले उनमें युद्ध की इच्छा रखने वाले दानव युद्ध स्थल में पहुँच कर अधिक शोभा एवं दीप्ति को प्राप्त हुए थे ।४। जो लोग वहाँ पर मय दानव के परम मुख्य युद्ध पुर:सर थे कालनेमि दानव को देखने वाले उनकी अत्यधिक प्रीति हो गयी थी ।५। वे सभी भय का त्याग करके परम हर्षित होते हुए युद्ध करने के लिए वहाँ पर उपस्थित हुए थे। उनमें मय, तार, वराह, वीर्यवान, हयग्रीव, विप्रचितिक: पुत्रश्वेत दोनों खर और लम्ब—वलिका पुत्र अरिष्ट और किशोर नामधारी—स्वर्भानु अमर प्रख्य, महासुर वक्त्रयोधी ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता और सभी तपश्चर्या में भी सुस्थित रहने वाले थे ।६-८।

दानवा: कृतिनो जग्मु: कालनेमिं तमुद्धतम् ।
ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रै रथ परश्वधै: ।९
कालकल्पैश्च मुसलै: क्षेपणीयैश्च मुद्गरै: ।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणै: ।१०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसै: ।
घातनीभि: सुगुर्वीभि: शतघ्नीभिस्तथैव च ।११
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितै: ।
दोर्भिश्चायतदीप्तैश्च प्रासै:पाशैश्च मूर्च्छनै: ।१२
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकै: ।
वज्रै: प्रहरणीयैश्च दीव्यमानैश्च तोमरै: ।१३

विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ।१४

ये समस्त परम कृती दानव उस अतीव उद्धत कालनेमि के समीप में पहुँचे थे । ये सभी दैत्यगण बहुत से हथियारों से समन्वित थे जिनमें गदा, भुशुण्डी, चक्र, परश्वध, काल कल्प मुसल, क्षेपणीय, मुदगर, अद्रि, सदृश, अश्म (पाषाण), दारुण भण्ड शैल, पट्टिश, भिन्दिपाल, उत्तमायस परिघ, घातिनी और अत्यन्त गुरु (भारी एवं बहुत विशाल) शतघ्नी (तोप), युग यन्त्र-उग्र ताडित निर्मुक्त मार्गण (शर)—आयत और दीप्त भुजायें, प्रास, मूर्च्छन पाश, भुजङ्गों के तुल्य मुखों वाले लेलिहान (फुस्कारें भरने वाले) और विशेष रूप से सर्पण करने वाले सायक—वज्र, प्रहरणीय, दीव्यमान तोमर, बिना कोश (म्यान) वाले खड्ग-शीत निर्मल तोमर आदि अनेक आयुध थे । इन सभी प्रकार के अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर सभी दानव संदीप्त मन वाले थे और शरासनों को ग्रहण किये हुए वहाँ पर युद्ध स्थल में समुपस्थित हो गये ।९-१४।

ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे ।
सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः ।१५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे ।
देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता ।१६
उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः ।
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ।१७
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।
यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता ।१८
सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा ।
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ।१९
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ।

तयोश्चम्वोस्तदानीन्तु बभूव स समागमः ।२०
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगविपर्यये ।
तद्युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम् ।२१

उस समय में उस महान रण स्थल में ये सब कालनेमि को अपना पुरोगामी बनाकर उपस्थित हो गये थे और वह दैत्यों की विशाल सेना परम दीप्त-प्रशस्त एवं अतीत श्रेष्ठ होकर दीप्तिमती हो गई थी। ।१५। इसी भाँति महेन्द्र के द्वारा सुरक्षित देवों की भी सेना दिवलोक में निमीलित समस्त अङ्गों वालीं नीलाम्बुदागममें ध्वनी परम प्रहृष्ट हो रही थी ।१६। चन्द्र और सूर्य के श्वेत एवं कृष्ण ताराओं से समुपेत वह देवों की सेना थी जो वायु के सदृश वेग से युक्त परम सौम्य और तारागणों की पताकाओं वाली ।१७। तोयदों से आविद्ध बसनों वाली, ग्रहों तथा नक्षत्रों के हास से संयुत थी । वह देवोंकी विशाल सेना यम इन्द्र, वरुण और परम धीमान् धनद कुबेर के द्वारा सुरक्षित थी ।१८। अत्यन्त सम्प्रदीप्त अग्नि के नयनों वाली—नारायण प्रभु में परायण एवं समुद्रों के ओघ के समान वह देवों की अतीव महान एवं विशाल सेना दिव्य हो रही थी ।१९। यक्षों और गन्धर्वों की शोभा से सुसम्पन्न भीम स्वरूप वाली तथा नाना भाँति के अस्त्र शस्त्रों से युक्त होती हुई दीप्तिमान हो गई थी । उसी समय में उन दोनों दैत्यों तथा देवों की सेनाओं का वहाँ पर समागम हो गया था ।२०। जिस प्रकार से युग का विपर्यय उपस्थित होने पर द्यावा पृथ्वी का संयोग हो जाया करता है उसी भाँति वह देवों और दानवों का परम संकुल घोर युद्ध हो गया था ।२१।

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च ।
निश्चक्रमुर्बलाभ्यान्तु भीमास्तत्र सुरासुराः ।२२
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ।
ताभ्यां बलाभ्यां संदृष्टश्चेरुस्ते देवदानवाः ।२३

वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यांयथागजाः ।
समाजघ्नुस्ततोभेरीशङ्खान्दघ्मुरनेकशः ।२४
स शब्दोद्यां भुवं खञ्च दिशश्च समपूरयत् ।
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ।२५
दुन्दुभीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम् ।
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तः परस्परम् ।२६
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ।
देवास्तु चाशनिं घोरंपरिघांश्चोत्तमायसान् ।२७
निस्त्रिंशान् ससृजुः संख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः ।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः ।२८

वह युद्ध दर्प तथा विनय का क्षमा एवं पराक्रम में परायण था। वहाँ पर उन दोनों ही सेनाओं से अतीव भीम (भयावह) स्वरूपों वाले सुर और असुर निकल पड़े थे अर्थात् युद्ध करने के लिए मैदान में आ गये थे। पूर्व और अपर सागरों से सरब्ध अम्बुदों के समान उन दोनों ही दलों से बाहिर निकल कर देखे गयेथे देव तथा दानब वहाँ रणस्थल में विचरण कर रहे थे।२२-२३। पुष्पों से समन्वित पर्वतीय बनों से जिस तरह गज निकल आया करते हैं उसी तरह से उन देव-दानवों ने सेनाओं के समुदाय से बाहिर निकल कर अनेक भेरी और शंखों की ध्वनि भूमण्डल-दिवलोक और सब दिशाओं में पूरित हो गयी थी। धनुषों की प्रत्यञ्चाओं के घात से समुत्थित निर्घोष—धनुषों के कूजित दुन्दुभियों की ध्वनि यह सब दैत्य ध्वनि से अन्तर्हित हो गयी थी। वे परस्पर में अस्त्रों का सम्पातन करते हुए एक दूसरों को नीचे गिराने लगे थे। बाहुओं से बाहुओं का भञ्जन करने लगे थे और दूसरे योद्धा द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा वाले भी थे। देवगण परम घोर अशनि और उत्तमायस परिघों का प्रयोग उस युद्ध में कर रहे थे। दानव गण युद्ध में निस्त्रिंशों तथा अत्यन्त भारी एवं विशाल गदाओं को शत्रुओं पर

छोड़ रहे थे। गदाओं के प्रहारों से सैनिक भग्न अङ्गों वाले तथा वाणों के द्वारा खण्ड-खण्ड अङ्गों वाले हो गये थे।२४-२८।

परितुभृंशं केचित् पुनः केचित् जघ्निरे।
ततो रथैः स तुरंगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः।२९
समीयुस्तेसुसंरुब्धा रोषादन्योन्यमाहवे।
संवर्तमानाः समरे सन्दष्टौष्ठपुटाननाः।३०
रथारथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः।
तेषां रथानान्तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम्।३१
नभोनभश्चहि यथानभस्यैर्जलदस्वनैः।
बभञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पातितारथैः।३२
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथान्।
अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः।३३
संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः।
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हतायुधि।३४
क्षरज्जलानां सदृशाःजलदानां समागमे।
तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम्।३५

परस्पर में इस तरह से से शस्त्रास्त्रों के प्रहारो से कुछ तो नीचे गिर गये थे और कुछ उठकर पुनः हनन किया करते थे। इसके उपरान्त रथों तुरंगों और शीघ्रगामी विमानों के द्वारा वे समक्ष में समागत हुए थे।२९। उस महायुद्ध में वे रोषावेश में परस्पर में अत्यन्त संरुब्ध होकर समागत हुएथे। समरांगण में वर्तमान होकर अपने मुखों के ओष्ठो को क्रोध से काट रहे थे।३०। रथो पर सवार रथ वालों से और पैदल सैनिक वीर पदातियो के साथ युद्ध कर रहे थे। शब्दवाही उनके रथ का शब्द अत्यन्त तुमुल हो रहा था।३१। जिस प्रकार से नभस्य जलदो की ध्वनि होती है वैसे ही नभ-नभ से टकरा रहा था। कुछ लोगों ने रथ का भंजन किया था और कुछ लोग सम्पातित रथों

के द्वारा सम्बाध कर रहे थे । अन्य लोग ऐसी सम्बाधा प्राप्त करके रथों के आगे चलने में भी असमर्थ हो गये थे । दूसरे लोग उस समर में परस्पर में हाथों से ऊपर को क्षिप्त करके दंशित हुए थे ।३२-३३ वहाँ पर भी चर्मधारी गण संह्लादमान आभरण वाले होकर हननकर रहे थे । अन्य लोग अस्त्रों से निर्भिन्न होकर युद्ध में आहत हुए रक्त का वमन करते थे । जलदों के समागम काल में क्षरण करते हुए जलों से सदृश हो गए थे । उन सबके द्वारा वहाँ युद्ध शस्त्रों और अस्त्रों से ग्रथित तथा क्षिप्त एवं उत्क्षिप्त गदाओं से आविल था ।३४-३५।

देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ।
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ।३६
अन्योन्यवाणवर्षेणयुद्धदुर्दिनमाबभौ ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिः स दानवः ।३७
व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।
तस्य विद्युच्चलापीडैः प्रदीप्ताशीनवर्षिणः ।३८
गात्रेनागगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः ।
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ।३९
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः ।
तिर्यगूर्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।४०
पर्वतादिव निष्क्रान्ताः पञ्चास्य इव पन्नगाः ।
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुभिः परिघैरपि ।४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ।
सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः ।४२

वह देवों और दानवों से परम संक्षोभ वाला एवं संकुल युद्ध हुआ था । वहाँ युद्ध दानवरूपी महान मेघोंवाला और देवोंके अनेक आयुधों से शोभित तथा परस्पर में एक दूसरों पर बाणों की वर्षासे एक दुर्दिन के समान ही शोभा दे रहा था । इसी बीच में परम क्रुद्ध होकर वह

कालनेमि दानव समुद्रों के ओघों से मूर्च्छमाण एक अम्बुद के तुल्य बढ़ रहा था। विद्युत के चलायमान आपीड़ों के द्वारा प्रदीप्त अशनि की वर्षा करने उसके अङ्गों से नागगिरि नाम वाले बलाहक निपतित हुए थे। भौंहों के भेद से समुत्पन्न स्वेद की वर्षा करने वाले—क्रोध से उष्ण और लम्बी श्वास लेनेवाले उसके मुखसे अग्नि के कणोंसे प्रतत अर्चियाँ निकलने लग गई थीं। गगन में ऊपर और तिरछी उसकी बाहुएँ बढ़ गई थीं जो कि पर्वत से मानो निकले हुए पाँचमुखों वाले पन्नगों के ही समान थीं। वह कालनेमि दानव अनेक प्रकार के अस्त्रों के जालों से—धनुषों से और परिघों के भी द्वारा उत्पन्न ऊँचे पर्वतो की भाँति दिव्य आकाश से बातें कर रहा था। वह संग्राम करने की लालसा वाला जिसके वस्त्र वायु से उद्धूत हो रहे थे वहाँ रणस्थल में स्थित हो गया था।३६-४२।

सन्ध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः।
ऊरुवेगप्रमथितैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः।४३

अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन्।
बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः।४४

न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि।
मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित्तु विदलीकृताः।४५

यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः।
तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना।४६
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः।
तेन शक्रः सहस्राक्षः सपन्दितः शरबन्धनैः।४७
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह।
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः।४८
निर्व्यापारः कृत्स्नेन विपाशो वरुणोऽमृधे।
रणोवैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा।४९

सन्ध्याकालीन आतप ने जिसकी शिलाओं को ग्रसित कर लिया है ऐसा साक्षात् मेरु पर्वत के तुल्य वह ऊरुओं के वेग से प्रमथित हुए पर्वत की चोटियों के अग्रभाग में स्थित पादपों वे वज्र के द्वारा महान् पर्वतोंके ही तुल्य देवगणों का पालन कर रहा था। बहुतसे शस्त्र और निस्त्रिशों से छिन्न-भिन्न शिरोरुहों वाले युद्ध में कालनेमि के द्वारा निहत हुए देवगण चलने में भी असमर्थ हो गये थे। कुछ तो मुष्टियोंके प्रहारोंसे निहत किए गये थे और कुछ देवगण विदलीकृत कर दिये गये थे।४३-४५। यक्ष और गन्धर्व यतिगण महोरगों के साथ ही नीचे निपतित हो गये थे। उस कालनेमि के द्वारा समर भूमि में समस्त देव गण विशेष रूप से त्रासित कर दिये गये थे।४६। वे सब देवता ऐसे विगत चेतना वाले हो गये थे कि वे यत्न करते हुए भी अर्थात् यत्न करने को पूर्ण चेष्टा करने पर भी कुछ भी यत्न नहीं कर सके थे। उसने सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र को भी शरोंके बन्धनों से स्पन्दित करदिया था।४७। वह यद्यपि अपने ऐरावत हाथी पर स्थित था तो भी वहां से हिल नहीं सकता था। वह बिना जलवाले अम्भोद (मेघ) के सदृश तथा निर्जन अर्णव के तुल्य प्रभा वाला हो गया था।४८। युद्ध में बिना पाश वाले वरुण को उसने बिना व्यापार वाला बना दिया था। काम रूपी परिघों के द्वारा उसने वैश्रवण को भी विरत कर दिया था।४९।

वित्तदोऽपि कृतः संख्ये निर्जितः कालनेमिना।
यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे।५०
याम्यामवस्थां सन्त्यज्य भीतः स्वन्दिशमाविशत्।
स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषाञ्च कर्म्मतत्।५१
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा।
स नक्षत्रपथङ्गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शनम्।५२
जहार लक्ष्मीं सामस्य तं चास्य विषयं महत्।

चालयामास दीप्तांशं स्वगद्वारात् स भास्करम् ।५३
सायनञ्चास्य विषयं जहार दिनकर्म्म च ।
सोऽग्नि देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ।५४
वायुञ्च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।
स समुद्रान् समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ।५५
चकारात्ममुखे वीर्यद् देहभूताश्च सिन्धव: ।
अप: स्ववशगा:कृत्वादिविजा याश्च भूमिजा: ।५६

उस महा दानव कालनेमि ने युद्ध में वित्तद (कुबेर) को भी निर्जित कर दिया था। मृत्यु के प्रहरणों वाले उस रण में उसने सर्वदा यमको भी विजित कर दिया था। और अपनी याम्य अवस्था का परित्याग करके वह भयभीत होकर अपनी दिशा में प्रवेश कर गया था। उसने सब लोकपालों को हटाकर और उनका जो कर्म था उसे स्वयंही करने लगा था। उस समय में सब दिशाओं में अपने ही देह को उसके चार रूपों में बनाकर स्थित कर दिया था। नक्षत्रों के मार्ग में पहुँच कर वह दिव्य स्वर्भानु का दर्शन करता था।५०-५२। उसने सोम की लक्ष्मी और इसके महान विषय का हरण कर लिया था। उसने दीप्त अंशु वाले भास्कर को स्वर्ग के द्वारसे चलित कर दिया था इसके सायन बिषय को तथा दिन के कर्म का भी समाहृत कर दिया था। उस कालनेमि ने देवमुख अग्नि को देखकर उसे अपने मुख के आश्रय वाला बना लिया था।५३-५४। उसने वायुदेव को भी बड़े वेग से जीतकर अपने वश में रहने वाला अनुग बना लिया था। उस कालनेमि दानव ने बलपूर्वक समस्त समुद्रो और सरिताओं को भी लाकर अपनेही मुख में कर लिया था। उसके वीर्य से सब सिन्धु उसके देहभूत बन गये थे। जो जल दिवलोक में समुत्पन्न थे और जो भूमिज थे। उन-उन सबको अपने ही वेश में रहने वाले कर लिया था।५५-५६।

स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतिर्यथा ।
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः ।५७
स लोकपालैकवपुश्चचन्द्रादित्यग्रहात्मवान् ।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ।५८
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः ।
पारमेष्ठये स्थितः स्थानेलोकानां प्रभवोपमे ।
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ।५६

वह स्वयं ही भूमण्डल में भूतों के पति के समान शोभित हो रहा था । वह दैत्य सब लोकों से परिपूर्ण और समस्त प्राणियोंको भय देने वाला था । लोकपालों के एक ही वपु वाला स्वयं था और चन्द्र तथा आदित्य ग्रहों के भी स्वरूप वाला था । उसने धरणी धरों के द्वारा सम्पूर्ण जगती को सुगुप्त करके स्थापित किया था । युद्ध में वह दानव पावक और अनिल के सम्पात वाला दीप्तिमान हो रहा था । पितामह को देवों की भाँति ही सब दैत्यगण उसका संस्तवन् किया करते थे ।५७ ।५८-५६।

७१—कालनेमि और विष्णु का युद्ध

पञ्च तन्नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्म्मणा ।
वेदो धर्म्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ।१
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दावेश्वरः ।
वैष्णवं पदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम् ।२
स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ।३
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ।

स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनंकश्यपं खगम् ।४
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थिम् ।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे लुब्धमानसः ।५
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः ।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ।६
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते ।
अनेन संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—उस समय में विपरीत कर्मों के होने के कारण से वेः, धर्म, क्षमा, सत्य और नारायण प्रभुके समाश्रय करने वाली श्री—ये पाँच नहीं रहे थे। इन पाँचों के उपस्थित न रहने से वह दानवेश्वर बड़े क्रोध से युक्त हो गया था और फिर भगवान विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ नारायण प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था। उसने वहाँ पर सुपर्ण पर समवस्थित—दानवों के विनाश करने के लिए अपनी परम शुभ गदा घुमाते हुए शंख-चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु को देखा था।१-३। वहाँ पर नारायण का स्वरूप जल सहित मेघ के समान था—विद्युत तुल्य वसन धारण करने वाला उनका रूप था तथा वे कश्यप के पुत्र-स्वर्ण पक्षों से समन्वित शिखी खग पर समारूढ़ थे।४। इस तरह के स्वरूप की शोभा से सम-स्थित एवं परम स्वरूप और रण में दैत्यों के विनाश करने के लिए उद्यत विष्णु भगवान को देखकर लुब्ध मन वाला वह दानव क्षोभ न करने के योग्य विष्णु भगवान से बोला।५। यह ही हम लोगों का सच्चा शत्रु है जो हमारे पूर्वजों के प्राणों का नाश करने वाला है तथा अर्णव में आवास करने वाले मधु तथा कैटभ का प्राण लेने वाला में। यही हमारा वह विग्रहहै जो शमन न करने के योग्य कहा जाया करता है। आज इसने ही रणक्षेत्र में बहुत से दानवों का हनन किया है।
।६-७।

अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालनिरपत्रप: ।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ।८
अयं सविष्णुर्देवानांवैकुण्ठश्चदिवौकसाम् ।
अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्य: स्वयम्भुव: ।९
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम् ।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हत: ।१०
अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे श्रि ता: ।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ।११
अय स निधने हेतु: सर्वेषाममरद्विषाम् ।
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ।१२
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवित: ।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ।१३
अयं सकालोदैत्यानांकालभूत:समास्थित: ।
अतिक्रान्तस्यकालस्यफलंप्राप्स्यति केशव: ।१४

यह वह हैं जो अत्यन्त ही निर्घृण और स्त्री तथा बालकों में भी निर्लज्ज है जिसने दानवों की नारियों के मन्तों का उद्धरण किया था ।८। यह ही वह विष्णु है जो दिवलोक में रहने वाले देवों का वैकुण्ठ है—योगियों का अनन्त और जल में शयन करने वाला आद्य स्वयम्भुव है । यह ही व्यथित आत्मा वाले हमारे देवों का नाथ है । इसी के क्रोध की प्राप्ति कर हिरण्यकशिपु मारा गया था ।९-१०। इसी की छत्र छाया का उपाश्रय प्राप्त करके देवगण मखों के मुख में श्रित हुआ हुआ करते हैं—और तीन प्रकार से हुत महर्षियों के द्वारा समर्पित आज्य का अशन किया करते हैं ।११। समस्त देवों के दुश्मनों के निधन होने में एक ही हेतु है । जिसके चक्र में युद्ध क्षेत्र में हमारे कुल सब प्रविष्ट हो गये हैं अर्थात् सुदर्शन चक्र के द्वारा कुलों के कुल मारे गए होकर समूल नष्ट हो गए हैं। यही वह है जो सुरों के लिए युद्धों में

अपना जीवित भी त्याग देने वाला हो जाया करता है और जो सूर्य के तेज के तुल्य अपने सुदर्शन चक्र को शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया करता है। यह दैत्यो का वह साक्षात् काल हैं जो कि कालभूत होकर समास्थित रहा करता है। यह केशव अतिक्रान्त कलि का फल प्राप्त करेगा ।१२-१४।

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागत:।
अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ।१५
यास्याम्यपचितिं दिष्टया पूर्वेषामद्य संयुगे ।
इमं नारायणं हृत्वा दानवानां भयावहम् ।१६
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्तत:।
जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ।१७
एषोऽनन्त: पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुत: ।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ।१८
द्विधाभूतं वपु: कृत्वा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च ।
पितरं मे जघानैका हिरण्यकशिपुं पुरा ।१९
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणि: ।
त्रीन् लोकानुज्जारैको क्रममाणस्त्रिभि: क्रमै: ।२०
भूयस्त्विदानीं संग्रामे संप्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ।२१

बड़े हर्ष की बात है कि इस समय में यह विष्णु मेरे समक्ष में समागत हो गया है। आज यह मेरी बाहुओंसे निष्पिष्ट होकर मुझको प्रणाम करेगा। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि आज युद्ध क्षेत्र में मैं अपने पूर्व पुरुषों की अपिचित को प्राप्त करूँगा अर्थात् उनके साथ किए व्यवहार का बदला ले लूँगा। आज दानवों को भय देने वाले नारायण का मैं हनन करके ही बदला ले लूँगा।१५-१६। यह जाति में अन्तरग अर्थात् अन्य जाति वाला विष्णु युद्ध में दानवों को बाधायें

दिया करता है। आज में बहुत ही शीघ्र रण में इसके पश्चात् सब देवगणों का भी वध कर डालूँगा। यह पहिले अनन्त होकर पद्मनाभ —इस नाम से सुना गया है। इसने ही परम घोर एकार्णव में उन दोनों मधु कैटभ का हनन किया था। पहिले इसने दो प्रकार का शरीर धारण किया था जो आधा तो सिंह का था और आधा नर का था। इसी ने मेरे पिता हिरण्यकशिपु का हनन किया था।१७-१९। अदिति ने परम शुभ गर्भ धारण किया था और देवतारणि इसी एक ने तीन पैड़ों के क्रम से क्रममाण होते हुए तीनों लोकों का उद्धरण कर डाला था। पुनः इस समय में इस तारकामय संग्राम के सम्प्राप्त होने पर मेरे साथ समागम करके वह विनष्ट हो जायगा २०-२१।

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत्।२२

क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः।
क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत्।२३

अल्पं दर्पबलं दैत्य ! स्थिरमक्रोधजं बलम्।
हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा गद्भाषसे क्षमम्।२४
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम्।
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः।२५

अहं त्वां दैत्य ! पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम्।
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्वा कः स्वस्तिमाम् व्रजेत्।२६
अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम्।
स्वेषु स्वेषुचस्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः।२७
एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहासदानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान्।२८

इस प्रकार से अनेक रीतियों से कहकर तथा नारायण पर रण

में आक्षेपों की बौछार करके अप्रतिरूप वाणियों के द्वारा उसने युद्ध करने को ही पसन्द किया था ।२२। इस तरह उस असुरेन्द्र के द्वारा आक्षिप्त होते हुए भी गदाधारी प्रभु ने कोई क्रोध नहीं किया था और महान क्षमा के बल का सहारा लेते हुए मुस्कराकर यह वचन कहा था ।२३। दर्प का बल अल्प होता है, हे दैत्य ! जो बिना किसी क्रोध से उत्पन्न होने वाला बल होता है वह स्थिर बल हुआ करता है । तू क्षमा का त्याग करके जो कुछ भी इस समय में बोल रहा है, इन दर्प (घमण्ड) से उत्पन्न हुए दोषों से ही हत हो गया है ।२४। मेरी मति में तो बहुत अधीर है । तेरे इन वचनों के बल को धिक्कार है जहाँ पर कोई बलशाली पुरुष नहीं रहा करते हैं वहाँ पर स्त्रियाँ भी इसी तरह से गर्जना किया करती है ।२५। हे दैत्यराज ! मैं तो तुझको अपने पूर्वज पुनखाओं के ही मार्ग का अनुगमन करने वाला देख रहा हूँ । प्रजापति के द्वारा किए सेतु का भेदन करके कौन पुरुष कल्याण वाला हो सकता है? अर्थात् वह कभी कल्याणकारी हो ही नहीं सकता है ।२६। मैं आज ही देवों के व्यापारों के घात करने वाले तुझको नष्ट कर डालूँगा और उन देवताओं को उनके अपने-२ स्थानों पर स्थापित कर दूँगा ।२७। उस महान युद्ध क्षेत्र में श्रीवत्स के चिन्ह को धारण करने वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से बोलने पर वह दानव कालनेमि बहुत हँसा था और उसने बहुत ही क्रोध के अपने हाथों को आयुधों से युक्त कर लिया था ।२८।

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुवक्षस्यताडयत् ।२९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ।३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः ।
न चचाल ततो युद्धे कम्पमान इवाचलः ।३१

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमिर्महासुरः।
सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्याबाहुभिः।३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुणोपरि।
कर्मणातेनदैतस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत्।३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्धिन सा गदा।
सुपर्णंव्यथितं दृष्ट्वा कृतञ्च वपुरात्मनः।३४
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे।
व्यवर्द्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः।३५

उस दानव ने उस रण स्थल में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण करने वाले सैंकड़ों बाहुओं को उठाकर क्रोध से द्विगुणित लाल नेत्रों वाले ने भगवान् विष्णु पर उनके वक्षःस्थल पर प्रताड़ित किया था।२९ अन्य दानव भी जिनमें मय और तार पुरोगामी थे सबने निस्त्रिंश और अन्य आयुधों को समुद्यत करके भगवान् विष्णु पर रण में आक्रमणकर दिया था।३०। सब प्रकार के समुद्यत आयुधों वाले–अत्यन्त बलशाली दैत्यों के द्वारा इस भाँति ताड्यमान होते हुए भी भगवान् विष्णु उस युद्ध में बिना कम्प वाले एक पर्वत की तरह स्थित रहते हुए वहाँ पर बिल्कुल भी चलित नहीं हुए थे।३१। विष्णु प्रभु सुपर्ण पर ही संसक्त थे कि महासुर उस कालनेमि ने अपना पूर्ण जोर लगाकर प्राणपण से महान् विशाल गदा को बाहुओं से उठाकर जो कि अत्यन्त घोर और जाज्वल्यमान थी बहुत ही संरब्ध होते हुए गरुड़ के ऊपर उसे छोड़ दिया था। दैत्यके उस कर्मसे भगवान् विष्णु को भी बड़ा विस्मय हो गया था।३२-३३। जिस समय में उस दानव ने सुपर्ण के मस्तक पर उस महती गदा को पातित किया था। सुपर्ण को देखकर उन्होंने अपना वपु व्यथित कर दिया था फिर महान् क्रोधसे संरक्त नयनोंवाला होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ ने अपना चक्र ग्रहण किया था और सुपर्ण के साथ ही वह विभु आगे को बढ़ गए थे।३४-३५।

भुजाश्चास्य व्यवर्द्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ।
प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः ।३६
ववृधे च पुन र्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ।
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ।३७
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टवुर्मधुसूदनम् ।
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमस्वरमम्बरैः ।३८
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधा दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
सूर्यंकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ।३९
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् ।
सुवर्णरेणु पर्यन्तं वज्रनाभं भयापहम् ।४०
मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तन्दानवसम्भवः ।
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ।४१
स्रग्दाममाला विततं कामगं कामरूपिणम् ।
स्वयंस्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ।४२

इनकी भुजायें दशों दिशाओं में व्यापक होती हुई बढ़ गयी थीं और भगवान् केशव ने उनको सब प्रदिशाओं में—भूमि तथा आकाश में पूरित कर दिया था ।३६। फिर महान ओज से समस्त लोकों का क्रमण करने की इच्छा वाले प्रभु और भी वर्धित हो गये थे तथा नभ-स्तल में भी उन असुरेन्द्रों से तर्जन के लिए वे वर्द्धमान हो गये थे । अध्वरों के द्वारा अभ्र रहित अम्बर की भाँति किरीट के द्वारा सबका स्पर्श करते हुए वे उस समय में हो गए थे तथा वहाँ पर मधुसूदन प्रभु का संस्तवन ऋषिगण और गन्धर्व लोग करने लगे थे ।३७-३८। प्रभुने अपने चरणों से सम्पूर्ण वसुधा को समाक्रान्त करके बाहुओं से सभी दिशाओं को प्रच्छादित कर दिया था तथा उनने फिर सूर्य की किरणों के तुल्य आभा वाले—सहस्र अरों से समन्वित और अरियों के क्षय को करने वाले उस चक्र को प्रयुक्त किया था ।३९। वह चक्र दीप्त अग्नि के

समान महान घोर था तथा देखनेसे वह बहुत सुन्दर दर्शनवाला अर्थात् सुदर्शन नामधारी था। सुवर्ण रेणुपर्यन्त—वज्रनाभ–भयों का अपहरण करने वाला—दानवों के शरीरों से समुत्पन्न मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रुधिर से सिक्त–क्षुर पर्यन्त मण्डल वाला—एक परम अद्वितीय प्रहरण (अस्त्र)–स्रगदाम (मालाएँ) से विनत–स्वेच्छया गमन करने वाला-कामरूपी—समस्त शत्रुओं को भय देने वाला और स्वयंभू प्रभु के द्वारा वह सृजित किए जाने वाला था।४०-४२।

महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्।
क्षपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सास्थाणुजङ्गमाः।४३
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्ति यान्ति महामृधे।
दतप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा।४४
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः।
समुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा।४५
चिच्छेद बहूश्चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः।
तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै।४६
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः।
स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पतदानवः।४७
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः।
सम्वितत्यमहापक्षौवायोः कृत्वासमञ्जसम्।४८
उरसा पातयामास गरुडःकालनेमिनम्।
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन्।४९

वह ऊपर बतलाये गुणगणों वाला सुदर्शन चक्र महर्षियों के रोषों से समाविष्ट था और नित्य ही युद्ध में दर्प से समायुक्त रहने वाला था। जिसके क्षेपण करने से सभी स्थावर एवं जङ्गम लोक मूर्छित हो जाया करते हैं। महान युद्ध में क्रव्याद आदि जो भूत हैं वे उस चक्र के द्वारा प्रवाहित हुए शत्रुओं के रक्त के पान से परम तृप्ति को प्राप्त

हुआ करते हैं ऐसे उस अनुपम कर्म के करने से उग्र और सूर्य के वर्चस के तुल्य उस अपने सुदर्शन चक्र को उठाकर समर में क्रोध से दीप्त गदाधर ने छोड़कर अपने तेज के द्वारा युद्धस्थल में दानवों के तेज का छेदन कर दिया था और श्रीधर प्रभु ने उस अपने चक्र से कालनेमिकी बाहुओं को भी काट डाला था। उस दानव के अग्नि से परिपूर्ण अट्ट-हास वाले सौ परम घोर मूखों का श्री हरि ने उसी चक्र के द्वारा बल पूर्वक प्रमथन कर दिया था। किन्तु वह दानव बाहुओं और शिर के कट जाने पर भी वहाँ पर प्रकम्पित नहीं हुआ था। उसका वह कबन्ध (धड़) युद्ध स्थल में बिना शाखा वाले पादप के समान अवस्थित था। गरुड़ ने अपने पंखों को फैलाकर तथा वायु के समान वेग को करके अपने उर-स्थल के द्वारा उस कालनेमि के धड़ को नीचे गिरा दिया था और उसका वह बिना मुख तथा बाहुओं वाला देह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था।४३-४६।

निपपात दिवन्त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम्।
तस्मिन्निपतिते दैत्येदेवाः सर्षिगणास्तदा।५०
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्।
अपसर्पन्तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः।५१
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितं रणे।
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेष्वपीडयन्।५२
चकर्ष कस्यचिद्वक्त्रं मध्येगृह्णादथापरम्।
ते गदाचक्रनिदग्धा गतसत्वा गतासवः।५३
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले।
तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः।५४
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मो गदाधरः।
तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये।५५
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मलोकपितामहः।
सर्वैब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः।५६

वह धरणी तल को क्षोभित करता हुआ दिवलोक को त्याग कर के भूमि पर गिर गया था। उस समय में उस महा दानेश्वर के निपतित हो जाने पर समस्त देवगण और ऋषि वृन्द 'साधु-साधु' अर्थात् बहुत ही अच्छा हुआ यह कहते हुए सब एकत्रित होकर भगवान वैकुण्ठ नाथ की पूजा करने लगे थे। युद्ध में दैत्यगण पराक्रम देख लेने वाले अपसर्पण कर जावे। किन्तु बाहुओं से व्याप्त वे सब रणस्थल में चल नहीं सकते थे। उनमें से कुछ को तो केश पकड़ कर ग्रहण किया था और कुछ को कण्ठों में ताड़ित किया था।५०-५२। किसी के मुख को पकड़कर कंपित किया था और दूसरे को मध्य भाग में ग्रहण किया था। वे सब गदा और चक्र के प्रहारों से निर्दग्ध—गत प्राण और हीन तत्वों वाले हो गये थे।५३। गगन से उद्भ्रष्ट अङ्गों वाले धरणी तल में सब निपतित हो गये थे। उन सब दैत्यों के निहत हो जाने पर पुरुषोत्तम प्रभु गदाधारी महेन्द्र का कर्म सम्पादन करके तथा इन्द्र का प्रियकर्म करके उस विमर्द तारकामय संग्राम के निवृत होने पर वहाँ पर ही समवस्थित हो गये थे। उसी स्थल पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी समस्त ब्रह्मर्षिगण और गन्धर्व एवं अप्सरागणों के साथ शीघ्र ही आकर उपस्थित हो गये थे।५४-५६।

देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत्।
कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम्।५७
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः।
योऽयं त्वया हतो विष्णो ! कालनेमी महासुरः।५८
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते।
एषदेवान्परिभवन्लोकांश्चससुरासुरान्।५९
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति।
तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा।६०

यदयं कालकल्पस्तु कालनेमिर्निपातितः ।
तदा गच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ।६१
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ।
कञ्चाहं तव दास्यामि वरं वरवताम्वर ! ।६२
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् ।
निर्यातयैतत्त्रैलोक्ये स्फीतं निहतकण्टकम् ।६३

वेदों के देव श्री हरिदेव का अभ्यर्चन करते हुए यह वाक्य कहा था कि हे देव ! आपने बहुत बड़ा कर्म सम्पादित किया है और सुर गणों के शल्य को आपने उद्धृत कर डाला है । दैत्यों के इस बध से आपने हम सबको परितोषित कर दिया है जो कि हे विष्णो ! आपने इस महासुर कालनेमि को निहत कर डाला है ।५७-५८। इस युद्ध में आपही एक इसके हनन करने वाले थे अन्य कोई भी आपके अतिरिक्त नहीं है । इससे सब वेदों को परिभूत कर दियाहै और सुरों एवं असुरों के सहित लोकों का भी परिभव किया है । यह ऐसा दुष्ट था कि यह ऋषियों का कदन करके मुझको भी अपनी गर्जना दिखाता था । आप के अत्युत्तम इस कर्म से मैं बहुत ही परितुष्ट हुआ हूँ ।५९-६०। जो यह काल के सदृश कालनेमि आपके द्वारा निपतित हुआ है यह बहुत ही अच्छा हो गया । अब आप पधारिए आप का परम मङ्गल होवे— अब हमभी उत्तम दिवलोक को चलते हैं । वहाँ पर सदोगत समुपस्थित ब्रह्मर्षि गण आपकी प्रतिक्षा कर रहे हैं । हे बरदान देने बालों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपको कौन-सा वरदान दूँगा । आप सुरों में और दैत्यों में बरदानों को प्रदान करने वाले वरद हैं । इस परम विस्तृत त्रैलोक्य को निहत कण्टक वाला निर्यात कर डालिए ।६१-६३।

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शक्रास सुमहात्मने ।
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ।६४

देवांश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।
शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ।६५
श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ।
अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।६६

दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ।
अस्मिन्महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ ।६७

विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ।
स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ।६८

याम्यां यमः पालयितामुत्तराञ्च धनाधिपः ।
ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः ।६९

अब्दं ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह ।
आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ।७०

हे विष्णो ! इसी युद्ध में आपने महान आत्मा वाले इन्द्र के लिए यह सब कर दिया है । इस प्रकार से भगवान ब्रह्माजी के द्वारा भाव-नाशी श्री हरि से कहा गया था । तब श्री हरि ने इन्द्र जिनमें प्रधान वे उन समस्त देवों से परम शुभ वाणी में कहा था—विष्णु भगवान ने कहा था—अब सब देवगण श्रवण करलो जितने यहाँ पर इस समय में समागत हुए हैं ।६४-६५। श्रवण में परम समाहित श्रोत्रों से पुरन्दर को आसे करके हमने समर में कालनेमि प्रमुख सब दानव निहत कर दिए थे । ये समस्त दानव विक्रम से उपेत थे तथा इन्द्र से भी महत्तर थे । इस महान संग्राममें दो दैतेय विनिःसृत हुए थे।६६-६७। एक तो दैत्येन्द्र विरोचन था दूसरा महान ग्रह स्वर्भानु था । अब इन्द्र अपनी दिशा को सेवन करे और वरुण अपनी दिशा को चले जावें ।६८। याम्य दिशा में यम चले जावें । धनाधि उत्तर दिशा में यम चले जावें । ऋक्षों के सहित यथा योग चन्द्रमा भी चले जावें । ऋतुमुख में अब्दों के सहित

सूर्य शब्द का सेवन करे। सदस्योंके द्वारा अभिपूजित आज्यभाग प्रवृत्त हो जावें।६६-७०।

हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा।
देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः।७१
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्।
वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः।७२
त्रींस्तु वर्णांश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चात्मजैर्गुणैः।
कृतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।७३
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक्।
यान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु।७४
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्वएव स्वकर्मभिः।
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः।७५
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यान्तु सिंधवाः।
दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः।७६
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।
स्वगृहे स्वर्गलोके वा संग्रामे वा विशेषतः।७७

वेदों के द्वारा दृष्ट कर्म से विप्रों के द्वारा अग्नियों में हवन किया जावे। अग्नि के होम म देवगण-स्वाध्याय से महर्षि गण और श्राद्ध से पितृगण सुखपूर्वक तृप्तिको प्राप्तकरें। वायु अपने मार्ग में स्थित होकर सञ्चरण करें और पावक तीन प्रकार दीप्त होवे दक्षिणीय द्विजातियों के द्वारा ऋतुगण तीन वर्णोंको और तीन लोकोंको अपने गुणों से तृप्ति करते हुए सम्प्रवृत्त होवें।७१-७३। याज्ञिकों के लिए पृथक-२ दक्षिणायें उत्पन्न होवें। सूर्य गौ को सोम रसों को और वायु प्राणियों में प्राणों को प्रदान करें। सभी अपने-अपने कर्मों के द्वारा तृप्त करते हुए प्रवृत्त होवें। यथावत् आनुपूर्वी से महेन्द्र और मलय में उद्भव पाने वाले स्वकर्मोंसे तृप्ति देते हुए प्रवर्त्तित हो जावें। त्रैलोक्य

की माताएँ समस्त सिन्धु समुद्र में गमन करें। सब देवता लोग अब दैत्यों के द्वारा होने वाले भयका त्याग कर देवें। और सबका कल्याण होवे। अब मैं सनातन ब्रह्मलोक को गमन करूँगा। अथवा घर में—स्वर्ग लोक में तथा विशेष रूप से संग्राम में गमन करूँगा।७४-७७।

विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः।
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा।७८
सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवन्धनम्।
एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः।७९
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं स्वर्लोन्तु महायशाः।
एतदाश्चर्यमुक्तं संग्रामे तारकामये।
दानवानाञ्च विष्णोश्च यन्मान्त्वं परिपृष्टवान्।८०

आपको विश्रम्भ नहीं मानना चाहिए। ये दानव नित्य ही क्षुद्र हैं। छिद्रों में ही प्रहार किया करते हैं और उनकी संस्थिति निश्चित नहीं है।७८। आप लोग परम सौम्य तथा सरल भावों वाले हैं। आपका आर्जव (सरलता) ही धन है। इस प्रकार से सत्य पराक्रम वाले भगवान विष्णु ने सुर-गणों से कहकर फिर महान यश वाले वे ब्रह्माजी के साथ ही स्वर्गलोक को चले गये थे। उस तारकामय संग्राम में यह एक आश्चर्य हो गया था जिसको दानवों का और भगवान् विष्णु का ही कहना चाहिए और यही आपने मुझसे पूछा था।७९-८०।

७२—भव माहात्म्य वर्णन

श्रुतः पद्मोद्भवस्तात विस्तरेण त्वयेरितः ।
समासाद्भवमाहात्म्यं भैरवस्य विधीयताम् ।१
तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम् ।
आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ।२
तपसा महता युक्तोह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम् ।
स कदाचिन् महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।३
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे ।
तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना ।४
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति ।
तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ।५
सुषुवे बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि तत् ।
रुद्राबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धस्य तु ।६
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तेषां विदीर्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन ! आपके द्वारा वर्णित विस्तार-पूर्वक पद्मोभव का श्रवण कर लिया है । अब आप संक्षेप में भैरव का भव माहात्म्य वर्णित कीजिए ।१। महर्षि सूतजी ने कहा—देवों के देव उसके भी उत्तम कर्म का आप श्रवण करो । एक अन्धक नाम वाला भिन्नाञ्जन चय वाला दैत्य था ।२। वह दैत्येन्द्र महान तप से युक्त था और देवों का वध न करने के योग्य था । उसने किसी समय में पार्वती के सहित प्रभु महादेव को क्रीड़ा करते हुए देख लिया था और उसी समय में दैत्य ने देवी पार्वती के हरण करने का उपक्रम किया था । उसी समय में उस दैत्य का शम्भु के साथ परम घोर युद्ध हुआ था ।३-४। आनन्त्य घोर विषय में महाकाल वन के प्रति उस समय में

उस महायुद्ध मे अन्धक के द्वारा रुद्रदेव को अत्यन्त उत्पीड़ित किया था ।५। पाशुपत नाम वाले अत्यन्त उग्र बाण को प्रसूत किया था । रुद्रदेव के बाण के द्वारा विशेष निर्भेद को प्राप्त होने वाले अन्धक के रुधिर मे सैकड़ों और सहस्रों अन्धक समुत्पन्न हो गए थे । जब उनका विदारण किया गया तो फिर विदीर्यमाण उनके रुधिर से दूसरे और फिर अन्धक पैदा होगए थे ।६-७।

बभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
एवं मायाविनं दृष्ट्वा तत्रच देवस्तदान्धकम् ।८
पानार्थमन्धकास्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा ।
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मालिनीतथा ।९
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै न ऋती तथा ।
सौरी सौम्या शिव दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ।१०
वाराही नारसिंहीच वैष्णवीच चलच्छिखा ।
शतानन्दाभगानन्दा पिच्छिलाभगमालिनी ।११
बलया चातिबला रक्ता सुरभी मुखमण्डिका ।
मातृनन्दा सुनन्दाच बिडाली शकुनी तथा ।१२
रेवतीच्च महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका ।
जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ।१३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।
सुभग दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ।१४

उस समय में परम घोर अन्धक उत्पन्न हो गए थे जिनसे यह समस्त जगत् एकदम व्याप्त हो गया था । उस समय में इस प्रकार से मायावी उस अन्धक को देव ने देखकर उस अन्धकास्र के पान के लिए उस समय में उन्होंने माताओं का सृजन किया था । अब उन माताओं के नाम बतलाये जाते हैं—माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, मालिनी, सौपर्णी, वाव्या, शाक्री, नैऋती, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा

वारुणी ।८-१०। वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिच्छला, भगमालिनी, बला, अतिबला, रक्ता, सुरभी, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, विडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, काली, महाकाली दूती, सुभगा, दुर्भगा, कराली, नन्दिनी ।११-१४।

अदितिश्च दितिश्चैव मारीवै मृत्युरेव च ।
कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी ।१५
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ।१६
खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी ।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा ।१७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा ।
सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा ।१८
भृकुटी बहुपुत्रीच प्रेतयाना विडम्बिनी ।
क्रौञ्ची शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनुः ।१९
उषा रम्भा मेनकाच सलिला चित्ररूपिणी ।
स्वाहास्वधा बषट्कारा धृतिज्येष्ठाकपर्दिनी ।२०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।
मुखेयिला मङ्गला च महानासा महामुखी ।२१

अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी, भुशुण्डी, शाङ्करी, चण्डा, लाङ्गली, कुटभी, खेरा सुलोचना, धूम्रा, एकवीरा, करालिनी विशाल दंष्ट्रिणी श्यामा, त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उन्मत्ता, उदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भृकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना विडम्बिनी, क्रौञ्ची, शैलमुखी, विनता, सुरमा, दनु, ऊषा, रम्भा,

मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा कपर्दिनी, माया, विचित्र, रूपा, कामरूपा, सङ्गना, मुखेबिला मंगला, महानाशा, महामुखी ।१५-२१।

कुमारी रोचनाभीमा सदाहा सा मदोद्धता ।
अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णी महासुरी ।२२
केशिनी शङ्खिनीलम्बा पिङ्गलालोहितामुखी ।
घण्टारवाथदंष्ट्रा रोचना काकजङ्घिका ।२३
गोकर्णिकाच मुखिका महाग्रीवा महामुखी ।
उल्कामुखी धूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ।२४
मोहना कम्पनाक्ष्वेला निर्भया बाहुशालिनी ।
सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोकानन्दिनी तथा ।२५
ज्योत्स्नामुखीच रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ।२६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी अम्गमेखला ।
अचाला बञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ।२७
चिंता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी ।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी ।२८

कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालपर्णी कुम्भपर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, लोहितामुखी, घन्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काकजंघिका, गोकर्णिका, मुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, धूमशिखा, कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कम्पना क्ष्वेला, निर्भया। बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निकुम्भा, रक्त कम्पना, अविकारा, महाचित्रा, चन्द्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातङ्गी, लम्ब मेखला, अबाला, बञ्चना, काली, प्रमोदा, लांगलावती, चिन्ता चित्त, जला,

कोणा, शान्तिका, अघ विनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बसटा, बिसटा-वास चूर्णिनी ।२२-२८।

स्खलन्ती दीर्घकेशीच सुचिरा सुन्दरी शुभा ।
अयोमुगी कटुमखी क्रोधनी च तथाशनी ।२९
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ।३०
कंकुकर्णो महानादा महादेवी महोदरी ।
हुङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ।३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवाज्वालामुखी तथा ।
एताश्चान्याश्च देवेश: सोऽसृजन्मामरस्तदा ।३२
अन्धकानां महाघोरा: पपुस्तद्रुधिरं तदा ।
ततोऽन्धकासृज: सर्वा: परां तृप्तिमुपागता: ।३३
तासु तृप्तासु संभूता भूय एवान्धकप्रजा: ।
अर्दितस्तैर्महादेव: शूलमुद्गरपाणिभि: ।३४
तत: स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकुत: ।
जगाम शरणं देवं वासुदेवं वासुदेवंमजं विभुम् ।३५

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, कंकुकर्णो, महानादा, महादेवी, महोदरी हुंकारी, रुद्र, सुसटा, रुद्रेशी, भूतडामारी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी इन इतना तथा अन्य माताओं का देवेश्वर ने उस समय में सृजन किया था ।२९-३२। उस समय में इन महा घोराओं ने रुधिर का पान किया था । इसके अनन्तर अन्धकों के रुधिर से सभी मातायें के रुधिर से सभी माताएं परम तृप्तिको प्राप्त हुई थीं । उनके तृप्त होने पर भी पुन: अन्धकों की प्रजा उत्पन्न हुई थीं । शूल और मुद्गर हाथों में धारण करने वाले उनके द्वारा महादेव बहुत ही अर्दित

हुए थे। इसके उपरान्त वह देव शंकर अन्धकों के द्वारा व्याकुल कर दिए गये थे और फिर वे अज—प्रभु वासुदेव भगवान की शरणागति में प्राप्त हुए थे।३३-३५।

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम् ।
या पपौ सकलन्तेषामन्धकानामसृक् क्षणात् ।
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम् ।३६
तथा तथाऽधिकं देवी संशुष्यति जनाधिप ! ।
पीयमाने तथातेषामन्धकानां तथासृजि ।
अन्धकास्तु क्षयन्नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा ।३७
मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक् ।
चकार वेगाच्छूलाग्रे सचतुष्टावशङ्करम् ।३८
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः ।
सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च ।३९
यतो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ।
भगवन् ! भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषान् ।४०
त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः ।४१
तस्माद्घोरादभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ।
इत्येवं शंकरेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा ।४२

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने शुष्क रेवती की सृष्टि की थी जिसने क्षण भर में ही उन अन्धकों के रक्त को पी लिया था। हे जनाधिप ! जैसे-२ वे उस अन्धक के रुधिर का पान करती थीं वैसे-२ ही देवी अधिक शुष्क हो जाया करती थी। उस प्रकार से अन्धकों के रक्त का पान कर लेने पर वे सब अन्धक त्रिपुरारि के द्वारा क्षय को प्राप्त कर दिए गए थे।३६-३७। उस समय में मूलान्धक था उस पर त्रिलोकी के धारण करने वाले भगवान् शिव ने विक्रम करके वेग के

साथ उसको अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर कर दिया था। उस अन्धक ने फिर भगवान् शंकर का स्तवन किया था। वह अन्धक महान् वीर्य वाला था और उससे भगवान् भव परम तुष्ट हो गये थे। फिर तो शंकर ने उसको अपनी समीपता में रहने का पद तथा गणेशत्व पद का प्रदान किया था।३८-३९। इसके अनन्तर सब मातृगणों ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहा था—हे भगवन् ! हम अब सब देव-असुर और मानवों का भक्षण करेंगी क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही प्रसाद से समुत्पन्न हुआ है और स्थित है सो अब आप हमको आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं। भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा था। शंकर बोले—आप सबको इन प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिए इन घोर जो प्रजाओं के भक्षण कर जाने के अभिप्राय हैं उनसे शीघ्र ही अपने मन को हटालो। इस प्रकार से कहे हुए इन भगवान् शंकर के वचनों का उन मातृगणों ने उस समय में अनादर कर दिया था।४०-४२।

भक्षयामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम्।
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ।४३
नृसिंहमूर्त्तिं देवेश प्रदध्यौ भगवाञ्छिवः।
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम् ।४४
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम्।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम्।
कल्पान्तामरुतक्षुब्धं सप्तपर्णसमस्वनम् ।४५
वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम्।
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ।४६
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम्।
नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम् ।४७
वज्राङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम्।

श्रोणोसूत्रेणामहता काञ्चनेन विराजितम् ।४८
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुग्मविभूषणम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम् ।४९

अत्युग्र स्वरूप वाली उन माताओं ने इस चराचर सम्पूर्ण जगत् तथा त्रैलोक्य का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया था। उस समय में मातृगण के द्वारा इस त्रिलोकी के भक्ष्यमाण होने पर भगवान शिव ने देवेश श्री नृसिंह मूर्त्ति का ध्यान किया था जिनका स्वरूप आदि और अन्त से रहित है और जो इस सम्पूर्ण लोक के उत्पत्ति को करने वाले हैं। दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु के वक्ष:स्थल के रुधिर से चर्चित महान् नखों वाले—विद्युत के तुल्य जीभ से युक्त—महान् दाढ़ों वाले—स्फुरित हुए केसरों के कण्टकों से संयुत-कल्प के अन्तमें क्षोभ से पूर्ण मारुत से समन्वित तथा सप्तपर्ण वृक्षोंके तुल्य ध्वनि वाले थे। वज्रके समान तीक्ष्ण नखों वाले—घोर-कानों तक व्याहित मुख वाले—मेरु पर्वत के सदृश—उदय कालीन सूर्य के समान नेत्रों वाले—हिमालयकी शिखर के समान आकार से संयुत—सुन्दर दाढ़ों समुज्ज्वल मुख वाले—नखों से निकली हुई रोषाग्नि की ज्वालाओं की माला वाले—वज्र के अङ्गों के धारण कर्त्ता-मुकुट से युक्त—हार और केयरों के आभरण से भूषित-तेज से समाक्रान्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आगार से सकुल उनका स्वरूप था। ।४३-४९।

पवनं भ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् ।
आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ।५०
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्तं महास्रजम् ।
स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौ तस्य दर्शनम् ।५१
यादृशेनैवरूपेण ध्यायते रुद्रेण धीमता ।
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ।५२

प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्कर: ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धर ! ।५३
दैत्यनाथासृजापूर्ण ! नखशक्तिविराजित ।
तत: सकलसंलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ।५४
नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वां सुशक्र ! जगद्गुरो ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष ! सूर्यकोटिसमप्रभ ।५५
सहस्रयमसंक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम ! ।
सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ।५६

हुत की हुई हव्य को वहन करने वाले अग्नि की भ्राम्यमाण अर्चियों के पवन, आवर्त्त के सदृश आकारों वाले के लोमजों से संयुक्त सभी तरह के पुष्पों से अद्भुत महामाला को धारण करने वाले श्री नृसिंह का स्वरूप था। जैसे ही शिव ने उनका उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित वपु का ध्यान किया था वैसे ही तुरन्त उन्होंने शिवको अपना दर्शन दिया था। जिस प्रकार के स्वरूप का धीमान रुद्रदेव के द्वारा ध्यान किया गया था उसी प्रकार देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्षणीय स्वरूप से वह वहाँ उपस्थित हुए थे। भगवान शकर ने उनको प्रणिपात करके फिर स्तुति की थी। भगवान् शंकर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् आप तो नर और सिंह दोनों के स्वरूप को धारण करने वाले हैं। ऐसे आपको नमस्कार है। हे दैत्यनाथों के रक्त से आपूर्ण—हे नखों की शक्ति से विराजमान ! हे सम्पूर्ण संलग्न हेम के सदृश पिङ्गल विग्रह वाले ! हे पद्मनाभ ! मैं आपको प्रणत होता हूँ। हे सुरों के शक्र ! हे जगत के गुरो ! हे कल्पान्त में अम्भोदके समान निर्घोष वाले ! आप तो करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले हैं। आपका क्रोध सहस्रों यमों के समान है। आप सहस्रों इन्द्रों के समान पराक्रम वाले हैं। आप सहस्रों धनदों के तुल्य स्फीत है और आप सहस्रों वरुणों के स्वरूप वाले हैं।५०-५६।

सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ।
सहस्रभूमिसद्धैर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ।५७
सहस्रचन्द्रप्रतिम ! सहस्रग्रहविक्रम ! ।
सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मसंस्तुत ! ।५८
सहस्रबाहुवर्गीय ! सहस्रास्य निरीक्षण ! ।
सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रबंधमोचन ! ।५९
अन्धकस्य विनाशय याः सृष्टाःमातरो मनः ।
अनाहत्य तु मद्वाक्यम्भक्षयन्त्यद्य ताः प्रजाः ।६०
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित ।
स्वयङ्कृत्वा कथन्तासांविनाशमभिकारये ।६१
एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः ।
ससर्ज देवो जिह्वायास्तदा वाणीश्वरीं हरिः ।६२
हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी ।
अस्थिभ्यश्च तथा काली सृष्टा पूर्वं महात्मना ।६३

हे सहस्र कालों मे रचित ! हे सहस्र नियत इन्द्रियों वाले ! हे सहस्र भूमि सद्धैर्य ! हे सहस्रानन्त ! हे मूर्तिमान ! हे सहस्र चन्द्रों की प्रतिमा वाले ! आप तो सहस्रों ग्रहों के विक्रम वालेहैं और सहस्र चन्द्रों के तेजसे संयुत हैं। आप सहस्रों ब्राह्मणों के द्वारा संस्तुत हैं। हे सहस्र बाहु वर्गीय! हे सहस्राक्ष के समान नेत्रों वाले ! हे सहस्र बंध मोचन ! मैंने अन्धक दैत्य के विनाश के लिए जिन मातृगण का सृजन किया था वे ही आज मेरे वचन का अनादर करके उन प्रजाओं का भक्षण कर रही हैं। हे अपराजित ! उस मातृगण को सृजन करके अब उसके संहार करने में मैं अशक्त हो रहा हूँ क्योंकि स्वयं ही मैंने जिसको बनाया था उसका विनाश मैं ही स्वयं कैसे करूँ। इस प्रकार से रुद्र देव के द्वारा उन नृसिंह वपु के धारी प्रभु से जब कहा गया था उन हरिदेव ने जिह्वा की वाणीश्वरी की रचना की थी। हृदय से माया

—गुह्य से भवमालिनी और अस्थियों से कोली का पहिले उस महात्मा ने सृजन किया था ।५७-६३।

यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकानां महात्मनाम् ।
याचास्मिन् कथिता लोके नामतः शुष्करेवती ।६४

द्वात्रिंशन्मातरःसृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः ।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ।६५

सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च ।
त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्ववशंकरीं ।६६

तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसंकर्षणी तथा ।६७

इत्येताः पृष्ठगा राजन् ! वागीशानुचराः स्मृताः ।
संकर्षणीतथाश्वत्था बीजभावापराजिताः ।६८

कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलस्तिका ।
इति देव्यष्टकं राजन् ! मायानुचरमुच्यते ।६९

जिसने महात्मा अन्धकों का रुधिर पान किया था और जो नाम से लोक में शुष्क रेवती कही गई थी । इसके पश्चात् चक्रधारी प्रभु ने अपने ही गात्रों से बत्तीस माताओं का सृजन किया था । उन सबके नामों को बतलाने वाले मुझसे अब तुम सुनलो ।६४-६५। उनमें सभी महान भागों वाली थीं । घण्टा कर्णी, त्रैलोक्य मोहिनी, पुण्या सर्वसत्व शंकरी,चक्र हृदया-पाँचवीं व्योमचारिणी-शंखिनी-लेखिनी काल संकर्षिणी ये सब हे राजन ! उस वागीशा के पीछे गमन करने वाली अनुचारिणी थीं—ऐसा कहा गया है । संकर्षणी—अश्वत्था—बीजभावा-अपराजिता—कल्याणी—मधुदंष्ट्री और कमला तथा उत्पल हस्तिका हे राजन ! देवियों का जो अष्टक था वह मायानुचर कहा जाता है ।

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना ।
नृसिंहभैरवा बिल्वा गरुत्महृदया जया ।७०
भवमालिन्यानुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः ।
आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ।७१
ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चबालिका ।
तथापद्मकरा राजन् ! रेवत्यनुचराःस्मृताः ।७२
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः ।
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ।७३
ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु ।
प्रधाविता महाराज ! क्रोधविस्फारितेक्षणाः ।७४
अविषह्यतमन्तास दृष्टितेजः सुदारुणम् ।
तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ।७५
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् ।
जयन्ति ते तथैवाशु यथा वै देवतान् सुतान् ।७६
भवत्स्तु तथालोकान्पालयन्तु मयेरिताः ।
मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम् ।७७

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्म दंशना, नृसिंह भैरवा, बिल्वा गरुत्महृदया, जया और भवमालिनी ये आठ अनुचर नृप मातायें थीं । आकर्णनी, सम्भटा, उत्तर मलिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका, राजन ! पद्मकरा ये रेवती की अनुचारिणी थी—ऐसा कहा गया है । ये आठ महाबल वाली और सभी देव से गात्रों से समुत्पन्न होने वाली थी । ये सब देवता त्रैलोक्य की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ थीं । वे देव के द्वारा सृष्ट मात्र होते ही हे महाराज ! अति क्रुद्ध होकर क्रोध से विस्फारित नेत्रों वाली मातृगण के पीछे प्रभावित हुई थीं । उनकी दृष्टि का तेज अविषह्यतम और परम सुदारुण था । उन सबने उन्हीं की शरणागति प्राप्त की थी । तब श्री नृसिंह प्रभु ने यह वाक्य कहा था—जिस प्रकार से मनुष्य और पशु चिरकाल तक

सुतों का पालन किया करते हैं उसी भाँति देवगण के समान शीघ्र ही जय को प्राप्त होते हैं आप लोग मेरे द्वारा प्रेरित होकर लोकों का पालन करें तथा मनुष्य और देवगण सब त्रिपुरान्तक का अभ्यर्चन किया करें ।७०-७७।

न च बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके ।
येच मां संस्मरन्तीह तेच रक्ष्याः सदा नराः ।७८
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः ।
सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वन्तथैवच ।७९
उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम् ।
तेच रक्ष्याः सदालोका रक्षितव्यं मदासनम् ।८०
रौद्रीं चैव परां मूर्तिं महादेवः प्रदास्यति ।
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्षयः ।८१
मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः ।
एष नित्यं विशालाक्ष्यो मयैव सह रंस्यते ।८२
मया सार्द्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ ।
पृथक् सुपूजिता लोकैः सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ।८३
शुष्का संपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः ।
तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यन्ति न संशयः ।८४

भगवान त्रिपुरान्तक के जो भी भक्तगण हों उनको कोई भी बाधा नहीं करनी चाहिए । जो मनुष्य यहाँ पर मेरा स्मरण किया करते हैं उनकी भी सदा रक्षा करनी चाहिए । जो नर आपका सर्वदा बलिकर्म किया करतेहैं अर्थात् आपको बलि समर्पित करतेहैं उनकी समस्त काम-नाओंके प्रदान करने वाले आपलोग उसी भाँति बन जाइये । मेरे द्वारा प्रेरित जो उच्छासनादिक का कथन करते हैं उन लोकों की सदा रक्षा करनी चाहिए और मेरे आसन की भी सुरक्षा करने की कृपा करें ।

महादेव परा रौद्री मूर्त्ति का प्रदान करेंगे । आपमें जो मुख्य महादेवियाँ हैं वे सब उपर्युक्त सबकी रक्षा करें । मेरे द्वारा इस मातृगण का सृजन किया गया है जो यह इस समय में विगत भय वाला है यह नित्य ही विशाल नेत्रों वाली मेरे ही साथ में रमण करेंगी । मेरे ही यह नरों से पूजा प्राप्त करेंगी । यदि इन्हें पृथक भी समर्चन किया जावेगा और लोग ऐसा करेंगे तो ये सभी मनोकामनाओं की प्राप्ति करा देंगी । जो पुत्रों को प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं उन जनों को यह देवी पुत्र प्रदा अवश्य ही हो जायेंगी इसमें तनिक भी संशय का कोई अवसर ही नहीं रहता है ।७८-८४।

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु ।
ज्वालामग्लाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ।८५
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः ।
तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहारो हरः ।८६
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्वा रुद्रस्तु पार्थिव ।
रौद्रां दिव्यां तनुं तत्रमातृमध्ये व्यवस्थितः ।८७
सप्त ता मातरो देव्यः सार्द्धं नारीनरः शिवः ।
निवेश्य रौद्रं तत् स्थानं तत्रैवान्तरधीयत ।८८
स मातृवर्गस्य हरस्य मूर्त्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे ।
देवेश्वरस्यापि नृसिंह मूर्तेः पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः।८९

इस प्रकार से कहकर वह भगवान मातृगण के साथ ही ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल वपु वाले वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे ।८५। वहाँ पर एक तीर्थ की उत्पत्ति हो गई थी जिसको कृतशौचा—इस नाम से गान किया जाता था । वहाँ पर भी पूर्वज देव इस जगत् की आर्त्ति का (पीड़ा का) हरण करने वाले हर भी थे ।८६। हे पार्थिव ! भगवान् रुद्रदेव रौद्र मातृवर्ग को रौद्र एवं दिव्य तब प्रदान करके वहाँ पर मातृ मध्यमें व्यवस्थित होगये थे । वे सात तो मातायें देवियाँ हैं और सार्द्ध

नारी नर शिव हैं। उस रौद्र स्थान को निवेषित करके वहीं पर अन्त-र्धान हो गये थे। वह जब-जब भी वह मातृ वर्ग की हर की मूर्ति उस के समीप में जाती है तब त्रिपुरान्धकारी शिव देवेश्वर नृसिंह मूर्ति की भी पूजा किया करते हैं।८७-८६।

— × —

७३-वाराणसी माहात्म्य

श्रुतोऽन्धकवधः सूत ! यथावत्तवदुदीरितः।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ।१
भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः ।
अन्नदत्त्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः ।२
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वञ्च कथङ्कृतः ।
एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत ! त्वया ।३
शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिंगलः ।
अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह ।४
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान् ।
हरिकेश इति ख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह ।५
तस्य जन्मप्रभृत्यैव शर्वे भक्तिरनुत्तमा ।
तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।६
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन् ।
भुञ्जानोऽथ पिबन्वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत् ।७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे सूतजी ! आपके द्वारा वर्णित ठीक-२ रीति से हमने अन्धक का वध श्रवण कर लिया अब इस समय मे वारा णसी पुरी का माहात्म्य श्रवण करने की हम सब अभिलाषा रखते हैं। ।१। भगवान पिङ्गल किस के द्वारा अथवा किस कारण से गणत्व को प्राप्त हुए थे। यह महा द्युति से सुसम्पन्न वाराणसी में अन्नदत्व को

भी सम्प्राप्त हो गये हैं ? ।२। यह अन्नपाल कैसे हुए और प्रियत्व की प्राप्ति भी किस तरह से हुई थी ? हे ब्रह्माजी के पुत्र ! यह सब आपके द्वारा वर्णित हम सब श्रवण करना चाहते हैं। महा महर्षि श्री सूतजीने कहा—उस पिंगल ने जिस रीति से गणेशत्व की प्राप्ति की थी उसे आप लोग सुनिए। लोकों को अन्न देने वाले और यहाँ पर यह वाराणसी का स्थान जैसे प्राप्त हुआ वह भी सुनिए ।३-४। पूर्णभद्र का पुत्र प्रताप वाला श्रीमान् यक्ष था। वह हरिकेश—इस नाम से विख्यातथा और परम धार्मिक तथा ब्रह्मण्य था ।५। उसकी जन्म के आरम्भ से ही लेकर भगवान् शिव में अतीव उत्तम भक्ति थी। उस समय मे शिव को ही नमस्कार करने वाला—उन्हीं में पूर्ण निष्ठा रखते हुए यह सर्वदा उन्हीं में परायण रहा करता था ।६। यह बैठा हुआ—शयन करता हुआ गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—अनुव्रजन करते हुए—भोजन करने की दशा में तथा पान करते हुए भी रुद्र का ही सदा अनुचिन्तन किया करता था ।७।

तमेवं युक्तमनसम्पूर्णभद्रः पिताब्रवीत् ।
न त्वां पुत्रमहं मन्ये दुर्जातो यस्त्वमन्यथा ।८
न हि यक्ष कुलीनानामेतद्‌वृत्तं भवत्युत ।
गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः ।९
क्रव्यादाश्चैव किं भक्षा हिंसा शीलाश्च पुत्रक ।
मेवं कार्षीनंते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ।१०
स्वयम्भुवा यथादिष्टा त्यक्तव्यां यदि नो भवेत् ।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ।११
हित्वा मनुष्यभाव च कर्मभिर्विविधैश्चर ।
यत्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एवच ।१२
यथावद्विविधस्तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम् ।
मयापि विहितं पश्य कर्मैतस्मात्र संशयः ।१३

इस प्रकार से युक्त मन वाले उससे उसके पिता पूर्ण ने कहा था—मैं पुत्र तुझो दुर्जात नहीं मानता हूँ जो कि तू अन्यथा रहा करता है। ।८। यक्ष कुलों में समुत्पन्नों का यह चरित नहीं हुआ करता है। खेद है आप लोग गुह्यक हैं जो स्वभाव से क्रूर चित्त वाले हुआ करते हैं।९ हे पुत्रक ! क्रव्याद लोग क्या भक्षण करने वाले हैं और हिंसा करने के स्वभाव वाले होते हैं। ऐसा मत करो। महान् आत्मा वाले के द्वारा तुम्हारी इस प्रकार की वृत्ति नहीं देखी गयी हैं।१०। स्वयम्भू ने जो समादिष्ट की है यदि आपमें हो, तो उसे त्याग देना चाहिए। जो गृही होते हैं वे दूसरे आश्रम उत्पन्न होने वाले कर्म को नहीं किया करते हैं और न उन्हें करना ही चाहिए।११। मनुष्यों के भाव को छोड़कर विविध भाँति के कर्म्मों के द्वारा चरण करो। जो तू इस प्रकार से विमार्ग में स्थित है तो तू मनुष्य से ही समुत्पन्न हुआ है। यथावत् उनके अनेक कर्म है जो उनकी जाति का संश्रय रखने वाला है। मैंने भी कर्म किया है उसे देखो। इसमें कुछ भी संशय नहीं होनी।१२-१३

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान्।
उवाचनिष्क्रमन् विप्र गच्छपुत्र ! यथेच्छसि।१४
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहसम्बन्धिनस्तथा।
वाराणसी समासाद्य तपस्तेपे सुदुश्चरम्।१५
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः।
सन्नियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः।१६
अथ तस्यैवमनिशन्तत्परस्य तदा शिषः।
सहस्रमेकं वर्षाणं दिव्यमप्यध्यवर्तत।१७
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णैर्विध्यमानस्तथैव च।१८
निर्मांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः।
अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि।१९

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत शंकरम् ।
उद्यानं पुनरेवेह द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ।२०
क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतुहलं हि मे ।
यतश्च प्रियमेतत्ते तथास्य फलमुत्तमम् ।२१

श्री सूत महर्षि ने कहा—वह प्रताप वाले पूर्णभद्र ने उस अपने पुत्र से इस प्रकार से कहकर फिर हे पुत्र ! तू यहाँ से निष्क्रमण करते हुए बहुत शीघ्र जहाँ भी चाहता है, चला जा ।१४। इसके उपरान्त वह वहाँसे निर्गत होकर अपने गृह और समस्त सम्बन्धियों का परित्यागकर चला गया था । फिर वाराणसी पुरी में प्राप्त होकर उसने परमदुश्चर तप किया था ।१५। वहाँ पर पलकें पूर्णतया खोले हुए एक स्थाणु (वृक्ष का ठूंठ) के रूप वाला—सूखा हुआ कोष्ठ तथा पाषाण के सदृश होकर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को भली भाँति नियन्त्रित करके एक दम निश्चल होकर अवस्थित होगया था।१६। इसके अनन्तर उसको निरन्तर इस प्रकार से तप में तत्पर हुए को उस समय में एक सहस्र दिव्यवर्ष व्यतीत हो गये थे।१७। उसका शरीर सर्पों का बाँवियों से समाक्रान्त हो गया था—पिपीलिकायें (चीटियाँ) उस शरीर को खा रही थी तथा तीक्ष्ण वज्रसूची मुख कीटों से वह उसका वपुपूर्ण या बिधा सा हो गया था ।१८। यद्यपि उसका शरीर बिना माँस-रुधिर और त्वचा वाला ही था किन्तु फिर भी कुन्द-इन्दु और शंख के समान प्रभा से पूर्ण था । देवेश्वर का ही चिन्तन करते हुए वह पूरा शरीर केवल अस्थियों का ही एक ढाँचा शेष रह गया था । इसी बीचमें देवी ने श्री शङ्कर भगवान् को विज्ञापित किया था ।१९। देवी ने कहा—मैं सर्वदा उस उद्यान को यहाँ पर देखने की अभिलाषा करती हूँ ।२०। हे देव ! इस उत्तम क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करने के लिए मेरे हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । क्योंकि यह आपका प्रिय है तथा इसका उत्तम फल है ।२१।

इति विज्ञापितो देव: शर्वाण्या परमेश्वर: ।
शर्व:पृष्टोयथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ।२२
निर्जगाम च देवेश: पार्वत्या सह शङ्कर: ।
उद्यानं दर्शयामास देव्या देव: पिनाकधृक् ।२३
प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरूढ़पुष्पै: परित: प्रियंगुभि: सुपुष्पितै: कण्टकितैश्च केतकै:।२४
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभि: सकर्णिकारैर्वकुलैश्च सर्वश: ।
अशोकपुन्नागवरै: सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलै: पुष्पसञ्चयै: ।२५
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहंगमैश्चारुकलप्रणादिभि: ।
निनादित सारसमण्डनादिभि: प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभि: ।२६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं-
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ।२७
मदाकुलाभिस्त्वमरांगनाभिर्निषेवितञ्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित्तु सुपुष्पै: सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ।२८

शर्वाणी के द्वारा परमेश्वर देव को यह विज्ञापित किया गया था और याथातथ्य को जब शिव प्रभु से पूछा गया तो वह पूछे हुए होकर इसे कहने के लिए उपक्रम करने लगे थे ।२२। देवेश्वर भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ ही निकलकर चले गये थे । फिर पिनाकधारी देव ने वह उद्यान देवी को दिखलाया था ।२३। देवों के देव बोले—यह उद्यान विकसित नाना भाँति के गुल्मों से शोभा वाला था । लताओं के प्रताओं के प्रतानोंसे अवनत एवं मनोहर था । दोनों ओर विरूढ़ पुष्पों वाले प्रियंगुओं से—सुन्दर पुष्पों समन्वित काकित केतकों से-सुगन्ध युक्त तमाल के गुल्मों से निर्मित और सब ओर कर्णिकारों के सहित वकुलों से वह समन्वित था । द्विरेकों (भौंरों) की मालाओं से समाकुल पुष्पों के सञ्चय वाले सुपुष्पित अशोक पुन्नाग वरों से संयुत था ।२४-

२५। इस उद्यान में कहीं चरु प्रफुल्ल कमलों के रेणु से रूपित तथा एवं कल (मधुर) प्रणाद करने वाले विहंगमों से यह निनादित हो रहा था तथा किसी जगह पर सारस मण्डन आदि से एवं परम वल्गु प्रमत्त दात्यूहों के शब्दों से शब्दायमान था।२६। किसी स्थल पर चक्रवाकों की ध्वनियों से निनादित और कहीं पर कदम्बों के समूहोंसे यह उद्यान संयुत था। किसी स्थान में कारण्डवों की कल ध्वनियों से निनादित था और कहीं पर प्रमत्त अलियों के कुलों से आकुलीकृत हो रहा था। महान् कुलों वाली अमरों की अंगनाओं के द्वारा सेवित तथा सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण यह उद्यान था। कहीं पर सुन्दर पुष्पों वाले सहकार के वृक्षों से तथा लताओं से उपगूढ़ तिलक के द्रुमों से समन्वित था।२८।

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारण प्रवृत्तनृत्याप्सरसांगणाकुलम्।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम्।२९
मृगेन्द्रनादाकुलसत्वमानसैः क्वचित् क्वचित्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः।
प्रफुल्लनानाविधचारुपंकजैः सरस्तटाकैरुपशोभितं क्वचित्।३०
निबिडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिराम-
 मदमुदितविहंगव्रातनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं-
 नवकिशलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम्।३१
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिंगितचारुवृक्षकम्।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं किंपुरुषव्रजैःक्वचित्।३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुश्रृंगैरभ्रंकषैः सितमनोहरचारुरूपैः।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजितं
त्रिदशदेवकुलैरनेकैः।३३
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तै
 स्तोयाशयैस्तमनुशोभितदेवमार्गम्।

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपैर्विहंगैरुपेतम् ।३४
तुङ्गांगैर्नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-
र्मत्तालिवातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञै: ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
च्छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ।३५

वह उद्यान विद्याधर सिद्ध और चारणों के गीतों से परिपूर्ण—नृत्य करने में प्रवृत्यहुई अप्सराओं के गणों से समाकुल था । परमप्रहर्ष वाले अनेक भाँतिके पक्षियों के द्वारा यह उद्यान सेवित था । वह उद्यान प्रमत्त हारीत नाम वाले पक्षियों के समूह से उपनादित था ।२६। किसी स्थल पर मृगेन्द्रों की गर्जनों से सत्वों के मानसों को समाकुलित करने वाला था । कोई भाग इसका मृगों के जोड़ों के समुदायों से युक्त था । कहीं पर खिले हुए अनेक तरह के चारु कमलों से युक्त सरोवर और तड़ागों के द्वारा यह उद्यान शोभा वाला था ।३०। यह उद्यान घने निचुलों से नील वर्ण वाला—नील कुण्डों से अभिराम-मद से परम प्रसन्न पक्षियों के समूहों के नादये परम मनोहर था । पुष्पों वाले वृक्षों की शाखाओं पर जिस उद्यान में भौंरे प्रमत्त हुए लीन हो रहे थे और और नूतन पत्रों की शोभा से शोभित प्रान्त शाखाओं वाला वह उद्यान था । कहीं पर मजों के द्वारा किये गये क्षतों से सुन्दर वीरुधों वाला था और कहीं पर लताओं के द्वारा सुन्दर वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा था । किसी स्थल पर विलास में अलस गमन करने वाले बर्हि वाला था तथा कहीं किम्पुरुषगण उस उद्यान का सेवन कर रहे थे । ।३१-३२। पारावतों की ध्वनि से विशेष रूप से कूजित सुन्दर शिखरों से जो कि आकाश को छूने वाले बहुत ही ऊँचे थे और श्वेत एवं मनोहर चारु रूप से युक्त थे वह उद्यान विभ्राजित हो रहा था और समाकीर्ण पुष्पों के निकुरम्ब से विमुक्त हास्य वाले अनेक देवों के कुलों के

द्वारा वह सेवित था।३३। खिले हुए बड़े-बड़े सहस्रों उत्पलों के वितानों से युक्त तोयाश्रयों से शोभा वाले देवमार्ग वाला वह उद्यान बहुत ही सुन्दर हो रहा था। मार्ग के बीच में गलित हुए पुष्पोंसे विचित्र भक्ति से सम्बद्ध झाड़ियों तथा विटपों से समायुक्त था बहुत ही ऊँचे जिनके अग्रभाग हैं ऐसे नीले पुष्पों के स्तवकों के भार से से अवनत शाखाओं वाले अशोक के वृक्षों से समायुक्त था तथा अत्यन्त प्रमत्त भ्रमरों के समुदायों के गुञ्जित गीतों से कानों को सुख समुत्पन्न करने वाले और अन्दर मनोज्ञता को भासित करने वाले तिलकों के कुसुमों के द्वारा तथा रात्रि में चन्द्र की दीप्ति से एकता को प्राप्त हुआ और छाया में प्रसुप्त होकर फिर जगे हुए संस्थित हिरनों के कुलों से आलुप्त दर्भों के अंकुरों वाला वह उद्यान था अर्थात् वहाँ पर लेटे हुए हिरणों के समूह से डाभों के अंकुर दबे हुए हो गये थे।३४-३५।

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयम्
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतित रञ्जितक्ष्माप्रदेशम्
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम्।
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम्।३६
सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सच्छन्नं कुसुमचयः क्वचिद्विचित्रैः।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नरांगनाभिः।
क्षीबाभिः समधुरगीतवृक्षखण्डम्।३७
संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात् फलनिचितैर्विशालैरुत्तुंगैः पनसमहीरुहैरुपेतम्।३८
फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलंसिद्धांगनाकनकनूपुरनादरम्यम्।
रम्यप्रियंगु तरुमञ्जरिसक्तभृंगं भृंगावलीषु।
स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम्।३९
पुष्पोत्करानिलविघूणितपादपाग्रमग्रेसरोभुविनिपातितवंशगुल्मम्
गुल्मान्तरप्रभृतिलीनमृगासमूहंसंमुह्यतान्तनुभृतामपवर्गदातृन्।४०
चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः

सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः
फुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः ।४१
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः ।
क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ।४२

अभी तक निरन्तर उसी उद्यान की शोभा का ही वर्णन किया जा रहा है वह उद्यान हंसों के पंखों के प्रपातसे विचलित होने वाले कमलों के द्वारा परम स्वच्छ एवं विस्तीर्ण जल वाला था । जलाशयोंके तटपर समुत्पन्न एवं प्रविकच कदलियों के बाटमें नृत्य करनेवाले मयूरोंसे युक्त वह उद्यान था । किसी स्थल पर गिरे हुए मयूरोंके पक्ष चन्द्रों के द्वारा रञ्जित क्षमा प्रदेश वाला था तथा देश-देश में बिकीर्ण, प्रमुदित, बिल सत् मस्त हारीतो से संयुत वृक्षों वाला उद्यान था ।३६। कहीं पर सारङ्गोंसे सेवित प्रदेशवाला और किसी स्थलपर विचित्र कुसुमोंसे चयों से संछन्न—किसी स्थान पर परम क्षीत एवं प्रहर्षित किन्नरों की अङ्ग-नाओं के द्वारा सुमधुर गीतों वाले वृक्षों के खण्डों से समन्वित वह उद्यान था ।३७। कहीं पर समृष्ट तथा उपलिप्त प्रकीर्ण पुष्पों से युक्त मुनियों के निवास स्थानोंसे परिवृत पादपों से समन्वित वह उद्यानथा । कहीं पर अत्यन्त विशाल एवं उत्तुङ्ग और मूल से ही लेकर फलों से निचित पनस (कटहल) के वृक्षोंसे उपेत वह उद्यान था ।३८। विकसित और अतिमुक्त लताओं के गृहों में सिद्धोंकी लीला वाला था तथा सिद्धों की अङ्गनाओं के सुवर्ण रचित नूपुरों के नाद से परम सुन्दर वह उद्यान था । परम रम्य प्रियंगुके वृक्षोंकी मञ्जरियों के संसक्त भ्रमरों से सम-न्वित तथा भृङ्गों की कतारोंमें स्खलित होनेवाले जल कदम्बों के पुष्पों से संयुत वह उद्यान था ।३९। कुसुमों के उत्करों से मिश्रित वायु से विघूर्णित वृक्षों के अग्रभाग वाला तथा भूमण्डल में निपातित बांसो की

झाड़ियों से युक्त था। गुल्मों के बीच में लीन होने वाले मृगों के समुदाय वाला—सम्मोह को प्राप्त देहधारियों को अपवर्गको देने वालाथा। चन्द्रमा की किरणों के समान धवल मनोज्ञ तिलकों से तथा सिन्दूर कुंकुम और कुसुम्भ के तुल्य अशोकों से—चामीकर (सुवर्ण) की आभा के समान कर्णिकारों से और परम विशाल शाखाओं के द्वारा फुल्ल अरविन्दों से रचित उद्यान था। कहीं पर तो रजत पर्णों की आभावाले कही पर द्रुमों के सङ्कुल कहीं पर सुवर्ण के समान पुष्पों से समाचित भूतल वाला उद्यान था।४० ४२।

पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्तशोकस्तवकभरनमितम्।
रम्योपान्तं श्रमहरपवनं फुल्याब्जेषु भ्रमरविलसितम्।४३
सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीन्तु-
हिमशिखिरपुत्र्याः सार्द्धं मिष्टैर्गणेशैः।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्ट
मुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः।४४
उद्यानं दर्शितं देव! शोभया परया यतम्।
क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि।४५

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा।
श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिरतो भूयो वदस्व मे।४६
इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुं मोक्षस्य सर्वदा।४७
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि! मदीयं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः।४८
अभ्यसन्ति परं योगं मुक्तात्मनो जितेन्द्रियाः।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहंगकूजिते।४९

वह दिव्य उद्यान ऐसा मनोरम था जिसमें पुन्नागों में द्विजगणों (पक्षियों) का कूजन हो रहा था और जो रक्त अशोकों के स्तवकों के

भार से नमित था जिसके उपान्त परम रम्य थे-शारीरिक श्रमको हरण करने वाला वायु जिसमें बहन कर रहा था तथा विकसित कमलों में जिस उद्यानमें भ्रमरोंका विलास हो रहा था।४३। उस समय में समस्त भुवनों के भरण करने वाले-लोकों के नाथने अपने इष्ट गणेशों के साथ में तुहिन शिखर हिमालय अद्रिराजकी पुत्री देवीपार्वतीको अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त अत्यन्त विशाल---मत्त एवं हृष्ट अन्यों के द्वारा पुष्प ओर उपवन के तरुओं से रम्य उस उद्यान को दिखा दिया था ।४४। देवी ने कहा--हे देव ! परा शोभा से युक्त इस उद्यान को तो आपने दिखला दिया है। अब इस समस्त क्षेत्र के गुणों को यहाँ पर आप कहने के योग्य हैं । अविमुक्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण कर के भी मुझे पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है । इसलिए इसे ही आप पुनः मुझे श्रवण कराइए ।४५-४६। देवों के देवने कहा—यह अत्यन्त ही गुह्यतम क्षेत्र है जो सदा मेरा वाराणसी है । यह सर्वदा सभी प्राणियों के मोक्ष का हेतु होता है ।४७। हे देवि ! इस क्षेत्र में सदा सिद्धगण मेरे ही व्रत में समास्थित रहते हैं । ये लोग विभिन्न प्रकार के चिन्हों के धारण करने वाले और नित्यही मेरे लोक के प्राप्त करने की अभिकांक्षा वाले थे ।४८। मुक्त आत्मा वाले जितेन्द्रिय लोग अनेक वृक्षों से समाकीर्ण और नाना प्रकार के विहगों से कूजित इस स्थलमें परयोग का अभ्यास किया करते हैं ।४९।

कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते ।
अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे ।५०
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु ।
मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ।५१
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् ।
एतन्मम परं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।५२
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः ।
अतः प्रियतमं क्षेत्र तस्माच्चेह रतिर्मम ।५३

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन ।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मादवियुक्तमिदंस्मृतम् ।५४

नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ।
स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ।५५

इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते ।
प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ।५६

कमल-उत्पल पुष्पों से आढ्य सरोवरो से समलंकृत-अप्सराओं से गण और गन्धर्वोंके द्वारा सदा से सेवित शुभ स्थल यह है । जिस कार्य के कारण मुझे सदा इसका निवास पसन्द है उसेभी सुनलो । मेरे में ही मनको निवेशित करने वाला मुझमें ही सर्वस्व समर्पित कर देने वाला तथा सब किए हुए कर्मों को भी मेरी ही सेवा में अर्पित करने वाला मेरा भक्त जिस प्रकार से यहाँ मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है वैसा अन्य किसी भी स्थान में नहीं कर सकता है । यह ही मेरा परम दिव्य-महत् और गुह्य से गुह्यतम क्षेत्र है ।५०-५२। ब्रह्मादिक देवगण और जो भी मुमुक्ष सिद्ध लोग हैं वे इसे भली भाँति जानते हैं । इसीलिए मेरा सबसे अधिक प्रिय क्षेत्र है और इसी कारण से मेरी यहाँ पर अत्यधिक रति है । इसी से मैंने इसको कभी नहीं छोड़ा है और न भविष्य में भी मेरे द्वारा इसका त्याग किया जायगा इसी से उसका यह महत् क्षेत्र है और यह उसका अवियुक्त क्षेत्र कहा गया है ।५३-५२। नैमिष—कुरुक्षेत्र गङ्गाद्वार और पुष्कर में स्नान करने से तथा सेवित करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता है । वही परम दुर्लभ मोक्ष यहाँ पर सम्प्राप्त कर लिया जाया करता है । इसी से यह सबसे विशिष्ट होता है । या तो प्रयाग में इस मोक्ष की प्राप्ति होती है अथवा यहाँ पर मेरे परिग्रह करने से मुक्ति हो जाती है ।५५-५६।

प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम् ।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ।५७

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात् ।
जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते ।५८
ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम् ।
कैवल्यं परमं याति देवानामपिदुर्लभम् ।५९
अव्यक्तलिंगैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः ।
इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः ।६०
तेभ्तश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम ।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च ।६१
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा शर्वापितक्रियः ।
क्षेत्रसम्वसनादेव गणेशत्वमवाप ह ।६२
सम्वर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु ।
इहैवाराधय मां देवि ! सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम् ।६३

समस्त तीर्थों में प्रथम प्रयाग से भी यह ही महान तीर्थ कहा गया है । वह महान् तपस्वी जैगीषव्य योग से परम सिद्धि को इस क्षेत्र के ही माहात्म्य से—भक्ति से और मेरी भावना से महान् श्रेष्ठ जैगषव्य योगियों के स्थान को प्राप्त करता है ।५७-५८। वहाँ पर नित्य ही मेरा ध्यान करने वाले की योगाग्नि अत्यन्त दीप्त हो जाया करती है और फिर वह देवोंको भी दुर्लभ परम कैवल्य पद को प्राप्त करता है । अव्यक्त लिगों वाले—सम्पूर्ण सिद्धान्तों को जानने वाले मुनियोंके द्वारा यहाँ पर ही मोक्ष की प्राप्ति की जाया करती है जो देवों और दानवों के द्वारा भी अतीव दुर्लभ ।५९-६०। उन मेरे परम भक्तों को मैं अत्युत्तम भोग एवं ऐश्वर्य प्रदान किया करताहूँ तथा उनको अपना सायुज्य पद एवं अभीप्सित स्थान का प्रदान किया करता हूँ । महान यक्ष कुबेर तथा शिव के लिए ही अपनी समस्त क्रियाओं को अर्पित कर देने वाला इसी क्षेत्र में सम्वास करने ही से गणेशत्व के पद को प्राप्त हो गया था ।६१-६२। और जो सम्वर्त्त होगा वह भी मेरी ही शक्ति से है देवि !

यहां पर ही मेरी समाराधना करके अत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा। ।६३।

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः।
धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ।६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ।६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे मामेवसुव्रत ।६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः।
अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा ।६७
अलर्कश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति।
स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् ।६८
स्फीतां जनसमाकीर्णां भक्त्याच सुचिरंनृपः।
मयि सर्वापितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ।६९
ततः प्रभृति चार्वङ्गि ! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः।
गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ।७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम्।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ।७१
इक्षक्षत्रेमृतः सोऽपिसंसारं न पुनर्विशेत्।
ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्वस्था विजितेन्द्रियाः ।७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्मों का करने वाला—आगे भविष्य में होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्त्तक होगा ।६४। हे पद्माक्षि ! वह मुनियों में परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा। ब्रह्मा-देवर्षियों के साथ विष्णु, वायु, दिवाकर, देवों का राजा इन्द्र और अन्य जो देवगण हैं वे सभी महान् आत्माओं

वाले हे सुव्रते ! मेरी ही उपासना किया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी योगीजन-सिद्धगण और छिपे हुए महान व्रतोवाले लोग अनन्य मन वाले होकर यहाँ पर सर्वदा मेरी ही उपासना किया करते हैं। अलर्क इस पुरी को मेरे ही प्रसाद से प्राप्त करेगा और वह इस पुरी को पूर्व की ही भाँति करके जो चारों वर्णों से समाकुल-स्फीत और जनों से समाकीर्ण है, वह नृप बहुत समय पर्यन्त अपनी भक्तिकी उत्कट भावना के द्वारा प्राप्त करेगा और फिर सर्वापित प्राण वाला होकर अन्त में मुझको ही प्राप्त कर लेगा। हे चार्वङ्गि ! तभी से लेकर जो भी इस क्षेत्र के निवास करने वाले गृही एवं लिगोंके धारण करने वाले मुझमें ही परायण करने वाले मेरे भक्त परम दुर्लभ मोक्ष का सेवन करेंगे और वह मेरे ही प्रसाद से होगा। विषयों में समासक्त चित्त वाला भी धर्म में रति के त्याग करने वाला मनुष्य इस परम पुण्यमय क्षेत्र में मृत्युगत होकर फिर संसार में प्रवेश प्राप्त नहीं किया करता है और जो निर्मम एवं धीर तथा सत्वस्थ इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने वाले हैं उनकी तो बात ही क्या है।६५-७२।

व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः।
देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः।
गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते।७३
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात्।
तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति।७४
एतत्सङ्क्षेपतो ! क्षेत्रस्यास्य महत्फलम्।
अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम्।७५
अतः परतरं नास्ति सिद्धिगुह्य महेश्वरि !।
एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि।७६
एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम्।
एतदेव परम्ब्रह्म एतदेव परम्पदम्।७७

व्रतों के धारण करने वाले—आरम्भोंसे रहित जो जन हैं वे सभी मुझमें भावित होते हैं और सर्व संग से रहित वे श्रीमान् देहों के भंग को प्राप्त करके सुव्रते ! मेरे ही प्रसाद से परम मोक्ष को प्राप्त हो ही गये हैं।७३। सहस्रों जन्मोंमें योग का अभ्यास करके जिसकी प्राप्तिकी जाती है उसी परम मोक्ष को यहाँ पर मरण करने से ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है।७४। हे देवि ! यह अति संक्षेप से इस अविमुक्त क्षेत्रका महान् फल जो परम उत्तम और अत्यन्त गुह्यतम है मैंने आपको बतला दिया है। हे महेश्वरि ! इससे परतर कुछ भी सिद्धि गुह्य नहीं है। इसको योग के ज्ञाता और भूमण्डल में स्थित योगेश्वर गण ही जो होते हैं वे ही जानते हैं। यह ही सर्वोपरि परम स्थान है—यह ही परमशिव है—यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सर्वोत्कृष्ट परम पद है।७५-७७

वाराणासी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या—
सदा यम पुरी गिरिराजपुत्रि !।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि—
पापक्षयाद्विरजस: प्रतिभान्ति मर्त्या: ।७८
एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि !
नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगल्मलतासुपुष्पम्।
अस्मिन्मृतास्तनुभृत: पदमाप्नुवन्ति—
मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र ।७९
एतस्मिन्नन्तरे देवो देवी प्राह गिरीन्द्रजाम्।
दातु प्रसादाद्यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि ।८०
भक्तो मम वरारोहे ! तपसा हतकिल्विष: ।
अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि ! ।८१
एवमुक्त्वा ततो देव: सह देव्या जगत्पति: ।
जगाम यक्षा यत्रास्ते कृशोधमनिसन्तत: ।८२

ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती ।
श्वेतवर्णादिचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम् ।८३

देवी प्राह तदा देव दर्शयन्ती च गुह्यकम् ।
सत्य नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शंकर ! ।८४

यह वाराणसी पुरी हे गिरिराज पुत्रि! तीनों भुवनों की सानभूता सदा अतीव रम्य मेरी पुरी है । यहाँ पर आते हुए अनेक प्रकार के को करने वाले भी मनुष्य पापों के क्षय हो जाने से परम शुद्ध होकर दीप्तिमान हो जाया करते हैं । हे देवि ! यह मेरा प्रियतम क्षेत्र है और नित्य है । यहाँ पर विचित्रा तरु और लता तथा गुल्मों से पुष्प हुआ करते हैं यहाँ मृत्यु को प्राप्त होनेवाले देहधारी लोग अत्यन्त मूर्ख एवं आगमों रहित होते हुए भी परम पद को प्राप्त किया करते हैं इस में किञ्चितमात्र भी संशय नहीं है ।७८-७९। महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसी अन्तर में वह देव गिरीन्द्रजा देवी से भक्त यक्ष के लिए प्रसन्नता से वरदान प्रदान करने के लिए बोले थे–हे भामिनी ! हे वारारोहे ! यह मेरा भक्त है और तपश्चर्या के द्वारा इसने अपने सब पापों को हत कर दिया है । हे भुवनेश्वरि ! इसने हमसे वर प्राप्तकर लिया है । इस प्रकार से कहकर जगत् के पति देव अपनी देवी के साथ वहाँ पर गये थे जहाँ पर अत्यन्त कृश केवल धमनियाँ ही शेष रहने वाला यक्ष तप में निमग्न था । इसके अनन्तर उस देवी ने अपनी दृष्टि के पातों से उस गुह्यकका निरीक्षण किया था । वह एकदम श्वेत वर्ण वाला—चर्म्म से रहित और स्यनायुओं से बद्ध अस्थियों के पंजर वाला था । उस समय में देवी ने उस गुह्यक को दिखलाते हुए ही देव से कहा था कि हे शङ्कर जैसा कि देवों ने कहा था आप सचमुच ही बहुत उग्र रूप एवं स्वभाव वाले हैं ।८०-८४।

ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।
अत्र क्षेत्रे महादेव ! पुण्ये सम्यगुपासिते ।८५

कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः ।
शीघ्रमस्य वरं यच्च प्रसादात् परमेश्वर ! ।८६
एवं नन्वामयी देव ! वदन्ति परमर्षयः ।
रुष्टाद्वाचाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतोभवेत् ।८७
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदाशिवात् ।
एवमुक्तस्ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।८८
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधर्मं निसन्ततः ।
तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः ।८९
दिव्यञ्चेक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत् स शंकरम् ।
अथ यक्षस्तदा देशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी ।
अपश्यत् सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ।९०

हे महादेव ! इस क्षेत्र में पुण्य की उपासना करने वाले इसके इस प्रकार के तप में भी आप कोई अभी तक इसको वरदान नहीं दे रहे हैं यही तो आपके स्वभावकी उग्रता है । हे परमेश्वर! यह यक्षका कुमार क्यों ऐसे महान् तपस्या के क्लेश को प्राप्त हो गया है ? आप प्रसन्न होकर अति शीघ्र ही इसको वरदान कीजिए ।८५-८६। हे देव ! मुनि आदि परमर्षिगण तो इसी प्रकारसे कहा करतेहैं कि रुष्ट से अथवातुष्ट से दोनों ही प्रकार से सिद्धि हुआ करती है । सदाशिव प्रभु से पहिले भोगों की प्राप्ति और राज्य प्राप्त हुआ करता है और अन्त में मोक्षके पाने का लाभ होता है । इस प्रकार से जब देवी के द्वारा देव से कहा गया था तो तुरन्त ही जगत् के स्वामी वह देव देवी के ही साथ में वहाँ पर पहुँच गये थे जिस स्थल परम दुर्बल और शेष धमनियों वाला वह यक्ष तप में लीन होकर समुपस्थित था । भक्ति से हरिकेश को प्रणाम करते हुए उसको देखकर भगवान वृषध्वज ने दिव्य चक्षु प्रदान करदी थी जिससे उसने शंकर को देख लिया था । इसके उपरान्त उसी समय में वह यक्ष अपने चक्षुओंको उनमीलित करके स्थान से धीरे से उठाथा

और उसने गणों के सहित वहाँ पर समुपस्थित वृषध्वज देव को देखा था ।८७-९०।

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा ।९१
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वर: ।
तत: स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च ।९२
पादयो: प्रणतस्तणोकृत्वा शिरसिसाञ्जलिम् ।
उवाचाथ तदा तेन वरदोऽस्मीति चोदित: ।९३

भगवन् ! भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे ।
अन्नदत्वं च ते लोकानां गाणपत्यं तथाऽक्षयम् ।९४
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा ।
एतदिच्छामि देवेशं त्वत्तो वरमनुत्तमम् ।९५

जरा मरणसन्त्यक्ता सर्वरोगविवर्जित: ।
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनद: सर्वपूजित: ।९६
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रित: ।
अन्नदश्चापि लोकेभ्य: क्षेत्रपालोभविष्यसि ।९७
महाबलो महासत्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रिय: ।
त्र्यक्षश्च दण्डपणिश्च महायोगी तथैव च ।९८
उद्‌भ्रम:सम्भ्रमश्चैव गणौतु परिचारकौ ।
तवाज्ञाञ्च करिष्येते लोकस्योद्‌भ्रमसंभ्रमौ ।९९
एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् ।
जगाम वामदेवेश: सह तेनामरेश्वर: ।१००

देवों के भी देव ने कहा—मैं पहिले तुझे वरदान देता हूँ तथा त्रैलोक्य में दर्शन देता हूँ । फिर विगत ज्वर वाला होकर शरीर की सवर्णता और मुझको देखना ।९१। श्री सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त उसने वरदान को पाकर अक्षत शरीर से शिव के चरणों में प्रणत होते हुए शिव पर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर वहाँ पर स्थित

हो गया था फिर उसने उस समय में कहा था कि हे भगवन् ! मैं वर प्राप्त होने वाला हो गया हूं। अब तो आप अपनेमें अव्यग्र और अनन्य भक्ति मेरी कर देवें तथा लोकों को अन्न का देने वाला एवं अक्षय गाणपत्य पद प्रदान कीजिए ।९२-९४। मुझे ऐसा ही बना दीजिए कि मैं सर्वदा आपके अविमुक्त स्थान का दर्शन करता रहूं। हे देवेश्वर ! आप से मैं यही उत्तम बरदान चाहता हूं ।९५। देवों के देव ने कहा—जरा (वृद्धता) और मौत इन दोनों से सम्त्यक्त होता हुआ तू सब रोगों से वर्जित रहेगा तथा सबके द्वारा पूजित गणों का अध्यक्ष धनद हो जायगा। योगके ऐश्वर्य का समाश्रय करके सबका तू अजेय होगा और लोकों के लिए अन्न का प्रदान करने वाला क्षेत्रपाल होगा। इसके अतिरिक्त तू महान् बल वाला-महान् सत्वसे युक्त-ब्राह्मण्य त्र्यक्ष (तीन नेत्रों वाला) दण्डपाणि-महायोगी और मेरा प्रिय हो जायगा ।९६-९८। उद्भ्रम और सम्भ्रम ये दो गण तुम्हारे परिचारक होंगे। लोक के उद्-भ्रम और सम्भ्रम तेरी आज्ञा को करेंगे। सूतजी ने कहा—इस तरह भगवान उस यक्ष को गणेश्वर बनाकर अमरेश्वर वामदेव उसीके साथ चले गये थे। ।९९-१००।

वाराणसी क्षेत्र माहात्म्य

इमांपुण्योद्भवां स्निग्धांकथां पापप्रणाशिनीम् ।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वसुविशुद्धास्तपोधनाः ।१
गणेश्वरपतिं दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम् ।
सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम् २
ब्रूहि गुह्यं यथा तत्वं यत्र नित्यं भवस्थितः ।
माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्ममहेश्वरः ।३
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः ।
आभूतसंप्लवं यावत् स्थाणुभूतो महेश्वरः ।४

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यसंयुतम् ।
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ।५
ततो देवेन तुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया ।
कथितं भुविविख्यातं यत्र नित्यं स्वयंस्थितः ।६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुश्रृङ्गे यशस्विनी ।
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—सुविशुद्ध—तप के धन वाले सब ऋषिगण आप लोग इस पुण्य से उत्पन्न हुई–पापों के नाश करने वाली अत्यन्त स्निग्ध कथा का श्रवण करिए ।१। भगवान सनत्कुमार ने गणेश्वरों के स्वामी-दिव्य और रुद्र के तुल्य पराक्रम से सम्पन्न नन्दिकेश्वर में पूछा था ।२। हे भगवन्! परम गुह्य तत्व जहाँ पर भगवान नित्य हीं स्थित रहा करते हैं—समस्त भूतोंका माहात्म्य और परमात्मा महेश्वर देव–दानवोंके साथ अतिदुष्कर और परम घोररूप में समास्थित होकर स्थाणु भूत महेश्वर सब भूतों का संप्लव होता है तब रहा करते हैं। ।३-४। नन्दिकेश्वर ने कहा—पहिले समय में जो परम उत्तम पुराण पुण्य से संयुत देव ने कहा था वही सब में अब भगवान महेश्वर को नमस्कार करके कहूँगा।५। इसके अनन्तर परम सन्तुष्ट हुए देव ने उमा के प्रिय की कामना से भूमण्डल में विख्यात को कहा था जहाँ कि वह स्वयं संस्थित थे ।६। रुद्र के अर्द्धासन पर स्थित—मेरु श्रृङ्ग में संस्थित यशास्विनी देवी महादेव के सामने प्रणत हुई पूछती हैं ।७।

भगवन् ! देव देवेश ! चन्द्रार्द्धं कृतशेखर ।
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्द्ध्वरेतसाम् ।८
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च तत् ।
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम् ।९
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
कथं तत्क्षयमायाति तन्मामाचक्ष्व शंकरम् ! ।१०

यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्वर: ! ।
व्रतानि नियमाश्चैव आचारो धर्मएवच ।११
सर्वसिद्धिकरं यत्र: ह्यक्षय्यगतिदायकम् ।
वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ।१२
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
सर्वक्षेत्रेष्वपि ख्यातमविमुक्तं प्रिये मम ।१३
अष्टषष्टि: पुरा प्रोक्तास्थानानांस्थानमुत्तमम् ।
यत्रसाक्षात्स्वयंरुद्र: कृत्तिवासा: स्वयंस्थित: ।१४

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे आधे चन्द्र को शिर में धारण करने वाले ! आप कृपया भूमण्डल में मनुष्यों का और ऊर्ध्व रेताओं का धर्म बतलाओ ।८। जाप-दान-हवन-इष्ट-तप और किया हुआ ध्यान-अध्ययन आदि यह सभी किस प्रकार से अक्षय होता है जो कभी भी क्षीण ही न होवे ? हे शंकर देव ! सहस्रों अन्य जन्मो में पूर्व से ही सञ्चित किया हुआ जो पाप है वह किस प्रकार से क्षय को प्राप्त हुआ करता है यह सभी आप मुझको बतलाइए ।६-१०। जिसमें विशेषरूप से अव-स्थित होकर भक्ति से आप सन्तुष्ट हुआ करते हैं, हे परमेश्वर ! उन व्रतों को—नियमों को—आचार को औम धर्मको आप बतलाने के योग्य हैं जिसमें अक्षय गति के देने वाला और जो सम्पूर्ण सिद्धियों के करने वाले हों—यह सभी आप मुझे परम अनुग्रह करके बतलाइए । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कौहतूल हो रहा है ।११-१२। भगवान् महेश्वर ने कहा—हे देवि ! आप सुनिए । मैं गोपनीय से भी अधिक गोपनीय और उत्तम जो भी है उसे अब तुमको बतला दूँगा । हे प्रिये ! समस्त क्षेत्रों में विख्यात अविमुक्त क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय होता है ।१३। पहिले अड़सठ स्थानों में अत्युत्तम स्थान बतलाये हैं जहाँ पर कृत्तिका वसन धारण करने वाले साक्षात् स्वयंरुद्र स्थित रहा करते हैं ।१४।

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम् ।

तत्क्षेत्रं न मयामुक्तं ततोऽविमुक्तं स्मृतम् ।१५
अविमुक्तेतुरा सिद्धिर्गविमुक्ते परा गतिः ।
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।१६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।१७
अविमुक्तप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ।१८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः ।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ।१९
कीटाः पिपीलिाश्चैव येचान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ! ।२०
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
शिवे ममपुरे देवि ! जायन्ते तत्र मानवाः ।२१

जिस अविमुक्त में निरन्तर नित्य ही मैं सन्निहित रहा करता हूँ और मेरे द्वारा वह क्षेत्र कभी भी मुक्त नहीं किया जाता है इसीलिए वह अविमुक्त-इस नाम से कहा गया है ।१५। उस अविमुक्त स्थान में सर्वोत्तम परा सिद्ध होती है और उस अविमुक्त में परागति हुआ करती है । जाप, दान, हुत, चेष्टा, तप्त, तपस्या किया हुआ धर्म का कार्य–ध्यान, अध्ययन, दानादि यह सभी वहाँ पर अक्षय होता है । सहस्रोंपूर्व में हुए जन्मों में जो भी कुछ पाप कर्म सञ्चित हो गया है वह भी सब अविमुक्त नामक मेरे परम प्रिय स्थान में प्रवेश करने वाले पुरुषके सभी कुछ तुरन्त ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । वह सब अग्नि में आहित तूल की ही भाँति अविमुक्त स्थल की अग्नि से दग्ध हो जाया करता है ।१६-१८। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और वर्णसंकर, कृमि, म्लेच्छ और जो अन्य सङ्कीर्ण पाप योनि वाले हैं तथा कीट-पिपीलिका (चींटियाँ) और जोर जो अन्य मृग एवं पक्षिगण हैं हे प्रिये ! वे सब

काल से अविमुक्त क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनके विषय में श्रवण करलो। हे देवि ! वे सभी चन्द्रार्ध मौलि वाले—वृषध्वज और ललाट में नेत्र वाले होकर मेरे शिवपुरमें मानव होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं।१९-२१।

अकामो वा सकामो वा ह्यपि तिर्यग्गतोऽपि वा।
अविमक्ते त्यजन् मम लोके महीयते।२२
अविमुक्तं यदागच्छेत् कदाचित्कालपर्ययात्।
अश्मना चरणौ बद्ध्वा तत्रैव निधनं व्रजेत्।२३
अविमुक्तं गतोदेवि ! न निर्गच्छेत्ततः पुनः।
सोऽपि मत्पदमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।२४
वस्त्रप्रदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम्।
गोकर्णं रुद्रकर्णश्च सुवर्णाक्षं तथैव च।२५
अमरञ्च महाकालं तथा कायावरोहणम्।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः।२६
कालिञ्जरवनञ्चैव शंकुकर्णं स्थलेश्वरम्।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये।
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः।२७
हरिश्चचन्द्रः परंगुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम्।
जलेश्वर परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा।२८

बिना कामना वाला हो अथवा सकाम हो अथवा तिर्यग् योनि में रहने वाला हो कोई भी कैसा ही हो अविमुक्त क्षेत्र में प्राणों का त्याग करता हुआ फिर मेरेही लोकमें जाकर प्रतिष्ठित हुआ करताहै। किसी भी समय में काल के पर्यय से अब भी उस अविमुक्त में चला जावे तो पाषाण से अपने चरणोंको बाँधकर वहीं पर निधन को प्राप्त हो जाना चाहिए अर्थात् वहाँ पहुँच कर फिर उस क्षेत्र को किसी तरह से मृत्यु तक नहीं छोड़ना चाहिए।२२-२३। जो कोई भी किसी भी तरह से

यदि मेरे परम प्रिय अविमुक्त क्षेत्र में एक बार प्राप्त हो जावे तो फिर उससे कभी भी निकल कर नहीं जाना चाहिए। वह पुरुष भी मेरे पद को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है।२४। वस्त्रप्रद, रुद्र कोटि, सिद्धेश्वर महालय, गोकर्ण, रुद्रकर्ण, सुपर्णाक्ष, अमर महाकाल वायावरोहण ये स्थल भी दोनों सन्ध्याओं के सान्निध्य होने से परम पवित्र स्थल हैं।२५। कालिञ्जर वन, शंककर्ण-स्थलेश्वर ये स्थल भी पवित्र हैं। हे प्रिये ! मेरे सान्निध्य होने के कारण से ही ये पवित्र होते हैं। हे वरारोहे! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।२६-२७। हरिश्चन्द्र परम गुह्य है और आम्रातकेश्वर भी गोपनीय है। जलेश्वर गुह्य है तथा श्रीपर्वत भी उसी भाँति गुह्य स्थल होता है।२८।

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।
गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च।२९
अष्टावेतानि स्थानानि सान्निध्याद्धि ममप्रिये !।
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्यं नात्रसंशयः।३०
यानि स्थानानि श्रूयन्तेत्रिषुलोकेषु सुव्रते !।
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यंसन्निहितानिवै।३१
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने।
स्कन्दोवक्ष्यति मापात्म्य मृषीणां भावितात्मनाम्।३२

महालय उसी भाँति गुह्य और कृमि चण्डेश्वर परम शुभ है। गुह्य से भी अधिक गुह्य केदार तथा महाभैरव है।२९। ये आठ स्थान हे प्रिये ! मेरे ही सान्निध्य से हे वरारोहे ! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।३०। हे सुव्रते ! तीनों लोकों में जो भी स्थान सुने जाते हैं वे सभी अविमुक्त क्षेत्र के पादों में नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं। इसके अनन्तर दिव्य उत्तर कथा जोकि अवि-

मुक्त की है उसे हे शोभने ! उसको जिसमें भावितात्मा ऋषियों का माहात्म्य है अब स्कन्द बतलायेगा ।३१-३२।

७५—नर्मदा माहात्म्य

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितन्त्वया ।
इदानीं नर्मदायास्तु महात्म्यवदसत्तम ! ।१
यत्रौंकारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य ।
अमरेशस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम् ।२
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा ।
मार्कण्डेयश्च भगवान्न विनष्टस्तदा किल ।
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ।३
एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना ।
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ।४
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्था वनवासिना ।
दृष्टपूर्वां महागाथां धर्मपुत्रेण धीमता ।५
श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ! ।
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत ! ।६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने ! ।

ऋषिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने अवमुक्त क्षेत्र का महात्म्य यथा रीति से कह दिया है । अब नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिए ।१। जिसमें औंकार का माहात्म्य—कपिला संगम का माहात्म्य तथा पापोंके नाश करने वाले अमरेश का माहात्म्य कहा जाता है ।२। पहिले प्रलय काल में जब सभी विनष्ट हो जाया करते हैं । यह नर्मदा कैसे नष्ट नहीं हुई थी और उस समय में भगवान मार्कण्डेय भी विनष्ट नहीं हुए थे—यह सभी आपने पूर्व में वर्णित किया था

अब पुनः इस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आप कृपा कीजिए ।३। श्री सूतजी ने कहा—यह ही प्रश्न इसी तरह से महात्मा ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा था जिसमें नर्मदा का माहात्म्य भी था । मार्कण्डेय महामुनि परम उग्र तप से युक्त थे उनसे वन में ही निवास करने वाले धीमान धर्म पुत्र ने पहिले इस महा गाथा को पूछा था ।४-५। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परम उत्तम ! आपके ही प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया था । हे सुव्रत ! अब मैं पुनः उनको ही सुनना चाहता हूँ सो आप मेरे सामने उन्हें कहिए ।६। यह महान् पुण्यों वाली नदी सर्वत्र कैसे प्रसिद्ध हुई है । तथा इसका नर्मदा—यह नाम भी किस प्रकार से हे महामुने! विख्यात हुआ है—इसे ही आप सर्व प्रथम मुझे बतलाइए ।७।

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।८
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! तत्सर्वं कथायामि ते ।९
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।१०
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ।११
कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्ये च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ।१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वा महाराज ! सिद्धिञ्च परमाङ्गताः ।१३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियाः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ।१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ है

और सम्पूर्ण पापों का विनाशकर देने वालीहै। यह सभी स्थावर तथा चर प्राणियों का तारणकर दिया करती है। नर्मदा नदी का माहात्म्य जो कि मैंने पुराणों में श्रवण किया है, हे महाराज ! इसका सम्पूर्ण माहात्म्य अब मैं आपसे कहता हूँ।८-६। गङ्गा कनखल में—सरस्वती कुरुक्षेत्र में–पुण्यमयी हैं किन्तु नर्मदा ग्राम तथा अरण्य में सर्वत्र परम पुण्यमयी होती हैं।१०। सरस्वती का जल तीन दिन में—यमुना का जल एक सप्ताह में और गंगा भागीरथी का जल तुरन्त पान करते ही मनुष्य को पवित्र कर उसके पापों का नाश कर देता है किन्तु नर्मदाके जलके तो दर्शन मात्र से ही पापों का विनाश हो जाया करता है।११। कलिंग देश में पीछे के अर्द्ध भाग में अमर-कण्टक पर्वत में जो कि परम पुण्यमय है तथा तीनों लोकोंमें यह नर्मदा अतीव मनोरम और रमणीय है।१२। हे महाराज ! देव, गन्धर्व, असुर और तप के ही धन वाले ऋषिगण यहाँ पर तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। उसमें स्नान करके हे राजन् ! नियमों में संस्थित तथा इन्द्रियों को जीतने वाला एक रात्रि में ही निवास करके अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है।१३-१४।

जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम्।१५
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रिकोटिः प्रतिष्ठिता।
स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः।१६
प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः।
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः।१७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः।१८
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः।
आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव !।१९

षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धाचारण सेविते ।२०
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालंकारभूषित: ।
तत: स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ।२१

जलेश्वर में मनुष्य स्नान करके विधि-पूर्वक पिण्डदान करके पितृगण भूतों के संप्लव पर्यन्त संतृप्त रहा करते हैं ।१५। पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है । वहाँ पर स्नान करके जो कोई गन्ध माल्यों और अनुलेपनों से अभ्यर्चन किया करता है उससे रुद्र कोटिशर्व परम प्रसन्न होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । पर्वत के अन्त में पश्चिम में स्वयं महेश्वर समवस्थित रहा करते हैं ।१६-१७। वहाँ पर स्नान करके और परम शुचि होकर ब्रह्मचर्य से रहने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को इन्द्रियों को नियत रखते हुए—विधि पूर्वक पितृ कार्य करना चाहिए ।१८। वहीं पर तिलोदक के द्वारा पितृ देवताओं का तर्पण करना चाहिए । हे पाण्डव ! उसके सात कुल तक स्वर्ग में आनन्द पूर्ण निवास किया करते हैं ।१९। अप्सराओं के गणों से सेवित एवं संकीर्ण तथा सिद्धों एवं चारणों से निषेवित स्वर्ग लोक में वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त प्रतिष्ठित रहा करता है ।२०। दिव्य गन्धों से अनुलिप्त एवम् दिव्य आभरणों से विभूषित वह स्वर्गीय सुख भोग करके जब वहाँ से परिभ्रष्ट होता है तो इस भूमण्डल में किसी बड़े श्री सम्पन्न कुल में जन्म ग्रहण किया करता है ।२१।

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुन: स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ।२२
कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।२३
विस्तरेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टकोट्यस्तथैव च ।२४

सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठतेऽमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो चितेन्द्रियः ।२५
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
ब्रह्माचारी शुचिर्भूत्वा जितेक्रोधः परित्यजेत् ।२६
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतवर्षसहस्रणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।२७
अप्सरोंगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ।२८
क्रोडते देलवोकस्थो दैवतैः सह मोदते ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ।२९

वह इस पृथ्वी तल में समुत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी-दान करने के स्वभाव वाला और धार्मिक हुआ करता है। वह फिर उसी तीर्थ का स्मरण करता है और वहाँ पर गमन करना तो उसे अच्छा लगता है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और वह रुद्र लोकमें चला जाता है। यह उत्तम सरित् डेढ़ सौ योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है ।२२-२३। हे राजेन्द्र ! यह दो योजन विस्तार से आयत है। साठ सहस्र तीर्थ तथा साठ करोड़ तीर्थ उसके चारों ओर अमर कण्टकमें स्थित है। जो कोई ब्रह्मचर्य पालन करने वाला—परम शुचि क्रोध को जीतने वाला और इन्द्रियों की वशमें रखने वाला होकर सभी प्रकार की हिंसासे निवृत्त—समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला भगवान शर्व में ही समाचरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग किया करता है हे राजन्! उसके होने वाले पुण्यों के फल को तुम परम सावधान होकर श्रवण करो। हे पाण्डव वह पुरुष सौ सहस्र वर्ष तक स्वर्ग में आनन्दित जीवन यापन करता है।२४-२७। अप्सराओं के गणों से समाकुल सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित स्वर्ग में दिव्य गन्ध से अनुलिप्त एवं दिव्य पुष्पों से उपशोभित होता हुआ देव लोक में स्थित

होकर देवगणों के साथ क्रीड़ा और आनन्द किया करता है फिर उस स्वर्ग से जब परिभ्रष्ट होता है तो परम बल-वीर्य वाला राजा होता है ।२८-२६।

गृहन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम् ।
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ।३०
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।
मत्तमातङ्गमन्द्रैश्च हयानां ह्रेषितेन च ।३१
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारं इन्द्रस्य भवनं यथा ।
राजाराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ।३२
तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ।३३
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके ।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ।३४
अनिवर्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप ! ।३५

उसका वहाँ पर गृह भी अनेक रत्नों से समलंकृत—हीरा और वैदुर्य मणियों से परिपूर्ण, दिव्य स्तम्भोंसे समन्वित-आलेख्यों से चित्रित दास और दासियों से संयुत था । प्रमत्त हाथियों के चिंघाड़ों से तथा अश्वों की हिनहिनाटों से उसके गृह का द्वार इन्द्र के भवन की भाँति क्षुब्ध रहा करता था । उस घरमें श्री सम्पन्न सब स्त्रीजनों का वल्लभ वह राज राजेश्वर निवास किया करता है जो पूर्ण क्रीड़ा और भोगों से युक्त था । वहाँ पर सभी प्रकार के रोगों से रहित होकर वह डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित रहता है । जो कोई पुरुष उस अमर कण्टक में मृत्यु को प्राप्त होताहै उसे इसी प्रकार के भोगों के उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है जो अग्नि में विषजल में तथा अनाशक में हे नराधिप ! अमरेश में पतन किया करता है उसकी अम्बर में पवन की भाँति अनिवर्तिका गति हुआ करती है ।३०-३५।

कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे ।
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च ।३६
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम् ।
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता: ।३७
स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
प्रीतः सोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्नसंशयः ।३८
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्ययं देवो महेश्वरः ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।३९
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ।
तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवताः ।४०
आसप्तमं कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।४१
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यलंकारभूषितः ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ।४२

तीन सहस्र कन्यायें और एक-एक की दूसरे उसके भुवन में स्थित रहती हैं एवं प्रेषण को प्रार्थनायें किया करती हैं। इस प्रकार से परम दिव्य भोगों से सुम्पन्न होकर वह अक्षय काल पर्यन्त क्रीड़ा करता है। उस पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित हैं। जो पुरुष वहाँ पर स्नान किया करता है और दिव्य गन्धों के अनुलेपनों से संयुत होता है उस पर वह सम्पूर्ण रुद्र कोटि परम प्रसन्न होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।३६-३८। इस पर्वत के पश्चिमीय अन्त भाग में यह महेश्वर देव स्वयं विराजमान हैं। वहाँ पर स्नान करके और शुचि होकर ब्रह्मचारी एवं इन्द्रिय जीत रहकर जो नियत इन्द्रियों वाला अपने पितृ गण के अभ्यर्चन–तर्पण आदि का विधि के साथ कार्य किया करता है और तिलों के सहित उदक से विधि पूर्वक पितृ देवताओं का तर्पण करता है हे पाण्डव ! उसके सात कुलों तक के सब लोग स्वर्ग का

आनन्द निवास प्राप्त करते हैं और साठ हजार वर्ष तक कुल सहित वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित पद पर समारूढ़ रहता है फिर स्वर्गों, सुखोपभोग की अवधि समाप्त होने पर वहाँ से परिभ्रष्ट होकर दिव्य-गन्ध से समनुलिप्त तथा परम दिव्य आभूषणों से परिष्कृत होकर यहाँ किसी बहुत बड़े कुल में समुत्पन्न हुआ करता है ।३६-४२।

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तीर्थिं गमनं तत्र रोचते ।४३
तारयेत्तु कुलान् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।४४
विस्तरेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ।
षष्ठितीर्थसहस्राणि षष्ठिकोट्य स्तथैव च ।४५
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।४६
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
एवं शर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।४७
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।४८
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते ।
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ ! पर्वतेऽमरकण्टके ।४६

वह यहाँ पर प्रसन्न होकर बहुत बड़ा धनी-दाता धार्मिक होता है और फिर भी वह उसी तीर्थका स्मरण किया करताहै तथा वहीं पर गमन करने की उसकी रुचि रहती है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और अन्त में रुद्रलोक को चला जाता है। यह उत्तम सरिता सौ और पचास योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती ।४४। हे राजेन्द्र यह दो योजनके विस्तृत आयत वालीहै । अमर कण्टकमें उसके चारों ओर बहुत तीर्थ हैं जिनकी संख्या साठ हजार तथा साठ करोड़

बताई जाती है। वहाँ पर ब्रह्मचारी, शुचि, जितक्रोध, जितेन्द्रिय—सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त—सब भूतों के हित में रत और शिव में समाचरण करने वाला जो अपने प्राणों का त्याग करता है, हे राजन् उसका जो परम महान् पुण्य-फल हुआ करताहै उसे अवहित होकर सुन लो। हे पाण्डव ! वह पुरुष एक सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी में उस प्रकार का कोई भी उत्पन्न नहीं होता है, हे नृप श्रेष्ठ ! जैसा यह अमरकण्टक पर्वत में हुआ करता।४५-४९।

तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे ।
ह्रदो छलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।५०
तत्र पिण्डप्रदानेन गन्ध्योपासनकर्मणा ।
पितरौ दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ।५१
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी ।
सव्लार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ।५२
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ।५३
पुराणे श्रूयतेराजन् ! सर्वंकोटिगुणं भवेत् ।
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।५४
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम् ।
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा ।५५
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् ।
तत्रदेवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ।५६
यक्षरक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ।५७

उस पर्वत के पश्चिम भागमें उस तीर्थ को जान लेना चाहिए जिस का जलेश्वर ह्रद है और यह तीनों लोकों में बहुत ही विख्यात है।५०

वहाँ पर पिण्डों का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपसना के कर्म से पितृ-गण दशवर्षों तक परम तृप्त रहा करते हैं। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर कपिला नाम वाली एक महानदी है। वह सम्पूर्ण अर्जुन के वृक्षोंसे संच्छन्न रहने वाली है और और वह उससे अधिक दूर में व्यवस्थित नहीं है अर्थात् बहुत ही समीप में ही है।५१-५२। यह नदी भी अति पुण्यमयी और महाभागा है तथा लोकों में बहुत प्रसिद्ध भी है। हे युधिष्ठिर! वहाँ पर डेढ़ सौ करोड़ तीर्थ हैं।५३। हे राजन्! पुराणमें यह श्रवण किया जाता है कि वह सब कोटि गुण वाली होती हैं। उस के तट पर जो वृक्ष काल के विपर्यय से पतित हो गये हैं और नर्मदा नदी के जल से जिनका संस्पर्श हो गया है वे जड़ भी परमोत्तम गति को प्राप्त किया करते हैं। दूसरी एक नदी परमशुभ महाभागा विशल्य करणी है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके क्षणमात्र में ही विगत-शल्य वाला हो जाया करता है। वहाँ पर उस अमरकण्टक पर्वत में समस्त देवगण, किन्नर, महोरग, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और तप के ही धन वाले ऋषि वृन्द समागत होते हैं।५४-५७।

तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।
नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्यानाम नामयः।५८

उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्! ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।५९

उपोष्य रजनीमेकां कुलानान्तारयेच्छतम्।
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम!।६०
ईश्वररेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्।६१

अनाशकन्तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप!।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकंसगच्छति।६२

नर्मदायास्तु राजेन्द्र ! पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ।६३

इन सबने जो तपोधन मुनिगण थे, वहाँ पर एकत्रित होकर नर्मदा नदी का समाश्रय प्राप्त किया था तथा विशल्या नाम वाली पुण्यमयी नदी को समुत्पादित किया था। जो महान् भाग वाली और सभी प्रकार के पापों का विनाश करने वाली थी। हे राजन् ! उसमें मनुष्य स्नान करके जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी रहकर एक रात्रि में वहाँ पर निवास करता है तो वह अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है। हे राजाओं मे परम श्रेष्ठ ! कपिला और विशल्या इनके विषयमें सुना जाता है कि प्राचीन काल में ईश्वर ने लोकों के हित की कामना से ही इनको कहा था। हे राजन् ! वष स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ।५८-६३।

ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ।
सरस्वत्याञ्च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ! ।६४
समं स्नानं च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।
परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ।६५
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ।
नर्मदाया जलं पुण्यं केनोर्मिभिरलङ्कृतम् ।६६
पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।६७
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
एव रम्या च पुण्या नर्मदा पाण्डुनन्दन ! ।६८
त्रयाणामपि लाकानां पुण्या ह्येषा महानदी ।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने ।६९
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजः स्युः संशितव्रताः ।
श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसङ्गमे ।७०

जो लोग इसके उत्तर दिशा वाले तट पर निवास किया करते हैं वे अन्त में जाकर रुद्रलोक में वास पाते है । युधिष्ठिर ! सरस्वती में—गङ्गा में और नर्मदा में स्नान और दान सम होताहै जैसा कि भगवान् शङ्कर ने मुझे बतलाया था । जो अमरकण्टक पर्वत में अपने प्राणों का परि त्याग किया करता है वह डेढ़ सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है । नर्मदा महानदी का जल परम पुण्यमय है और फेनकी ऊर्मियों से समलंकृत है । यह परम पवित्र है तथा शिरसे वन्दना करने के योग्य है इसके जल का स्पर्श करके ही मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है । नर्मदा सब प्रकार पुण्या है और ब्रह्म-हत्या के महापातक का हरण करने वाली है । एक अहोरात्र वहाँ पर स्थित रहकर उपवास करने से ब्रह्म हत्या से छुटकारा हो जाया करता है । हे पाण्डु नन्दन ! इस प्रकारसे यह नर्मदा रम्य और पुण्य शालिनी महानदी है ।६४-६८। यह तीनों लोकों में परम पुण्य शालिनी महानदी है जो वटेश्वर में—महापुण्य-मय गंगा द्वार में और तपोवन में इन स्थानों में द्विजगण संशित व्रतों वाले होते हैं उनके उस पुण्य से दश गुना अधिक पुण्य नर्मदा और उदधि के संगम में सुना गया है ।६९-७६

७६—नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! हुंकुशेखरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ।१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्मदेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! स्वर्गलोकेमहीयते ।२
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्च भोगवान् जायते नरः ।३

पितामहं ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डन्तु दापयेत् ।४
तिलदर्भविमिश्रन्तु ह्युदकं तत्र दापयेत् ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ।५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ।६
मनोहरं ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! पितृलोके महीयते ।७

महामुनि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर उत्तम अंकुशेश्वर पर जाना चाहिए । वहाँ पर उन देव के दर्शन से ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ।१। इसके उपरान्त फिर हे राजेन्द्र ! उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में गमन करे । हे राजन्! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में एक परम प्रतिष्ठित पद पर समारूढ़ हुआ करता है ।२। फिर अश्वतीर्थ को गमन करना चाहिए और वहाँ पर पहुँच कर स्नान करे । इसका ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य परम सुभग दर्शनीय और भोगों के करने वाला हुआ करता है । इसके पीछे पितामह नाम वाले तीर्थ पर जावे जिसको पहिले ब्रह्माजी ने निर्मित किया था । वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके भक्तिभाव से पितृगणों को पिण्डदान करना चाहिए ।३-४। तिलों और डाभों से मिश्रित जल भी तर्पण के लिए पितृगणों को देवे । उस तीर्थ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि वहाँ पर किया सभी अक्षय हो जाया करता है । ।५। सावित्री तीर्थ पर पहुँच कर जो भी व्यक्ति उसमें स्नान किया करता है वह अपने समस्त पापों को विधूनित करके अन्त में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है । फिर मनोहर नामक तीर्थ पर गमन करे जो कि एक परम शोभन तीर्थ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मानव रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ।६-७।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! रुद्रलोकमहीयते ।८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कुब्जतीर्थमनुत्तमम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ।९
यान्यान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
यान्यान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ।१०
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! त्रिदशज्योतिविश्रुतम् ।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः ।११
भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः ।
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः ।१२
विकृतानवीभत्सुर्व्रती तीर्थमुपागतः ।
तत्र कन्यां महाराज ! वरयन् परमेश्वरः ।१३
कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् ।
तीर्थं तत्र महाराज ! ऋषिकन्येति विश्रुतम् ।१४

इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! उत्तम मानस तीर्थ पर गमन करना चाहिए । हे राजन्! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है फिर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कुब्जतीर्थ में गमन करे जो सभी लोकों में अत्यधिक विख्यात है और सब प्रकार के पापों का विनाश करने वाला है । उस तीर्थ पर जो-जो भी कामनाओं के प्राप्त करने की इच्छा करता है जैसे पुत्र—पशु और धन आदि उन सभी की प्राप्ति हे नराधिप वहाँ पर स्नान करके प्राप्त कर लेता है । इसके पश्चात् हे राजेन्द्र त्रिदश ज्योति विश्रुत नाम वाले तीर्थ पर जाना चाहिए जहाँ पर वे ऋषि कन्यायें सुन्दर व्रतों वाली होकर तपश्चर्या करती थीं ।८-११। उन कन्याओं का यही मनोरथ था कि हम सबका भर्त्ता अविनाशी प्रभु ईश्वर होवें । उनकी तपस्या से दण्डरूप के धारण करने वाले हर महादेव परम प्रसन्न हो गये थे । वह देवेश्वर विकृत

मुख वाले वीभत्सु व्रती उस तीर्थ पर समागत हुए थे। वहाँ पर हे महाराज ! परमेश्वर ने उन कन्याओं का वरण किया था। कन्या का वरण करने को ऋषियों ने कन्यादान दी। हे महाराज ! ऋषि कन्या इस नाम वाला एक प्रसिद्ध तीर्थ था ।१२-१४।

तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! स्वर्णबिन्दुत्विति स्मृतम् ।१५
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! दुर्गतिं न च पश्यति ।
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।१६
क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरैः सह मोदेते ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! नरकं तीर्थमुत्तमम् ।१७
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं न च पश्यति ।
भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः ।१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम् ।
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ।१९
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूतौ महात्मनः ।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ।२०
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम् ।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ।२१

हे राजन् ! उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् स्वर्ण विन्दु इस नाम से विश्रुत तीर्थ में जाना चाहिए ।१५। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य दुर्गति को कभी भी नहीं देखता है। इसके अनन्तर अप्सरेश नामक तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान कर समाचरण करना चाहिए ।१६। इस तीर्थ के स्नान का यह फल होता है कि वह नागलोक में समस्थित होकर अप्सराओं के साथ आनन्दानुभव किया करता है। हे राजेन्द्र ! फिर वहाँ से नरक नामक उत्तम तीर्थ पर गमन

करे। उस तीर्थ में स्नान करके देव का अभ्यर्चन करे तो वह मनुष्य कभी भी नरक को नहीं देखता है। इसके अनन्तर भारभूति नाम वाले तीर्थ पर जावे और उपवास में परायण होवे ।१७-१८। फिर इसके उपरान्त ऋचावतार शाम्भव तीर्थ का समामादन करे तथा वहाँ पर भगवान् विष्णुका अर्चन करनेसे वह मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ।१९। इस तीर्थ में जिसका नाम भारभूति है स्नान करके जहाँ-तहाँ मृत हुए महात्माकी भी निश्चय ही गाणेश्वरी (गणेश सम्बन्धिनी)गति हुआ करती हैं। कार्त्तिक मास में महेश्वर का समर्चन करके अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से दशगुना फल प्राप्त हुआ करता है—ऐसा महामनीषी लोग कहा करते हैं ।२०-२१।

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णन्तु दापयेत् ।
विमानैः सूर्य्यसंकाशैर्व्रजते यत्र शंकरः ।२२
वृषभं यः प्रयच्छेत्तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।२३
धेनुमेकान्तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ।२४
यथाशक्त्याच राजेन्द्र ! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वंकोटिगुणं भवेत् ।२५
नर्म्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिञ्च न पश्यति तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।२६
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।
यावच्चंद्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ।२७
गंगायाः सरितो यावत्तावत् स्वर्गे महीयते ।
अनाशकन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।२८
गर्भवासे तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते पुमान् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! आषाढीतीर्थमुत्तमम् ।२९

तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ।३०

वहाँ पर एक सौ दीपकों को घृत से पूर्ण करके प्रज्वलित करे और उनका दान करे । वह पुरुष जहाँ भगवान शङ्कर होते हैं सूर्य के सदृश विमानों के द्वारा गमन किया करता है ।२२। जो आदमी, शंखकुन्द और इन्दु के समान प्रभा से सम्पन्न वहाँ पर वृषभ का दान किया करता है वह वृष से समन्वित यान के द्वारा रुद्रलोक में गमन किया करता है ।२३। हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई एक धेनु को दान किया करता है---मधु से संयुक्त पायस और अनेक प्रकार के भक्ष्यों को यथा शक्ति हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणों के लिए भोजन कराता है उस तीर्थ के प्रभाव से वह सभी करोड़ गुना फल वाला होता है ।२४-२५। हे नराधिप ! नर्मदा के जल का पान करके और वृषध्वज का अभ्यर्चन करके उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति को नहीं देखता है । वह मनुष्य हंससे युक्त यानके द्वारा सीधा रुद्रलोकको चला जाता है । जब तक चन्द्र---सूर्य---हिमवान---महोदधि और गंगा आदि सरितायें संसार में स्थित हैं तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । हे राजेन्द्र ! गर्भ के वास को फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया करता है । इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! आम आषाढ़ी तीर्थ में गमन करना चाहिए । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य इन्द्र के आधे आसन पर अपनी संस्थिति प्राप्त किया करता है । इसके पीछे स्त्री के तीर्थ में गमन करे जो सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ।२६-३०।

तत्रापि स्नानात्तस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ।
ऐरण्डीनर्म्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम् ।३१
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः ।३२

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसङ्गमम् ।३३
जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ।
यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत् ।३४
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसंगमे ।
त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ।३५

वहाँ पर भी केवल स्नान भर कर लेने वाले की निश्चय ही गाणेश्वरी गति हुआ करती है । ऐरण्डी और नर्मदा इन दोनों सरिताओं का संगम लोक में परम प्रसिद्ध है । वह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और समस्त पापों के नाश करने वाला भी है । वहाँ पर उपवास में परायण होकर तथा नित्य ही व्रतोंमें तत्पर होकर वहाँ स्नान करके हे राजेन्द्र! मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! नर्मदा और उदधि का उदधि का जहाँ सङ्गम होता है वहाँ जाना चाहिए वहाँ जाने वाला मानव अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ।३१-३५।

पश्चिमस्योदधेः सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ।३६
आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! रुद्रलोके महीयते ।३७
विमलेशपरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ।३८
सप्तजन्मकृत पापं हित्वा यान्त्यमरालयम् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ।३९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासरायणः ।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ।४०

एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ।४१
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्ते संस्थितः शिवाः ।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ।४२

पश्चिमोदधि की सन्धि में स्वर्ग द्वार विघटन है । वहाँ पर देवगण गन्धर्व-ऋषिवृन्द-सिद्ध और चारण ये सब तीनों सन्ध्याओं में विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । यह विमलेश परम प्रमुख तीर्थ है जो हुआ है और न होगा । वहाँ पर उपवास करके जो भगवान विमलेश्वरका दर्शन किया करतेहैं वे सब अपने पहिले जन्मों में से सात जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर सीधे अन्त समय में अमरालय को चले जाया करते हैं। इसके पीछे हे राजेन्द्र ! उत्तम कौशिकी तीर्थ में गमन करे ।३६-३९। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके उपवासों में परायण होवे और एक रात्रि में वहाँ निवास करके नियत अशन वाला तथा नियत जो रहता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाया करता है । जो मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिषेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है । योजन के अभ्यन्तर में आवर्त्त में प्रभु शिव स्थित रहते हुए वहाँ पर समवस्थित रहते हैं । उसका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके उस दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा हुआ ही समझ लेना चाहिए अर्थात् उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।४०-४१।

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।
नर्म्मदासंगमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् ।४३
अत्रान्तरे महाराज ! तीर्थकोट्यो दशस्मृताः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्र ऋषिकोटिनिषेवितम् ।४४

साग्निहोत्रैर्विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः ।
सेवितानेन राजेन्द्र ! त्वीप्सितार्थप्रदायिका ।४५
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भावतः ।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ।४६
नर्म्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः ।
प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः ।४७
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।
कन्या लभेत् भर्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ।४८
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।४९
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
नरकञ्च न पश्येत्तु वियोगञ्च न गच्छति ।५०

वह पुरुष सभी पापों से छुटकारा पाकर वहाँ पर ही चला जाता है जहाँ पर साक्षात् भगवान् रुद्र विराजमान रहा करते हैं और वहाँपर वह तब तक रहता है जब तक नर्मदाका संगम और अमरकण्टक संसार में स्थित हैं ।४३। इसी बीच में हे महाराज ! दश तीर्थ कोटियाँ बताई गई हैं । तीर्थसे दूसरे तीर्थमें जहाँ पर ऋषि कोटि निषेवित हैं । अग्नि होत्र करने वाले—ध्यान में परायण समस्त विद्वानों के द्वारा सेवित हुए इससे हे राजेन्द्र ! यह अभीष्ट अर्थ को प्रदान करने वाली हुआ करती है ।४४-४५। हे पाण्डव ! जो तीर्थों के माहात्म्य का नित्यही पाठ किया करता है तथा इसका भक्तिभाव से श्रवण किया करता है उसका सभी तीर्थं समवेत अभिषेक किया करते हैं ।४६। यह नर्मदा सरिता सर्वदा उस पर परम प्रसन्न होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस पर रुद्र देव भी प्रसन्न होतेहैं तथा महामुनि मार्कण्डेय भी प्रसन्न हुआ करते हैं । इसके पठन एवं श्रवण से वन्ध्या स्त्री पुत्रों का लाभ लिया करती

और जो दुर्भगा होती है वह सुभगा होजाया करती है जो कन्या होती है मनोभीष्ट स्वामी की प्राप्ति करलेती है और जो भी कोई जैसा भी कुछ फल चाहता है वह उसी समय में तुरन्त ही सब कुछ पा जाया करता है—इस विषय में कुछ भी विचारणा करने की आवश्यक ही नहीं है। जो ब्राह्मण होता है इसको वेद के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह सदा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला होता है। वैश्य अपने व्यवसाय में लाभान्वित होता है तथा शूद्र की सद्गति हो जाया करती है। जो महामूढ़ होता है। जो नर इसका तीनों सन्ध्याओं में पाठ किया करता है वह कभी भी नरक का दर्शन नहीं किया करता है और न कभी किसी से उसका वियोग ही हुआ करता है।४७-५०।

७७-भृगु वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओङ्कारस्याभिवर्णनम् ।
ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे ।१
ऋषीणां नामगोत्राणि वंशावतरणं तथा ।
प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तरादपि ।२
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवान्तरे ।
तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्त्तय ।३
दाक्षायणीमथ तथा प्रजाः कीर्तय मे प्रभो ।
ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम् ।४
मन्वन्तरेऽस्मिन् संप्राप्ते पूर्ववैवस्वते तथा ।
चरित्रं कथ्यते राजन् ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ।
ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ।६

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ।
स्कन्नशुक्रं महाराज ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से इस ओंकार के अभिवर्णन का श्रवण करके फिर इसके उपरान्त उस मत्स्य के स्वरूप वाले देवेश्वर से उस जलार्णव में पूछा गया था । श्री मनु ने कहा—हे भगवन् ! अब ऋषियों के शुभ नाम तथा गोत्र—वंशों का अवतरण एवं प्रवरों की समता असमता आप कृपा करके विस्तार के साथ वर्णन करियेगा ।१-२। स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव के द्वारा ऋषियों को शाप दे दिया गया था । वैवस्वत प्राप्त होने पर उनका भी सम्भव आप मुझे कीर्त्तित करके श्रवण कराइये ।३। हे प्रभो ! आप मेरे सामने दाक्षायणी दक्ष प्रजापति से समुत्पन्न जो प्रजा हुई थी उसका भी वर्णन करिये तथा ऋषियों के वंश एवं भृगु के वंश की विशेष वृद्धि भी बतलाइए ।४। श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! पहिले इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो चरित्र है वह कहा जाता है । महादेव जी के शाप से स्वयं ही देह का त्याग करके महात्मा के शुक्र से च्युत हो जानेपर ऋषिगण समुत्पन्न हुए थे । देवों की मातायें देखकर उसी भाँति देव पत्नियाँ भी समुत्पन्न हुई थीं हे महाराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का शुक्र (वीर्य) स्कन्न हो गया था । ।५-७।

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ।८
अङ्गरेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च ।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः ।९
केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः ।
केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततो जातो महातपाः ।१०
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः ।

भृगुःपुलोम्नस्तुसुतां दिव्यां भार्यामविन्दत ।११
यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकः ।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ।१२
शुचि क्रतुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह ।
प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽथ द्वादशस्तथा ।१३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।
पौलोम्यामजनयन् विप्रान् देवानां तु कनीयसः ।१४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने हवन किया था फिर हुताशन से उत्पत्ति हुई थी। इसके उपरान्त महान् तेज वाले तपों की निधि भृगुदेव समुत्पन्न हुए थे।८। अङ्गारों से अङ्गिरा उत्पन्न हुए और हुताशन की अर्चियों से अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुईथी और इसके अनन्तर मरीचियों से महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे।६। केशों से कपिश और महान् तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। प्रलम्ब केशोंसे फिर महान तपस्वी पुलह समुत्पन्न हुए।१०। वसु के मध्य में तप के ही धन वाले वशिष्ठ ऋषि प्रसूत हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पुत्री अपनी दिव्य भार्या बनाई थी।११। इसी भार्या में उस महर्षि के द्वादश याज्ञिक सुत उत्पन्न हुए थे। उन बारह सुतों के नाम ये हैं—भुवन-भौवन-सुजन्य-सुजन-शुचि-क्रतु-मूर्द्धा-त्याज्य-वसुद-प्रभव-अव्यय और दक्ष ये द्वादश हैं। ये सब भृगु वंश वाले बारह देव कीर्त्तित हुए थे जो पौलोमी में देवों के छोटे भाई विप्रों को जन्म ग्रहण कराया था।१२-१४।

च्यवनन्तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च ।
आनुप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ।१५
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।
तत्र गोत्रकरास्त्वन्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ।१६
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः ।१७

वैगायनो वीतिहव्य: पैलश्चैवात्र शौनक: ।
शौनकायन जीवन्तिरावेद: कार्पणिस्तथा ।१८
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च ।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धा सावर्णिकश्च स: ।१६
विष्णु:पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिन: ।
भृतभार्गेयमार्कण्डजविनो वीतिनस्तथा ।२०
मण्डमाण्डव्यमांडूकफेनपास्तनितस्तथा ।
स्थलपिण्डशिखावर्ण: शार्कराक्षिस्तथैव च ।२१

महाभाग, च्यवन तथा आप्नुवान उत्पन्न हुए। आप्नुवान का आत्मज और्व हुआ और उसका पुत्र जमदग्नि हुआ था। उन महान आत्मा वालों भार्गवों के गोत्रके करने वाला और्व हुआ था। तथा अन्य भी दीप्त तेज वाले भृगु के गोत्रकर हुए थे।१५-१६। अब उन सबके नामों का उल्लेख किया जाता है--भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जम, दग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीति हव्य, शौनकायन, जीवन्ति, आवेद कार्पणि, वैहीनहि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि नील, लुब्ध, सावर्णिक, विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्त भागिन भृत, भार्गेय, मार्कण्ड, जविन, वीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माण्डूक फेनप, स्तनित, स्थल पिण्ड, शिखावर्ण और शार्कराक्षि।१७-२१।

जालधि: सौधिक: क्षुभ्य: कुत्सन्यो मौद्गलायन: ।
कर्मायनो देवपति: पाण्डुरोचि: सगालव: ।२२
साङ्कृत्यश्चातकि: सार्पियज्ञपिण्डायनस्तथा ।
गार्ग्यायनो गायनश्च ऋषिर्गार्हायनस्तथा २३
गोष्ठायनो वात्स्यायनो वैशम्पायन एव च ।
वैकर्णिनि: शंकरवो याज्ञेयिभ्राष्ट्रकायनि: २४
लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ ।

आलुकि: सौचकि: कौत्सस्तथान्य: पैंगलायनि: ।२५
मात्यायनिर्मालायनि: कौटिलि: कौचहस्तिक: ।
सौहसोक्ति: सकौवाक्षि: कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ।२६
नैकजिह्वो जिह्वकश्च व्यधाद्यो लोहवैरिण: ।
शारद्वतिकनतिष्यौलोलाक्षिश्चलकुण्डल: ।२७
वागायनिश्चानुमति: पूर्णिमागतिकोऽसकृत् ।
सामान्येन यथा तेषां पञ्च ते प्रवरामता: ।२८

जालधि सौधिक, क्षुभ्य, कुत्सव्य, मौद्गलायन, कर्मायन, स्वर्पति, पाण्डुरोचि, सगालव, सांकृत्य, चातकि, सापि, यजपिण्डायन, गार्ग्यायन गायन, ऋषि, गार्हायन, गोष्ठायन, वात्सायन, वैशम्पायन, वैकर्णिनि, शाकुरव, याज्ञेयि, भ्राष्ट कायनि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैंगलायनि, मात्स्यायनि, मालायनि, कौटिलि, कौच हस्तिक, सौससोक्ति, सकौवाक्षि, कौसि, चान्द्रमसि, नैकजिह्व, जिह्वक, व्यधाश्व, लोहवैरिण, शारद्वतिकन तिष्य, लोलाक्षि चल कुण्डल, वागायनि, अनुमति, पूर्णिमा गतिक ये सब सामान्य रूप से थे। उनमें पांच सबमें प्रवर माने गये हैं ।२२-२८।

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मता: ।२९
अत: परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहात् ।
जमदग्निर्विदश्चैव पौलस्त्यो वैजभृत्तथा ।३०
ऋषिर्हश्चोभयजातश्च कायनि: शाटकायन: ।
और्वेया मारुताश्चैवसर्वेषां प्रवरा: शुभा ।३१
भृगुश्च च्यवश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।३२
भृगुदासो मार्गपथा ग्राम्यायनिकटायनी ।
आपस्तम्बिस्तथा बिल्विर्नैकशि: कपिरेव च ।३३

आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेव च ।
आश्वायनिस्तथारूपिर्ये चार्षेया: प्रकीर्तिता: ।३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
आर्ष्टियेणस्तथारूपि: प्रवरा पञ्च कीर्तिता: ।३५

उन पाँचों प्रवरों के नाम यह हैं—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व और जमदग्नि ये ही पाँच प्रवर माने गए हैं ।२६। इसके आगे मैं अन्य भृगुद्वहों को बतलाता हूँ । उनका श्रवण तुम करलो-जमदग्नि बिद-पौल स्त्य बैजभृत हृषि उभय जात कायनि शाकटायन औवर्बेय और मारुति सबमें प्रवर एवं शुभ थे ।३०-३१। भृगु-च्यवन और आप्नुवान ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किए गये हैं।३२। भृगुदास, मार्ग दास, मार्गपथ, ग्राम्यायनि, कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि आर्ष्टियेण, रूपि ये सब आर्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं । इनमें भृगु, च्यवन, आप्नुवान, आर्ष्टिषेण और रूपि ये पाँच प्रवर माने गए है ।३३-३५।

परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
यास्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथादम: ।३६
जैवन्त्यायनिमौञ्जश्च पिलिश्च चलिस्तथा ।
भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ कश्यपि: ।३७
बालिपि: श्रमगार्गेपि: सौरस्तिथिस्तथैव च ।
गार्गीयस्त्यथा जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो ह्युषि: ।३८
ग्रामदश्च तथैतेषामार्षेया: प्रवरा मता: ।
भृगुश्च वीतिहव्यश्च तथा: रैवसवैवसौ ।३९
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
शालायनि: , शाकटाक्षो मैत्रेय: खाण्डवस्तथा ।४०
द्रौणायनो रौक्मायना पिशली चापि कायनि: ।
हंसजिह्वस्तथैतेषाममार्षेया: प्रवरा मता: ।४१

ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित हुए हैं । यास्क, वीति

हव्य, भथित, ब्रम, जैवान्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भाग-विलि, कौशाणि, काश्यपि बालिपि, श्रमगार्गेपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जाबालि, पौष्णायन, ऋषि और ग्रामद ये सब आर्षेय एवं प्रवर माने गये हैं। भृगु, वीतिहव्य, रैवस ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गए हैं। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रौणायन, रौक्य-मायन, पिशली, कायनि, हंसजिह्वक ये सब आर्षेय प्रवर माने गये है ।३६-४१।

भृगुश्चैवाथ वध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।४२
एकायनो यज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च ।
प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः ।४३
तथा गृत्समदो राजन् ! सनकश्च महान् ऋषिः ।
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः ।४४
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्त्तितौ ।
परस्परमवैवाह्यौ ऋषी वै प्रकीर्तितौ ।४५
एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं विजहाति जन्तुः।४६

भृगु, वध्र्यश्व, दिवोदास ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्त्तित किये गये हैं। एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यूह, सौरि औक्षि, कार्दमायानि—हे राजन् ! गृत्समद और महान् ऋषि सनक ये कहे हुए ऋषियों में प्रवर तथा आर्षेय कहे गए हैं। भृगु, गृत्समद ये दोनों आर्ष कीर्त्तित किए गये है। ये दोनों परस्पर में ऋषि अवैवाह्य कीर्त्तित हुए हैं। ये भृगु के वंश में उत्पन्न महानुभाव गोत्र करने वाले हैं। हे नृप ! इन नामों के कीर्त्तन से जन्तु समग्र पापों को त्याग दिया करता है ।४२-४६।

७८-आंगिरस-वंशज ऋषियोंके नाम गोत्रवंश प्रवरवर्णन

मरीचितनया राजन् ! सुरूपा नाम विश्रुता ।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्य: पुत्रा दश स्मृता: ।१
आत्मायुर्दमनो दक्ष:सद:प्राणस्तथैव च ।
हविष्मांश्च गविष्ठश्च ऋत: सत्यश्च ते दश ।२
एते चाङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिन: ।
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ।३
बृहस्पतिङ्गौतमञ्च संवर्त्त मृषिमुत्तमम् ।
उतथ्य वामदेवं च अजस्यमृषिजन्तथा ।४
इत्येते ऋषय: सर्वे गोत्रकारा:प्रकीर्तिता: ।
तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान् निबोध मे ।५
उतथ्यो गौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा ।
सार्धनेमि:सलौगाक्षि: क्षीर कौष्टिकिरेवच ।६
राहुकर्णि: सौपुरिश्च कराति: सामलोमकि: ।
पौषजितिर्भार्गवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् मरीचि की पुत्री सुरूपा—इस नाम से प्रसिद्ध भार्य्या थी । आंगिरस देव उस के दश पुत्र बताये हैं ।१। आत्मायु, दमन, दक्ष, सद: प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ ऋत, सत्य ये दश उनके नाम से । ये सब आंगिरस नाम वाले सोमपायी देव थे । इन सर्वेश्वर सब ऋषियों को सुरूपा ने ही जन्म दिया ।२-३। बृहस्पति गौतम, सम्वर्त्त, उत्तम ऋषि, उतथ्य, वामदेव, अजस्य, ऋषिज—ये सब ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं । अब उनके गोत्र में समुत्पन्न जो गोत्रकार हैं उनको भी मुझसे जान लेना चाहिए । उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्टिक, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषजिनि, भार्गवत, ऋषि, ऐरीडव ।४-७।

करोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ ।
वाहिनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः ।८
सोमोत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवास्तथा ।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ।९
क्षपाविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च ।
त्र्यार्षेया: प्रवराश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु ।१०
अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृपिः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।११
आत्रेयायनिसौवेष्ठ्यौ अग्निवेश्यः शिलास्थलिः ।
बालिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा ।१२
सौटिश्चत्रिणकर्णिश्चप्रावहिश्चाश्वलायनिः ।
वाराहिर्बर्हिसादी च शिखीग्रीविस्तथैव च ।१३
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः ।
कौचकिर्धूमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च ।१४

कारोटक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषिण, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोमोत्रायनि, कासोरु, कासोरु, कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, अग्नि, मूलप, पाण्डु, क्षपाविश्वकर, अरि, पारिकारारि, त्र्यार्षेय और प्रवर थे, अब आगे उनके प्रवरोंका श्रवण करो। अङ्गिरा सुवचोतथ्य, उशिज, महानृपि, ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किए गये हैं। आत्रेयायनि, सौवेष्ठय, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, एकेपि, वाराहि बर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि उडुपति प्रभु, कौचकि, धूमित, पुष्पान्वेषी ।९-१२।

सोमतन्विब्रह्मतन्विः सालडिबालडिस्तथा ।
देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकार्णिः सरिद्भविः ।१५
प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।

मत्स्याच्छाद्यो मूलहर: फलहारस्तथैव च ।१६

गाङ्गोदधि: कौरुपति: कौरुक्षेत्रिस्तथैव च ।

नायकिर्जैत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च ।१७

आपस्तम्बिमौञ्जवृष्टिमार्ष्टिपिङ्गलिरेव च ।

पैलश्चैव महातेजा: शालंकायनिरेव च ।१८

द्वयाख्येयो मारुतश्चैषां त्र्यार्षेय: प्रवरो नृप ! ।

अङ्गिरा: प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पति: ।१९

तृतीयश्च भरद्वाज: प्रवरा: परिकीर्तिता: ।

परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिता: ।२०

काण्वायना: कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणा: ।

भ्राष्ट्रकृद्राष्ट्रपिण्डो च लैन्द्राणि: मायकायनि: ।२१

सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवरारिदेव स्थानि,हारि, कर्णि मरिद्भवि, प्रावेपि, साद्य सुग्रीवि, गोनेद गन्धिक, मत्स्याच्छाद्य, मूलहर, फलाहार, गंगोदधि, कोरुपति, कौरुक्षेत्रि, नामकि, जैत्यद्रौणि, जैह्वलायनि, आपस्तम्बि, मौञ्ज वृष्टि, मार्ष्टपिंगलि, पैल, महातेजा, शालङ्कायनि, द्वयाख्येय, मारुत, त्र्यार्षेय, प्रवर—हे नृप! उनमें अंगिरा प्रथम था और द्वितीय बृहस्पति था। तीसरा भरद्वाज ये सब प्रवर कीर्त्तित किए गए हैं। ये परस्पर में अवैवाह्य कहे गये हैं। काण्वायन, कोपचय, वात्स्य तरायण, भ्राष्ट्रकृत, राष्ट्रपिण्डी, लैन्द्राणि, मायका-यनि ।१५-२१।

क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावह: ।

लावकृद्गालविद्गाथी मार्कटि: पौलकायनि: ।२२

स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्य: श्यामायनिस्तथा ।

बालाकि: साहरिश्चैव पञ्चार्षेया: प्रकीर्तिता: ।२३

अंगिरा महातेजा देवाचार्यो बृहस्पति: ।

भरद्वाजस्तथा गर्ग: सैन्यश्च भगवानृषि: ।२४

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिः शक्तिः पतञ्जलिः ।२५
भूयसिर्जलसन्धिश्च बिन्दुमादिःकुसीदकिः ।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा ।२६
शालिश्च कलशीकण्टः ऋषिः कारीरयस्तथा ।
काट्योधान्यायनिश्चैवभावास्यायनिरेव च ।२७
भरद्वाजि:सौबुधिश्च लध्वी देवमतीस्तथा ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम ।२८

क्रोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत, मधुरावह, लावकृत, गालविद, गाथी, मार्कंटि, पौलकायनि, स्कन्दस, चक्री,गार्ग्य, श्यामायनि, गालाकि साहरि, ये पाँच आर्षेय प्रकीत्तित हुए हैं । अङ्गिरा, महातेजा, देवाचार्य बृहस्पति, भारद्वाज, गर्ग, सैन्य, भगवान ऋषि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, बिन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशी, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ट, ऋषि, कारीरय, काट्य, धान्यायनि भावास्यायनि, भारद्वजि, सौबुधि, लम्बी, देवमती—हे भूमिपोत्तम ! ये त्र्यार्षेय, अभिमत प्रवर वाले थे ।२२-२८।

अंगिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः ।
परस्परायणपर्णी च लौक्षिगार्ग्यहरिस्तथा ।२९
गालविश्चैव त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ।
अंगिरा संकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च ।३०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिः प्रवरा मताः ।३१
अंगिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च ।
कुत्साकुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः ।३२

रथीतराणां प्रवरा त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
अंगिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतर: ।३३
रथीतरह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः ।
विष्णुवृद्धिः शिवमतिर्जत्तण: कत्तृणस्तथा ।३४
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायण: ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ! ।३५

अङ्गिरा, दमवाह्य, उरुक्षय, परस्परायणवर्णी लौधि, गार्ग्य, हरि गालवि, त्र्यार्षेय–सबका प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, संस्कृति, गौरवीति ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किए गये हैं । बृहदुक्थ, वामदेव ये त्रिप्रवर माने गये हैं । अङ्गिरा, बृहदुक्थ, वामदेव, कुत्सांकुत्सैसे ये अवैवाह्य थे-ऐसा पुरातन मनीषीगण कहते हैं । रथीतरों में प्रवर ये त्र्यार्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं । अङ्गिरा, विरूप और उसी भाँति से रथीतरों से नित्य ही विवाह न करने के योग्य थे । विष्णु वृद्धि, शिवमति, कत्तृण पुत्रव, महातेजा, वैरपारायण हे नृप ! इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत था ।२९-३५।

अंगिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपा: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।३६
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडप: ।
अपाग्नेयस्त्वयुश्च परण्यस्ताविमौद्गला: ।३७
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवरा: शुभा: ।
अंगिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपा: ।३८
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीय: शाकटायन: ।३९
तत: प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरण: शिव: ।
कटुमर्कटपश्चैव तथा नाडायनोह्यृषि: ।४०
श्यामयनस्तथैवैषां त्र्यार्षेया: प्रवरा: शुभा: ।

अङ्गिराश्चाजमीणश्च कट्यश्चैव महातपाः ।४१
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषि ।४२

अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध, मुदगल, महातपा ये ऋषिगण आपस में अवैवाह्य कहे गए हैं । हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप में अपाग्नेय, अश्वयु, परण्य स्तविमद्‌गल ये उनके त्र्यर्षेय सबके परमशुभ प्रवर अभिमत हुए हैं । अङ्गिरा, ताण्डि, मौद्‌गल्य, महातपा ये सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के योग्य थे—ऐसे कहे गये हैं । अराण्डु,गुरु, तृतीय शाकटायन इसके उपरान्त प्रागाथमा नारी, मार्कण्ड मरण, शिव, कटुमर्कटप, नाडायन, ऋषि श्यामायन इसी प्रकार से त्र्यार्षेय इनके शुभ प्रवर थे । अङ्गिरा, आजमोण कट्य महातपा ये सब परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे हैं । तित्तिर, कपिभू, गार्ग्य और महान् ऋषि ।३६-४२।

त्र्यार्षेयो हि मतस्ते सर्वेषां प्रवरः शुभः ।
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कविभूश्च महानृषिः ।४३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा ।४४
ऋषिमित्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ।
अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ।४५
ऋषिर्मित्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।४६
भारद्वाजो हुतः शौङ्गः शैशिरेयस्तथैव च ।
इत्येते कथिताः सर्वे द्व्यामुष्यायणगोत्रजाः ।४७
पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः ।
अंगिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ।
मौद्‌गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः ।४८

एते तवोक्तागिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।४६

उन सबका त्र्यर्षेय शुभ प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, सित्तिरि, कविभू, महानृषि, ये सब परस्पर में अवैवाह्य रिषिगण कीर्त्तित किये गये हैं । इसके उपरान्त रक्ष, भरद्वाज, रिषिवान्, मानव रिषि और मैत्रबर ये पाँच आर्षेय कीर्त्तित किए गए हैं । अङ्गिरा, भरद्वाज बृह-रिषि, मित्रवर, रिषिवान् मानव ये सब परस्पर में अवैवाह्य रिषिगण कहे गए हैं । भारद्वाज, हुत, शौंगि, शैशिरेय सब द्वयामुष्यायण गोत्रमें समुत्पन्न कहे गए थे । ।४३-४७। इन सबके पाँच आर्षेय प्रवर परिकी-र्त्तित हुए हैं उनमें अङ्गिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्गल्य, शैशिर ये प्रवर कहे गये है ।४८। ये सब आंगिरस के वंश में महानुभाव गोत्रकार रिषिगण आपको बतला दिए गए हैं । जिनके केवल नाम मात्र के ही कीर्त्तिन करने से पुरुष अपने समग्र पाप का त्याग दिया करता है ।४६।

— —

७६-अत्रिवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश वर्णन

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ।
कर्दमायनशाखेयास्तथा पारायणाश्च ये ।१
उद्दालकिः शौणकर्णिरथौ शौक्रतवश्च ये ।
गौराग्रीवा गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये ।२
अर्द्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तनिबिन्दवः ।
कर्णजिह्वो हरप्रीतिर्नैद्राणिः शाकलायनिः ।३
तैलपश्च सवैलेय अत्रिर्गोणीपतिस्तथा ।
जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः ।४

छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेया: प्रवरा मता: ।
श्यावश्च तथात्रिश्च आर्चनानश एव च ।५

परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
दाक्षिर्बल: पर्णविश्च ऊर्णनाभि: शिलार्दनि: ।६
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिर: ।
भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेया: प्रवरा मता: ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले गोत्रकारोंका ज्ञान मुझसे प्राप्त करलो जो कर्दमायन शाखेय तथा पारायण थे । उद्दालकि, शोण, कर्णिरथ और जो शौक्रतव थे । जो गौरग्रीव, गौरजिन तथा चैत्रायण थे । अर्द्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, तनिबिन्दु, कणजिह्व, हरप्रीति, नैद्राणि, शाकलायनि, तैल, सवैलेय, अत्रि गोणीपति जलद, भगपाद, सौधुष्कि, महातपा और छन्दोगेय, इनके त्र्यार्षेय प्रवर माने गए हैं । श्यावाश्च, त्रिश्च और अर्चनानश ये आपस में अवैवाह्य रिषिगण कहे गए हैं । दक्षि, बलि, पर्णवि, ऊर्णनाभि शिलार्दनि, बीजवापी शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठर और भलन्दन ये इनके प्रवर और त्र्यार्षेय माने गए हैं ।१-७।

अत्रिर्गविष्ठरश्चैव तथा पूर्वातिथि: स्मृत: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्द्ध्वं निबोध मे ।
कालेयाश्च सवालेया वासरथ्यास्तथैव च ।९
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैवमहानृषि: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।१०
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तुवाह्या महानुभावा नृपगोत्रकारा: ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्त्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।११

अत्रि, गविष्ठिरा पूर्वातिथि ये रिषिगण परस्पर में अवैवाह्य परि कीर्त्तित किये गये हैं ।८। अब आत्रेय पुत्रिका के पुत्रों को भी मुझसे समझलो । कालेय, सचालेय, वासरथ्य आत्रेय, मैत्रेय, श्यार्णेय कीर्त्तित किए गए हैं । अत्रि, वामरथ्य, पौत्रि, महान् रिषि से सब रिषिगण आपस में विवाह न करने के ही योग्य थे । ये सब अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले नृपगोत्रकार महानुभाव हैं जो तुम्हारे सामने वर्णित कर दिए गए हैं । जिनके शुभ नामों के कीर्त्तन मात्र से ही पुरुष समग्र पाप का त्याग कर दिया करता है ।८-११।

८०—कुशिक वंशज ऋषियोंके नाम गोत्रवंश प्रवर वर्णन

अत्रेरेवापरं वंशन्तव वक्ष्यामि पार्थिव ।
अत्रेः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवा नृप ।१
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान् ।
तस्य वंशमह वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ।२

विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः ।
वतण्डश्च सलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः ।३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः ।
वाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्याः अथ संश्रुताः ।४
उलूपा औपगह्याः पयोदजनपादपाः ।
खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ।५
श्यार्णेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्त्तिताः ।
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः ।६

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।
देवश्रवाः सुजातेयाः सौसुकाः कारुकायनाः ।७

तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ।८

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे पार्थिव ! अब मैं अत्रि के दूसरे वंश का वर्णन करूँगा । हे नृप ! अत्रिका सुत श्रीमान् सोम उसका वंशोद्भव था विश्वामित्र ने तपश्चर्या के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्तिकर ली । मैं अब उनके वंश का भी वर्णन करूँगा । बतलाने वाले मुझसे उसका आप लोग श्रवण कर लेवें । विश्वामित्र, देवरात, वैकृतिगालव, वतण्ड-सलङ्कु-अभय-आयतायन-श्यामायन-याज्ञवल्क्य-जाबाल-सैन्धवान-बाभ्रव्य-करीष-संश्रुत्य-संश्रुत-उलूप-औपगहय-पयोद जन पादप—खरवाच-हलयम-साधित—वास्तु कौशिक—उन सबके त्र्यार्षेय प्रवर कीर्त्तित किए गए हैं । विश्वामित्र—देवराज—महाराज—महा—यशा उद्दालक ये परस्पर में विवाह न करने के योग्य ही हैं—ऐसे ही रिषि गण कहे गए हैं । देवाश्रवा—सुसातेय—सौसुक—कारुकायन—तथा वैदेहरात—हे नराधिप ! जो कुशिक है इन सबका शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत है ।१-८।

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।९
धनञ्जयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव ।
पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्वं एते प्रकीर्तिताः ।१०
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च ।
त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।११
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।१२
कमलायाजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च ।
वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ।१३
विश्वामित्रश्चाश्मरथो वञ्जुलिश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।१४

देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र ये रिषिगण परस्पर विवाह न न करने के योग्य कहे गये है।९। हे पार्थिव ! धनञ्जय, कपर्देय, परि-कूट और पाणिनि ये सब त्र्यार्षेय कीर्तित किए गए हैं।१०। विश्वा-मित्र तथा आद्य और माधुच्छन्दस त्र्यार्षेय प्रवर रिषिवर्ग बताये गए है।११। विश्वामित्र, मधुच्छन्द, अघमर्षण ये आपस में अवैवाह्य रिषि गण कीर्तित हुए हैं।१२। कमलायजनि, अश्मरथ्य, वञ्जुलि सबका त्र्यार्षेय प्रवर माना गया है।१३। विश्वामित्र, अश्मरथ, महातपा वञ्जुलि ये परस्पर में अवैवाह्य रिषिगण परिकीर्तित हुए हैं।१४।

विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा ।
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौ प्रवरौ स्मृतौ ।१५
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम् ।
लोहिता अष्टकाश्चैषां त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।१६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः ।
अष्टमका लोहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम् ।१७
उदरेणुः कथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा ।
शाटयायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी ।१८
मौञ्जायनिश्चभवान्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
खिलिखिलिस्तथा विद्योविश्वामित्रस्तथैवच ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ।१९
तेनोक्ता एताः कुशिका नरेन्द्र ! महानुभाःसततंद्विजेन्द्राः ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।२०

विश्वामित्र और लोहित---अष्टक-पूरण-विश्वामित्र और पूरण इन दोनों के दो प्रवर कहे गए हैं। पूरण आपस में अवैवाह्य है। लोहित और अष्टक इनके त्र्यार्षेय बताए गए हैं।१५-१६। विश्वामित्र, लोहित, महातपा अष्टक लोहितों के साथ आपस में अवैवाह्य है।१७

उदरेणु क्रथक, रिपि उदावहि, शाटयायनि, करीराशी, शाशङ्काय, निलावकि, मोञ्जायनि, भगवान् ये भ्यार्षेय कीर्त्तित हुए हैं। खिलि, खिलि, विद्य तथा विश्वामित्र ये परस्पर में रिषिगण अनैवाह्य कहे गए हैं।१८-१६। हे नरेन्द्र ! आपको द्विजेन्द्र महानुभाव सतत कुशिक सब बतला दिए गए हैं जिनके परम शुभ नामों के संकीर्त्तन मात्र से ही पुरुष अपने समस्त पापों को त्याग कर विशुद्ध हो जाया करता है। ।२०।

=×=

८१-कश्यप वंशजों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचे: कश्यप: पुत्र: कश्यपस्य तथा कुले।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु ।१
आश्रायणि ऋषिगणो मेषकोरिटकायना:।
उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणा: ।२
शालाहलेया: कौरिष्टा: कन्यकाश्चासुरायणा:।
मन्दाकिन्यां वै मृगया: श्रुतया भोजयापना: ।३
देवयाना गोमयानह्यधश्छाया भयाश्च ये।
कात्यायना: शाक्रयाणा: बर्हियोगगदायना: ।४
भवनन्दि महाचक्रि दाक्षपायन एव च।
योध्रयाना: कातिवयो हस्तिदानास्तथैव च ।५
वात्स्यायनानि कृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।
प्रागायणा: पौलमौलिराश्ववातायनस्तथा ।६
कौवेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणश्च ये।
मेषपा: कैंकरसपास्तथा चैव ते बभ्रव: ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महामहर्षि मरीचि का कश्यप पुत्र हुआ था तथा कश्यप के कुल में जो गोत्रकार रिषिगण हुए थे उनकी

नामावली अब आप मुझसे श्रवण करलो ।१। आश्रागणि रिपिगण, मेघ कौरिटकायव, उदग्रजामाठर, ओ, विनय लक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में मृगय, श्रुतय, भोजयापन,देवयान, गोमयान, अधश्छाय, भथा कात्यायन, शाक्रयाण, बर्हियोग, गदायन, भव– कृतज, आश्वलायमि, प्राजायण, पौलमौलि, आश्व बातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैंकरसप तथा बभ्रव ।२-७।

प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्नः प्रासेव्य एव च ।
श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैकोद्वलायना: ।८
काष्ठाहारिणमारीचा आजिहायनहास्तिका: ।
वैकर्णेया: काश्यपेया: सासिसाहारितायना: ।६
मान्तग्निश्च भृगवस्त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
वत्सर: कश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपा: ।१०
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अत: परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान् ।११
अनसूयो नाकुरय: स्नातपो राजवर्तप: ।
शैशिरोदवह्निश्चैव सैरन्ध्रीरोपसेवकि: ।१२
यामुनि: काद्रुपिङ्गाक्षि: सजातम्बिस्तथैव च ।
दिवावष्टाश्व इत्येते भक्त्याज्ञेयाश्चपा: ।१३
त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषांप्रवरा: शुभा: ।
वत्सर: काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातप: ।१४

प्रचेय, ज्ञान संज्ञेय, अग्नि, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन काष्ठाहारिण, मारीच, आजियन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासि-साहोरितायक, मान्ताग्नि भृगुगण ये सब त्र्यार्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं। अब यहाँ से आगे हम द्व्यामुष्यायण गोत्रजों के विषय में वर्णन करेंगे। अनसूय, नाकुरम, स्नातम्य, राज वर्त्तप,शैशिरोदवह्नि,सैरन्ध्रीरोपसेवकि,

यामुनि, कादृपिमाक्षि, सजातिम्ब, दिवावष्टाश्च ये इतने भक्तिभाव से काश्यपों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके सबके त्र्यार्षेय शुभ प्रवर है। वत्सर, काश्यप, वसिष्ठ महातपा।८-१४।

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
संयातिश्च नमश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः।१५
भुजातपुरः पूर्वश्च कर्दमो गर्द भोमुखः।
हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ।१६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः।
निदाघमसृणौ भत्स्यो महान्तः केवलाश्च ये।१७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा व देवजातयः।
पैप्पलादिस्स प्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः।१८
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।१९
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यःसकलंप्रसूतम्।२०

ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य बतलाये गये हैं। संयाति नभ ये दोनों, पिप्पल्य, जलन्धर, भुजातपूर, पूर्व, कर्दम, गर्दभी मुख, हिरण्य बाहुक, काश्यप, गोभिल, कुलह,वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर,निदाघ मसृण, भत्स्य, महान्त, केवल, शांडिल्य, दानव, देवजाति, पैप्पल दिस-राये सब ऋषिवृन्द प्रवर कहे गए हैं इन सबके शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हुए हैं। असित, देवल और महातपा कश्यप ये ऋषिगण परस्परमें अवैवाह्य है—ऐसा कीर्तित किया गया है। समस्त ऋषियों में परम प्रधान कश्यप के दाक्षायणीयों से यह सम्पूर्ण प्रसूत हुआहै। यह सम्पूर्ण जगत् सिंह के तुल्य मनु का पुण्य रूप है। अब मैं इसके उपरान्त आप को क्या बतलाऊँ ?।१५-२०।

==

८२-वशिष्ठ वंशज ऋषियोंके नाम गोत्रवंश प्रवर वर्णन

वसिष्ठ वंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम ।
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः ।१
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः ।
व्याघ्रपादा औपगवावैक्लवाः शाद्वलायनाः ।२
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चषठाः कठाः ।
गोपयाना बोधपाश्चदाकव्याह्यथवाह्यकाः ।३
वालिशयाः पालिशयास्ततोवाग्ग्रन्थयश्चये ।
आपस्थूणाःशीतवृत्तास्तथा ब्राह्मपुरेयकाः ।४
लोमायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिगौंडिनिस्तथा ।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ।।५
चौलिर्वौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च ।
पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेया महर्षय ।६
वसिष्ठ एषां प्रवर अवैवाह्याः परस्परम् ।
शैलाल्यो महाकर्णाः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—वसिष्ठ वंश में समुत्पन्न विप्रों को बतलाते हुए मुझसे श्रवण करो । वसिष्ठों का एकार्षेय प्रवर प्रकीर्त्तित किया गया है ।१। वसिष्ठ ही वसिष्ठ हैं जो वसिष्ठ से समुत्पन्न होने वालों के साथ अविवाह्य हैं । व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव शाद्वलायन कपिष्ठल औपलोम अलब्ध, षठ,कठ, गोपयान, बोधप, दाकव्य, वाह्यक वालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थय, आपस्थूण, शीतवृत्त, ब्राह्य पुरेयक, लोभायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना,उपावृद्धि चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौड़व, याज्ञवल्क्य ये सब एकार्षेय महर्षिगण हैं । इनका वसिष्ठ प्रवर है और परस्पर में अवैवाह्य महाकर्ण, कौरव्य क्रोधिन ।२-७।

कपिञ्जलावालखिल्याभागवित्तायनाश्चये ।
कीलायनः कालशिखः कोरकृष्ण सुरायणाः ।८
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपणपाश्च ये ।
शाकायना उहाकाश्च अथ माषशरावयः ।९
दाकायनावालवयोवाकयो गोरथास्तथा ।
लम्बायनाः श्यामवयो ये च कोडोदरायणाः ।१०
प्रलम्बायनाश्च ऋषयः औपमन्यव एव च ।
साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वैदशेरकाः ।११
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः ।
मातेया ब्रह्मबलिनः पर्णागारिस्तथैव च ।१२
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषांप्रवरस्तथा ।
भिगीवसुवशिष्ठश्च इन्द्र प्रमदिरेव च ।१३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
औपस्थलास्वस्थलयो पालोहाला हलाश्च ये ।१४

कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कोलायन, कालशिख, कोर कृष्ण, सुरायण, शाकाहर्य, शाकाधी, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, कोडोदरायण, प्रलम्बायन ऋषिगण, औपमन्यव, साङ्ख्यायन ऋषिवर्ग, वैदशेरक, पलङ्कायन, उद्गाह ऋषिगण, बलेक्षय, मातेय, ब्रह्मबलिन, पर्णागारि, इन सबके प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत है । भिगीवसु वशिष्ठ और इन्द्र प्रमदि ये ऋषिगण आपस में विवाह विधि नहीं करने के योग्य होते हैं—ऐसा ही कहा गया है । औपस्थल स्वस्थल ये—पालोहाल-हल ।८-१४।

माध्यन्दिनो माक्षतपः पैप्पलादिर्विचक्षुषः ।
त्रैश्रृङ्गायन सैवल्काःकुण्डिनश्च नरोत्तम ! ।१५
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराःशुभाः ।

वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः ।१६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ।१७
आर्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा ।
जातूकर्ण्यो वसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ! ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।१८
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।१९

माध्यन्दिन, माक्षतप पैप्पलादि, विचक्षुष, शंशृङ्गायन, सैबल्क, कुण्डिन हे नरोत्तम ! इन सबके परम शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत हैं । वसिष्ठ, मित्रावरुण, महातपा, कुण्डिन ये ऋषि वृन्द परस्पर में अवैवाह्य हैं—ऐसा कीर्त्तित किया गया है । शिवकर्ण, षय, पादप, इन सब का आर्षेय प्रवर अभिमत है । हे पार्थिव ! जातूकर्ण्य वसिष्ठ तथा अत्रि ये ऋषि वृन्द आपस में विवाह न करने के योग्य ही कहे गये हैं ।१५-१८। मैंने आपको वसिष्ठ के वंश में ऋषियों में प्रधान और निरन्तर द्विजेन्द्र आपको कह दिये गये हैं जिनके परम शुभ नामों के परिकीर्त्तन से पुरुष अपने सम्पूर्ण पापों का त्याग कर दिया करता है । ।१९।

८३—ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः पूर्वपुरोहितः ।
बभूव पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञास्तस्य समन्ततः ।१
श्रान्तात्म पार्थिवश्रेष्ठ ! विशश्राम तदा गुरुः ।
तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत् ।२
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मां याजय माचिरम् ।

तमुवाच महातेजा वसिष्ठः पार्थिवोत्तमम् ।३
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः ।
श्रान्तोऽस्मि राजन् ! विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप ।४
एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तम ! ।
पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत् ।५

न च मे सौहृदं ब्रह्मन् ! कृतान्तेन बलीयसा ।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ।६
धर्मपथ्यौदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते ।
श्वः कार्य्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महर्षि वसिष्ठ महान् तेजस्वी थे और निमि के पूर्व पुरोहित थे। हे पार्थिव श्रेष्ठ उसके चारों ओर यज्ञ थे उस समय में श्रान्त आत्मा गुरु ने विश्राम किया था। उसके समीप में आकर निमिने यह वचन कहा था। हे भगवन् ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ—मुझे शीघ्र यजन कराइए। महान् तेज वाले वसिष्ठजी ने उस श्रेष्ठ राजा से कहा था—कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। आपके परम श्रेष्ठ यज्ञों से हे राजन् ! मैं थक-सा गया हूँ कुछ समय तक विश्राम करके ही यजन कराऊँगा।१-४। इस प्रकार से जब कहा गया था उसने हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठजी से कहा था कि पारलौकिक कार्य में कौन मनुष्य होगा जो प्रतिक्षा करने का उत्साह करेगा। हे ब्रह्मन्! उस महान्बली यमराज से मेरी कोई मित्रता नहीं है। कार्य में तो शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि यह मानव का जीवन तो चल और अस्थिर हुआ करता है।५-६। धर्म रूपी पथ्य ओदन वाला यह जन्तु मृत होकर भी सुख का आन्दोपभोग किया करता है। जो कार्य अर्थात् धर्म सम्बन्धी कर्म कल करने का विचार हो उसे आज ही करना चाहिए और जो दोपहर के बाद करने का हो उसको दोपहर के पूर्व ही कर डाले—इसी प्रकार धार्मिक कृत्य को ही जितनी शीघ्रता हो सके उतनी

शीघ्रता मे सम्पादित करने का सर्वदा विचार रखना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है ।७।

न हि प्रतीक्षते मृत्यः कृतञ्चास्य न वा कृतम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्र गतमानसम् ।८
वृकश्चोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
नैकान्तेन प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्यन विद्यते ।९
आयुष्ये कर्मणि जीर्णे प्रसह्य हरते जनम् ।
प्राणवायोश्चलत्वञ्च त्वया विदितमेव च ।१०
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् ! क्षणमात्रन्तदद्भुतम् ।
शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने ।११
अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि संकटे ।
सोऽहं संभृत सम्भारोभवन्मुलमुपागतः ।१२
नचेद्याजयसे मा त्वं अन्यं यास्यामि याजकम् ।
एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः ।१३
शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ।१४

मृत्यु इसने कुछ किया है या अभी तक धर्म का कार्य नहीं किया है—इसकी बिलकुल भी प्रतीक्षा नहीं किया करतीहै । वह तो एक वृक के ही समान चुप चाप समय पर आकर क्षेत्र-गृह-आपण आदि में समासक्त और दूसरे-दूसरे विषयों में मन लगाने वाले मनुष्य को लेकर चल दिया करता है । इसका न तो कोई प्यारा है और न किसी से इसका द्वेष ही है । यह तो कर्म में समासक्त जनको आयुष्य के क्षीण हो जाने पर बलात् पकड़ कर हरणकर लिया करता है । यह प्राण वायु चल है और इसकी चंचलता को आप भली भाँति से जानते ही हैं । हे ब्रह्मन्! जो यहाँ पर जीवित रहा करता है उसका एक क्षणमात्र जीवित रहना भी एक अद्भुत आश्चर्य ही है। मैं तो विद्याभ्यास और धन के अर्जुन

में इस शरीर को शाश्वत मानता हूँ। धर्म कार्य में मैं इसको अशाश्वत मानता हूँ। इस सङ्कट में ऋणवान् हूँ। वह मैं सम्भृत सम्भार वाला आपकी शरण में आया हूँ। यदि आप मुझे याजन नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजक के समीप में चला जाऊँगा। इस प्रकार से उस समय में उस निमि के द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जब कहा गया था तो उसने महान् क्रोध से उस निमि को शाप दे दिया था कि तू विदेह हो जायेगा क्योंकि परम श्रान्त मुझको त्याग करके किसी अन्य द्विजोत्तम के समीप जाना चाहता है।८-१४।

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्वं याजकं कर्तु मिच्छसि।
निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे।१५
विघ्नङ्करोषि नान्येन याजनंच तथेच्छसि।
शापं ददासि यास्मात्वं विदेहोऽथभविष्यसि।१६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौऽद्विजपार्थिवौ।
देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतु:।१७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मावचनमब्रवीत्।
अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम्।१८
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव।
त्वत् सम्बन्धात्तथा तेषां निमेष: सम्भविष्यति।१९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवा:।
एवमुक्ते मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वश:।२०
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुव:।
वसिष्ठजीवं भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।२१

हे नरेन्द्र ! धर्म के ज्ञाता आप हैं और आप याजक करना चाहते हैं। इसके अनन्तर निमि ने उनको इसका उत्तर दिया था कि आप धर्म में रति रखने वाले मेरे कार्य में विघ्न करते हैं और अन्य के द्वारा कराए जाने वाले याजन को नहीं चाहते हैं। इसीलिए आप शाप दे रहे हैं कि

तू विदेह हो जायगा तो तू भी विदेह हो जायगा। इस प्रकार से कहने पर वे दोनों ही द्विज और पार्थिव विदेह हो गये थे। उन दोनों के देह से हीन जीवात्मा ब्रह्मा के समीप में पहुँचे थे। उन दोनों को समानता हुए देखकर ब्रह्माजी ने कहा—आज से लेकर हे निमि के जीव ! तुमको मैं स्थान देता हूँ। हे पार्थिव। तुम सब के नेत्रों के पक्ष्म में निवास करोगे।१५-१६। मनुष्य उस समय में नेत्रोंके पक्ष्मों का चालन करेंगे। इस तरह से कहने पर सब और मनुष्योंके नेत्रों के पक्ष्मों पर वह निमि का जीव स्वयम्भू प्रभू के वरदान से चला गया था। फिर ब्रह्माजी ने वसिष्ठ महर्षि के जीव से यह वचन कहा था—।२०-२१।

मित्रावरुणयो: पुत्रो वसिष्ठ ! त्वं भविष्यसि।
वसिष्ठेति च ते नाम तत्रापि च भविष्यति।२२
जन्मद्वयमतीतञ्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि।
एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा।२३
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम्।
तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ।२४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे द्रवति मारुते।
उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम्।२५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथङ्गता।
तां दृष्ट्वा सुमुखीं सुभ्रू नीलनीरजलोचनाम्।२६
उभौ चक्षुभतुर्धैर्यात्तद्रूपपरिमोहितौ।
तपस्यतोस्तो वीर्यमस्खलच्च मृगासने।२७
स्कन्नरेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीतौ परस्परम्।
चक्रतु: कलशे शुक्रं तोयपूर्णं मनोरमे।२८

हे वसिष्ठ। तू मित्रावरुणों का पुत्र होगा। वहाँ पर भी 'वसिष्ठ'—यह तेरा नाम होगा।२। वहाँ पर भी तुझे बीते हुए दो जन्मों का स्मरण होगा। इसी समय में मित्र और वरुण बदर्याश्रम को

प्राप्त करके अव्यय तपस्या का सैतपन करने लगे थे। उन दोनों के इस प्रकार से तपश्चर्या करने पर किसी समय माधव ऋतु में परम शुभ और वहन करने वाली वायु से युक्त पुष्पित द्रुमों के संस्थान में फूलों के स्तवकों उछालती हुई वरारोह वाली उर्वशी जो कि अत्यन्त बारीक और रक्तवर्ण के वस्त्र धारणकर रही थी तप करने वाले उन दोनों की दृष्टि में आ गई थी अर्थात् दोनों ने उर्वशी को देख लिया था। उस नीले कमलों के सदृश लोचनों वाली सुन्दर मुख से सम्पन्न सुभ्रू को देखकर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुए वे दोनों ही धैर्यहीन होकर क्षोभ वाले हो गये थे। तपस्या करते हुए उन दोनों का वीर्य मृगासन पर स्खलित हो गया था। इसके उपरान्त जब उन्होंने अपने स्कन्न हुए वीर्य को देखा तो वे दोनों शाप से भयभीत हो गये थे और उन्होंने वहाँ पर स्थित जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य को डाल दिया था।२३-२८।

तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसाप्रतिमौ भुवि ।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोर्द्वयोः ।२९

वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भागिनीं नारदस्य तु ।
अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत् ।३०

शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निबोध मे ।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत ।३१

प्रकाशो जनितो येन लोके भारतचन्द्रमाः ।
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम् ।३२

काण्डषपो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः ।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ।३३

प्रपोह्याबाह्य मया ख्याता याः कौतुजातयः ।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीलज्ञेयाः पराशराः ।३४

काष्र्णायना कपिमुखाः काकेयस्थाजपातयः ।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णाज्ञेयाः पराशराः ।३५

उसी वीर्य से भूमण्डल में तेज से समन्वित उन दोनों मित्रावरणों के दो ऋषियों में परम श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे । उनमें एक का नाम वसिष्ठ था और दूसरे का नाम अगस्त्य था ।२९। वसिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था जिस वरारोहा का नाम अरुन्धती था । उस अरुन्धती में उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था । शक्ति का पुत्र पराशर हुआ था । अब उसका जो भी वंश हुआ उसे मुझमें समझ लो । जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन्न हुआ था।३०-३१। वह ऐसा था जिसने लोक में भारत चन्द्र प्रकाश को प्रसूत किया था । उस पराशर मुनि का जो उत्तम वंश था उसे तुम श्रवण करलो । काण्डषेप-वाहनप-जैह्मप-भौम तापन और इनमें पाँचवा गोपालि था । था । ये गौर पाराशर थे ।३३। प्रप-हृयवाह्य-मय और ख्यात में जो कौतुक जातियाँ हैं तथा पञ्चम हर्यश्वि में नीलाज्ञेय पराशर हैं ।३४। कार्ष्णायन-कपिमुख-काकेयस्थ—जपाति और इनमें पाँचवाँ पुष्कर ये सब कृष्णाज्ञेय पराशर हैं ।३५।

आविष्टायन वालेयास्वायष्टाश्चोपयाश्च ये ।
इषोमहस्ताश्चैते वै पञ्चश्वेताः पराशराः ।३६
पाटिको वादरिश्चैवस्तम्बा वै क्रोधनायनाः ।
क्षौमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ।३७
खल्यायनाः वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः ।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ।३८
उक्तास्त्वैते नृप ! वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्र भवाः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।३९

आविष्टायन-वालेय—स्वायष्ट—इषीक हस्त ये पाँच श्वेत पराशर थे ।३६। पाटिक—बादरि—स्तम्ब क्रोधानायन और इनका पाँचवाँ क्षौमि ये श्याम पराशर हुए थे ।३७। खल्यायन—वार्ष्णायन—तैलेय—यूथप

और इनमें पञ्चम तन्ति ये सब धूम्र पराशर हैं। हे नृप ! ये सूर्य के समान प्रभाव वाले वंश में प्रमुख पराशर सब आपके समक्ष में वर्णित कर दिए गए हैं जिनके शुभ नामों के ही कीर्त्तन करने से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम विशुद्ध हो जाया करता है।३७-३९।

=×=

८४—रिषियों के नाग गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान्द्विजान् ।
अगस्त्यश्चकरम्भश्चकौशल्यः करटस्तथा ।१
सुनेध्रसोभुवस्तथा गान्धारकायणाः ।
पौलस्त्याः पौलहाश्चैव क्रतुवंशभवास्तथा ।२
आर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः ।३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
पौर्णमासाः पारणाश्च आर्षेयाः परिकीर्तिताः ।४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पाणश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासस्तु पारणः ।५
एवमुक्तो ऋषीणान्तु वंश उत्तमपौरुषः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि किम्भवानद्य कथ्यताम् ।६
पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैव हात्मनः ।
अगस्त्यस्य तथा चैव कथं वंशस्तदुच्यताम् ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इससे आगे मैं अगस्त्य मुनि के वंश में समुत्पन्न द्विजों का वर्णन करता हूँ—अगस्त्य—करम्भ—कौशल्य—करट—सुमेधस—मयोभुव—गान्धारकायण—पौलस्त्य—पौलह—ऋतुवंश भव-

इन सबके शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत है। अगस्त्य—महेन्द्र और मयोभुव ऋषि ये समस्त ऋषिगण परस्परमें अवैवाह्य हैं ऐसा परिकीत्तित किया गया है। पौर्णमास और पारण आर्षेय कीत्तित किये गये हैं। अगस्त्य-पौर्णमास तथा महान् तपस्वी पारण—ये आपसमें विवाह करने के योग्य नहीं थे और पौर्ण मास पारणों के साथ वैवाह्य नहीं था। इस प्रकार से ऋषियों का उत्तम पौरुष वाला वंश मैंने कह दिया है। इससे आगे आज क्या कहूँ ? आप ही यह मुझे बतलाइए। महर्षि मनु ने कहा—पुलह—पुलस्त्य क्रतु जो महान् आत्मा वाला था तथा अगस्त्य का वंश कैसे हुआ—यही अब बतलाइए ।१-७।

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे ।
इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ।८
अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञं आगस्त्याः क्रतवस्ततः ।
पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते ।९
तेषान्तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि ।
पुलहस्तु प्रजांदृष्ट्वानातिमनाः स्वकाम् ।१०
अगस्त्यगंदृढास्यन्तुपुत्रत्वेवृतवांस्ततः ।
पौलाहाश्च तथा राजन् ! आगस्त्यः परिकीर्तिताः ।११
पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्ट्वा रक्षः समुद्भवान् ।
अगस्त्यस्य सुतान्धीमान् पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ।१२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ।
सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः ।१३
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभाव नृपवंशकाराः ।
एषान्तु नाम्नापरिकीर्तितेन पापंसमग्रं पुरुषोजहाति ।१४

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु बिना सन्तान वाला हुआ था। उस श्रेष्ठ ऋषि ने इध्मवाह को पुत्रत्व के रूप में ग्रहण किया था ।८। वह धर्म का ज्ञाता अगस्त्य का

पुत्र था । इसके पश्चात् क्रतुगण्य आगस्त्य कहे गये गए थे । हे पृथिवी-पते ! पुलह के तीन पुत्र थे । अब मैं उत्तर में यथाविधि उनके जन्म के विषय में वर्णन करूँगा । पुलह ने अपनी प्रजा को देखा था तो वह–अत्यन्त प्रीति युक्त मन वाला नहीं था । इसके उपरान्त उसने दृढ़ास्य अगस्त्य से समुत्पन्न को पुत्रत्व के रूप में वरण कर लिया था । हे राजन् ! उसी प्रकार से पौलह आगस्त्य परिकीर्त्तित हुए थे । पुलस्त्य के अन्वय में समुद्गततों को राक्षसों से समुद्भव वाले देखकर श्रीमान् ने अगस्त्य के सुत को ही पुत्रत्व में वृत कर लिया ।९-१२। तथा हे राजन् ! वे पौलस्त्य कीर्त्तित हुए । सगोत्र होने से ये सब परस्पर में अन्वय वाले नहीं थे । ये सब नृपों से वंशकर महानुभाव द्विजों में प्रवर थे ? इनका वर्णन आपको सुना दिया है । इनके नामों के कीर्त्तित से से मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है ।१३-१४।

८५–मनुमत्स्य संवाद धर्म वंश वर्णन

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव ! ।
दाक्षायणीभ्य: सकलं वंशं दैवतमुत्तमम् ।१
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप ! ।
अरुन्धत्या: प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ।२
अष्टौ च वसव: पुत्रा: सोमपाश्च विभोस्तथा ।
धरोध्रुवश्चसामश्च आपश्चैवाविलानलौ ।३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
धरस्य पुत्रो द्रविण: काल: पुत्रोध्रुवस्य तु ।४
कालस्यावयवानान्तु शरीराणि नराधिप ! ।
मूर्तिमन्ति च कालाद्धि संप्रसूतान्यशेषत: ।५

सोमस्य भगवान् वर्चा: श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते ।
अनेकजन्मजनन: कुमारस्त्वनलस्य तु ।६

पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवल: ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्द्धकि: ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे पार्थिव ! इस वैवस्वत अन्तर के प्राप्त होने पर दाक्षायणियों से सम्पूर्ण उत्तम अस्मि दैवतवंश का श्रवण कीजिएगा ।१। हे नराधिप ! इस वैवस्वत अन्तर में धर्म से अरुन्धती से पर्वत आदि महा दुर्ग शरीर प्रसूत हुए थे ।२। आठ बसुगण पुत्र—विभु के सोमव–धर-ध्रुव-सोम-आप-अनिल-अनल-प्रत्यूष प्रभास ये सब अष्ट बसुगण कीर्तित किये गये हैं। धर का पुत्र द्रविण हुआ और काल ध्रुव का पुत्र हुआ था। हे नराधिप ! काल के अवयवों के शरीर मूर्तिमान सम्पूर्ण काल से ही सम्प्रसूत हुए थे ।३-५। सोम का पुत्र भगवान् वर्चा था और चल का पुत्र श्रीमान् हुआ था—ऐसा कहा जाता है। अनल का पुत्र अनेक जन्म जनन कुमार था। अनिल का आत्मज पुराजवा तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल प्रसूत हुआ था। प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा था तथा त्रिदशों का वह वर्द्धकि था ।६-७।

समीहितकरा: प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव ।
लम्ब: पुत्र: स्मृतो घोषो भानो: पुत्राश्चभानव: ।८
ग्रहक्षाणाञ्च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्त: सर्वे पुत्रा: प्रकीर्तिता: ।९

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पस्तथापुत्र: प्रकीर्तित: ।
मसूर्तांश्चमुलूतीया: साध्या साध्याहुता: स्मृता: ।१०
मनोर्मनुश्च प्राणश्च नरोषानौ च वीर्यवान् ।
चित्तहार्योऽयनश्चैव हंसो नारायणस्तथा ।११

विभुश्चापिप्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिता: ।
विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवा: प्रकीर्तिता ।१२

क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः कालकामोमुनिस्तथा ।
कुरजो मनुजो बीजो रोचमानश्च ते दश ।१३
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ! ।
व्यासेनवक्तु न हि शक्यमस्ति राजन्विनावर्षशतैरनेकैः।१४

सभी हितकरों वाले नागवीथी आदि नौ बताये गये हैं। लम्ब का पुत्र घोष कहा गया है और भानु के पुत्र भानुगण हैं।८। अन्य अपित अपित ओज वाले ग्रह और नक्षत्रों के सबके मरुत्वतों में मरुत्वन्त सब पुत्र प्रकीर्तित हुए हैं।६। सङ्कल्पा का पुत्र सङ्कल्प कहा गयाहै। मुहूर्त्ता के पुत्र मुहूर्त और साध्य साध्या के सुत उत्पन्न हुए थे ऐसा कहा गया है। मनु से मनु और प्राण--नर--उषान--वीर्यवान्---हार्य---अयन---हंस --नारायण---विभु और प्रभु ये द्वादश साध्य कहे गये हैं। विश्वा के जो पुत्र थे वे। क्रतु---दक्ष---वसु---सत्य---कालकाम---मुनि---कुरज --मनुज---बीज---रोचमान---ये दश थे। हे पार्थिवों के वंश संक्षेप से से आपके समक्ष में बतला दिया है। हे राजन् ! यह अनेकों वर्षों के बिना भगवान् व्यासदेव के द्वारा भी बतलाया नहीं जा सकता है।१०-१४।

८६--पतिव्रतामाहात्म्य में सावित्री उपाख्यान

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः ।
पतिव्रतानां माहात्म्यसबन्धांकथामपि ।१

पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कया मृत्युः पराजितः ।
नामसंकीर्तनं कस्याः कीर्तनीय सदा नरैः ।
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे ।२
वैलोम्यं धर्मराजोऽपि नैवाचरत्योषिताम् ।

पतिव्रतानां धर्मज्ञ ! पूज्यास्तस्यापि ताः सदा ।३
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
यथा विमोक्षितो भर्त्ता मृत्युपाशाद्यतः स्त्रिया ।४
मद्रे स शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा ।
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामताम् ।५
आराधयति सावित्रींलाक्षितोऽसौद्विजोत्तमैः ।
सिद्धार्थकैर्हूयमानांसावित्रींप्रत्यहंद्विजैः ।६
शतसंख्यैश्चतुर्थ्यान्तु दशमासागते दिने ।
काले तु दर्शयामास स्वान्तनुं मनुजेश्वरम् ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त में अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा ने देवेश से पूछा कि पतिव्रता नारी का क्या कैसा माहात्म्य है और इससे सम्बन्धित यदि कोई उपाख्यान हो तो उसके लिए भी पूछ लिया था। मनुदेवने कहा था—हे भगवान् ! पतिव्रता नारियों में कौन सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पतिव्रत बल के द्वारा मृत्युको भी पराजित कर दिया था। मनुष्यों को किसके परम शुभ नाम का कीर्त्तन सदा करना चाहिए ? हे भगवन् ! यह समस्त पापों के क्षय को करने वाला है। अब इसी को आप बतलाइए।१-२। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—धर्मराज भी योषित के त्रैलोक्य का आचरण नहीं किया करता है। हे पतिव्रताओं हे धर्म के ज्ञाता ! उसकी भी सदा वे पूज्या ही हुई है।३। यहाँ पर मैं आपको एक पापों के प्रणाश कर देने वाली कथा का वर्णन करता हूँ कि जिस प्रकार से एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता नारी के द्वारा अपना स्वामी मृत्यु के भी पाश से विमुक्त कर लिया गया था।४। पुरातन काल में मद्र देशों में एक शाकल राजा अश्वपति हुआ था। वह पुत्रहीन था तथा पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले उसने सर्व कामदा देवी को प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या की थी।५। द्विजोत्तमों के द्वारा लक्षित होते हुए उसने

सावित्री देवी की समाधना की थी। सिद्धार्थक द्विजों के द्वारा प्रतिदिन वह सावित्री देवी हूयमान हुई थी।६। वे द्विज शत संख्या वाले थे और जब दश मास व्यतीत हो गए तो चतुर्थी के दिन में समय आने पर उस मनुजेश्वर को सावित्री ने प्रत्यक्ष होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया था।७।

राजन् ! भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा।
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम्।८
एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव !।
जगामादर्शनं देवी यथा वै नृप ! चञ्चला।६
मालती नाम तस्यासीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता।
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः।१०
सावित्र्याहूतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा।
सावित्री च भवत्येषा जगाद नृपतिर्द्विजान्।११
कालेन यौवनं प्राप्तां ददौ सत्यवते पिता।
नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम्।१२
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः।१३
तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे।
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे।१४

सावित्री ने कहा—हे राजन् ! आप मेरे नित्य ही परम भक्ति करने वाले हैं। मैं भी अति प्रसन्न होकर तुमको एकसुता दूँगी। मेरे प्रसाद से दी हुई परम शोभन उस पुत्री को आप प्राप्त कर लेंगे।८। हे पार्थिव ! बस केवल इतना ही कहकर वह देवी प्रणाम करते हुए राजा के सामने से अदर्शन को प्राप्त हो गई थी जैसे विद्युत छिप जाया करती है।६। उस राजा की एक मालती नाम वाली पतिव्रता पत्नी थी उसने समय के सम्प्राप्त होने पर रूप लावण्य से साक्षात् सावित्री

देवी के सदृश तनया को प्रसूत किया था ।१०। समाहूत हुई सावित्री ने उसके ही रूप के समान उसे प्रदान किया था । राजा ने द्विजों से कहा था कि यह नाम से सावित्री ही होवे ।११। समय आने पर वह यौवन को प्राप्त हुई थी और उसके पिता ने सत्यवान नाम वाले वर को उस का दान कर दिया था । इसके उपरान्त देवर्षि नारदजी ने दीप्त तेज वाले राजा से कहा था कि यह नृप का आत्मज एक ही वर्ष में क्षीण आयु वाला हो जायगा । नराधिप! भली भाँति विचार करके ही कन्या को एक ही बार प्रदान किया जाया करता है ।१२-१३। तो भी उस राजा ने द्युमत्सेन के पुत्रको जो जो शुभ था अपनी कन्या सावित्री का दान कर दिया था । उस सावित्री ने भी नृपके मन्दिर में अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया था ।१४।

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा ।
शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशरयोर्वने ।१५

राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः ।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम् ।१६

चतुर्थेऽहनि मर्त्तव्य तथा सत्यवता द्विजाः ! ।
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा ।१७
चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने ।
चारुपुष्पफलाहारः सत्यवांस्तु ययौ वनम् ।१८
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा ।
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ।१९
चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् ।
वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशास्तथा ।२०
आश्वासयामास स राजपुत्रीं क्लान्तांवनेपद्मविशाल नेत्राम्।
सन्दर्शनेना द्रुमद्विजानान्तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ।२१
श्री नारदजी के वाक्य से दूयमान हृदय से उस सावित्री वन में

अपने स्वामी और श्वशुर की अत्यधिक शुश्रूषा करती थी ।१५। राज्य से भ्रष्ट-चक्षुओं के नष्ट हो जाने वाले भार्या से संयुत नराधिप उस राजपुत्री स्नुषा को प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं हुए थे ।१६। हे द्विजगण ! सत्यवान को आज से चौथे दिन में मरना है । उस समय में उस राजा सुता को श्वशुर ने अभ्यनुज्ञात किया था अर्थात् आज्ञा थी । उस समय में उस दिन के आने पर धर्म की ज्ञाता ने त्रिरात्र (व्रत) किया था । चरु पुष्प और फलों के आहार करने वाले सत्यवान् वन में चले गये थे । याचना के भङ्ग से भयभीत श्वशुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली वह सावित्री भी अपने स्वामीके साथ ही उस महान् वन को चले गयी थी । बहुत ही दुःखित चित्त से उस महान् भय को अन्दर ही छिपाती हुई उसने वन में भर्त्ता से और असदृश द्रुमों से पूछा था । वन में उसने परम क्लान्त-पद्म के समान विशाल नेत्रों वली उस राजपुत्री को नृवीर ने विपिन में मृगों तथा द्रुमों और द्विजों (पक्षियो) के सन्दर्शन के द्वारा समाश्वासन दिया था ।१७-२१।

८७—सावित्री उपाख्यान (१)

वनेऽस्मिन् शाद्वलाकीर्णं सहकारं मनोहरम् ।
नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्तं रतिवर्धनम् ।१
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम् ।
वसन्ती हसतीवायं ममेवायतलोचने ! ।२
दक्षिणे दक्षिणेनैतां पश्य रम्यां वनस्थलीम् ।
पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः ।३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः ।
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम् ।४

पश्चिमेन विशालाक्षि ! कर्णिकारैः सुपुष्पितैः ।
काञ्चनेन विभात्येषा वनराजी मनोरमा ।५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली ।
रम्या सा चारुसर्वाङ्गी कुसुमोत्करभूषणा ।६
मधुमत्तालिझंकारव्याजेन वरवर्णिनी ।
चापाकृष्टिं करोतीव कामः पार्श्वे जिघांसया ।७

सत्यवान् ने कहा—इस बन में जो शाद्वल से एकदम समाकीर्ण है मनोहर सहकार को तथा नेत्रों एवं घ्राण को सुखकर—रति के वर्धन करने वाले बसन्त को देखो ।१। हे आयत लोचनों वाली ! यह वसन्त इस वन में राग से समुत्पन्न और सुन्दर पुष्पों से समन्वित अशोक को देखकर मानों मेरा उपहास कर रहा है ।२। दक्षिण में दाहिनी ओर जलती हुई अग्नि की प्रभा के सदृश प्रभा वाले पुष्पित किंशुकों (ढाकके वृक्षों) से युक्त-परम रम्य इस वनस्थली को देखो ।३। वन की पंक्ति से निकला हुआ सुगन्धित कुसुमों के आमोद (गन्ध) से युक्त यह वायु हम दोनों के श्रम के नाश करने वाले दाक्षिण्य को कर रहा है ।४। हे विशालाक्षि ! पश्चिम दिशा में यह परम मनोहर वनों की राजि सुन्दर पुष्पों वाले कर्णिकारों से काञ्चन के वर्ण के तुल्य शोभित हो रही है।५ अति मुक्त लताओं के जाल से अवरुद्ध मार्गों वाली यह वनस्थली चारु (सुन्दर) सम्पूर्ण अङ्गों वाली तथा कुसुमों के उत्करों के भूषणों वाली वह रम्य ललना के तुल्य शोभा दे रही है।६। यह वर-वर्णिनी के समान ही है और पार्श्व में कामदेव मारने की इच्छा से चाप का आकर्षण मानों कर रहा है ।७।

फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता ।
विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली ।८
कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः ।
गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव ।९

पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनु सरिद्वने ।
कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः ।१०

मञ्जरी सहकारस्य कान्तावञ्चाग्रपीडिताम् ।
स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ।११

काकः प्रसूता वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना ।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ।१२

शुभाङ्गनिम्नमासाद्य दयितासहितो युवा ।
नाहारमपि चादत्ते कामाकान्तः कपिञ्जलः ।१३

कलविंकस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गं समास्थितः ।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि ! उत्कण्ठयति कामिनः ।१४

फलों आस्वाद से शोभित मुख वाली कोयलों की ध्वनियो से विशेष नाद वाली—बाक तिलक से संयुत वनस्थली तुम्हारी ही तरह शोभित हो रही है ।८। आम्र वृक्ष की शाखाओं के शिखर पर मंजरी के पराग से पिञ्जर वर्ण वाली कोकिल अपनी मधुर ध्वनि से ही अपने चेष्टितों से कुलीन की भाँति ही प्रकटता को प्राप्त हुआ करता है ।६। इस सरिता से समन्वित वन में यह महाकामी भौंरा पुष्पों के पराग से विशेष रूप से लिप्त अङ्गों वाली अपनी प्रिया के पीछे-पीछे गुञ्जार करता हुआ फूल से फूल पर जाया करता है । वन में युवा कोकिल बहुत प्रकार के पुष्पों से समन्वित होने पर भी कान्ता की भाँति अनुपीड़ित सहकार की मञ्जरी का आस्वाद लिया करता है ।१०-११। यह कौआ वृक्ष के अग्रभाग में प्रसूता और पक्षों से आच्छादित पुत्रिका वाली अपनी प्रिया काकी (कौआ की पत्नी) को एकाग्र चोंच से प्यार करता है ।१२। काम से समाक्रान्त हुआ-दयिता के साथ रहने वाला युवा कपिञ्जल शुभांग निम्न को प्राप्त कर आहार भी ग्रहण नहीं कर रहा है ।१३। हे विशालाक्षि ! अपनी प्रिया के उत्संग में संस्थित हुआ

रमण करने वाला कलविङ्क बारम्बार कामी पुरुष को उत्कण्ठित कर रहा है।१४।

वृक्षशाखां समारुढ: शुकोऽयं सह भार्यया ।
करेण लम्बयन् शाखां करोति सफलं शिर: ।१५
वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागत: ।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ।१६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलाकन्दरसंस्थितम् ।
ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहाभिन्नेव लक्ष्यते ।१७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुन: पुन: ।
प्रीतिमायातिच तया लिह्यमान: स्वकान्तया ।१८

उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम् ।
जन्तूद्धरणत: कान्तं सुखयत्येव वानरी ।१९
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम् ।
नखदन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा ।२०
शशक: शशकी चोभे संसुप्ते पीडिते इमे ।
सलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते ।२१

वृक्ष की शाखा पर अपनी प्रिय भार्या के साथ समारूढ़ यह शुक अपने कर से शाखाको लम्बित करता हुआ शिर को सफल करता है। ।१५। इस वन में माँस के स्वाद से तृप्त हुआ सिंह के चरणों के मध्य में लेटी हुई है ।१६। पर्वत की कन्दरा में संस्थित दो व्याघ्रों के जोड़े को देखो जिन दोनों के नेत्रों की प्रभाके प्रकाशन से गुहा भिन्न-सी हुई लक्षित हुआ करती है ।१७। यह हाथी अपनी जिह्वा के अग्रभाग से पुन: पुन: अपनी प्रिया को चाट रहा है। और अपनी कान्ता के द्वारा जिस समय में वह स्वयं लिह्यमान होता है तो उसकी परम प्रसन्नता हुआ करती है। यह वानरी गोद में मस्यक को रखने वाले तथा निद्रासे

अपहृत चेतना वाल अपने कान्त को जन्तुओं के उद्धरण के द्वारा सुखित ही किया करती है।१८-१६। यह मार्जार भूमि में पड़ी हुई और अपने उदर दिखाने वाली अपनी रम्य पत्नी का नाखून और दशनों से दंशन करता है किन्तु उसको किसी प्रकार की पीढ़ा नहीं पहुँचाता है।२०। ये शशक और शशकी दोनों पीड़ित होकर सो गये हैं। इनके गात्र और चरण संपृक्त हैं और कानों के द्वारा ही प्रकटता को प्राप्त होते हैं।२१।

स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रिय: ।
सम्भावयति तन्वङ्गीं मृणालकवलैः प्रियाम् ।२२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी ।
करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा ।२३
दृढाङ्गसन्धिर्महिष: कर्दमाक्ततनु वने ।
अनुव्रजति धावन्ती प्रियबद्धचतुष्कर: ।२४
पश्य चार्वङ्गि ! सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः ।
सभार्यमांहिपश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम् ।२५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम् ।
स्नेहार्द्रभावात्कर्षन्तं भर्त्तारं शृंगकोटिना ।२६
द्रागिमाञ्चमीरी पश्य सितवालामगच्छतीम् ।
अन्वास्ते चमर: कामी माञ्चपश्यतिगर्वित: ।२७
अतिपे गवयं पश्य प्रकुष्टं भार्यया सह ।
रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकंककुदि वारयन् ।२८

पद्मों मे आढ्य सरोवर में मदन प्रिया नाग अपनी तन्वङ्गी प्रिया को मृणाल के कवलों के द्वारा प्रणय का प्रदर्शन कर रहा है।२२। अपने बच्चों के पीछे अनुगमन करने वाली वाराही अपने कान्तके प्रोथ समुत्थानों से कान्त के ही मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हुई मुस्तों से कवल किया करती है।२३। वन में दृढ़ अङ्गों की सन्धि वाला

बीच में अक्त शरीर वाला और प्रियावक्ष चतुष्कर महिष धावन करती हुई महिषी के पीछे दौड़ लगा रहा है ।२४। हे चारु अङ्गों वाली ! तुम इस सारंग को देखो जो अपने कटाक्षों के विभावनों से भार्या के सहित एवं कौतूहल से युक्त मुझको देख रहा है ।२५। स्नेह के आर्द्र भाव से अपने सींग की नोंक से स्वामी का कर्षण करती हुई रोही अपने पीछे के पैर से मुख को खुजला रही है—इसे भी देखलो ।२६। बहुत ही शीघ्र इस सित बालों वाली और गमन न करती हुई चमरी को देखिए । यह कामी चमर इसके पीछे है तथा अत्यन्त गर्वित होता हुआ मुझको दिखता है ।२७। रोमन्थन करता हुआ ककुद पर कौए का निवारण करने वाले अपनी भार्या के साथ आतप में प्रकृष्ट इस गवय को देखलो ।२८।

पश्येमं भार्यया सार्द्धं न्यस्ताग्रचरणरणद्वयम् ।
विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया ।२९
हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम् ।
सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन् ।३०
सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः ।
करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरी ।३१
मया फलोच्चयः सुभ्रु ! त्वया पुष्पोच्चयःकृतः ।
इन्धनं न कृतं सुभ्रु ! तत्करिष्यामि सांप्रतम् ।३२
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता ।
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनि ।३३
एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया ।
दूर कान्त ! न कर्तव्यो बिभेमि गहने वने ।३४
ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं मेने च सातंमृतमेवराजन् ।३५

भार्या के साथ में रहने वाले—दोनों चरणों को आगे न्यस्त

करने वाले बेरों के खाने की कामना से विपुल बदरी स्कन्ध में दोनों चरणों को आगे रखकर स्थित इसको देखो ।२९। समुक्त इन्दु के बिम्ब की श्री को उद्वहन करते हुए भार्या के सहित सरोवर में सुनिर्मल विच-रण करते हुए हंस को देख लो ।३०। भार्या के सहित रहने वाला यह चक्रवाक पक्षी जो कि इस कमलाकर (तालाब) के मध्य में गमन कर रहा है । वह अपनी सुन्दरी कान्ता को सुन्दर पुष्पों वाली पद्मिनी के समान कर रहा है ।३१। हे सुभ्रु ! मैंने तो फलों का उच्चय किया है और तुमने पुष्पों का उच्चय किया है किन्तु हे सुभ्रु ! हममें से किसी ने भी ईंधन एकत्रित नहीं किया है सो अब मैं उसे करूँगा ।३२। हे भामिनि ! तुम इस सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष की छाया में समा-श्रित होकर रहो और एक क्षण के लिए मेरे आने की प्रतीक्षा करना ।३३। सावित्री ने कहा—मैं जैसा भी आप कहते हैं वही करूँगी । आप मेरी दृष्टि के ही मार्ग में रहेंगे अर्थात् इतनी दूरी पर ही रहिए कि मैं आपको देखती रहूँ । हे कान्त । आपको अधिक दूर नहीं जाना चाहिए । मैं गहन वन में डरती हूँ ।३४। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके पश्चात् उसने उस वनमें काष्ठों को एकत्रित किया था और उस समय में राजसुता के सामने ही किया था । हे राजन् । उस सर के समीप में ही उस समय में उस सावित्री ने उसे मृत ही मान लिया था ।३५।

==

८८—सावित्री उपाख्यान (२)

यस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञ शिरसि वेदना ।
स वेदनार्तः सङ्क्रम्य भार्यां वचनमब्रवीत् ।१
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ।

तमश्च प्रविशमीव न च जानामि किञ्चन ।२
त्वदुत्संगे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् ।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिवः ।३
तदुत्संगे शिरः कृत्वा निद्रयाविललोचनः ।
पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ।४
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम् ।५
विद्युल्लतानिबद्धांगं सतोयमिव तोयदम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलैश्च विराजितम् ।६
हारभारार्पितोरस्कं तथांगदविभूषितम् ।
तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—काष्ठ का पाटन करते हुए उसके शिर में बड़ी वेदना समुत्पन्न हो गई थी। उस समय में उस वेदना से समुत्पीड़ित होकर अपनी भार्या सावित्री के समीप में आकर उससे यह वचन बोला—बिना आयास वाले इस काष्ठ-सञ्चय के कार्य करने से मेरे शिर में वेदना समुत्पन्न हो गई है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि किसी अन्धकार में प्रवेश कर रहा हूँ—मैं कुछ भी नहीं जान पा रहा हूँ कि क्या कारण है। अब तो मैं तुम्हारी गोद में अपना शिर रखकर सोना चाहता हूँ। वह पार्थिव उस राजपुत्री सावित्री से इस प्रकार से कह कर सो गया था।१-३। उसके उत्संग में अपना मस्तक रखकर वह निद्रा से आविल (मलिन) लोचनों वाला हो गया था। इस के अनन्तर उस महाभागा राज कन्या पतिव्रता ने स्वयं ही उस स्थल पर समागत हुए धर्मराज को देखा था जो नील कमल के दलके समान श्याम वर्ण वाला—पीताम्बर धारी—विद्युल्लता से निबद्ध अङ्ग वाले जल से युक्त मेघ के सदृश था तथा सूर्य के समान वर्ण वाले किरीट और कुण्डलों से शोभित था। वह धर्मराज उरास्थल में हारों के भार

से भूषित था तथा भुजाओं में अङ्कुर धारण किए हुए था और उसके पीछे काल मृत्यु स्वयं चला आ रहा था ।४-७।

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुष पाशबद्धं वशंगतम् ।८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा ।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम् ।९
अनुवव्राज गच्छन्तन्धर्मराजमतन्द्रिता ।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ।१०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते ।११
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ।१२
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ।१३
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते ।१४

वह धर्मराज उस स्थल पर आकर सत्यवान् के शरीर से उस समय में अंगुष्ठ मात्र जो लिङ्ग शरीरधारी पुरुष था उसको पाशबद्ध करके अपने वश में कर खींचकर शीघ्रता से दक्षिणा दिशा की ओर उसी समय चल दिया था। वह वरारोहा सावित्री भी उस अपने स्वामी को जीवित रहित देखकर अतन्द्रित होती हुई उसी के पीछे अर्थात् गमन करने वाले धर्मराज के पीछे-पीछे चल दी थी। इसके उपरान्त वह हाथ जोड़कर काँपते हुए हृदय से बोली—।८-१०। यह जीवात्मा माता की भक्ति से उस लोक को—पिता की भक्ति से मध्यम को और गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है। उस

पुरुष ने सभी धर्मों का समादर कर लिया है जिसने इन तीनों ऊपर बताये हुए धर्मों को पूर्ण कर लिया है। जिसने इन तीनों का आदर नहीं किया है उसकी समस्त अन्य क्रियायें बिल्कुल ही फलहीन हुआ करती हैं। जब तक ये तीनों ही जीवित हैं तब तक अन्य किसी का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो प्रिय के हित में रत है उसे उनकी नित्य ही शुश्रूषा करनी चाहिए। उनके अनुपरोधसे जब भी पारतन्त्र्य का आचरण करे—वह सब उनको मन वचन और कर्म के द्वारा निवेदन कर देना चाहिए। पुरुष का इन तीनों में भी पूर्ण कृत्य स्थित रहा करता है।११-१४।

कृतेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मो न तेभ्योऽपि हि उच्यते च।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।१५
गुरुपूजारतिर्भक्त त्वञ्च साध्वी पतिव्रता।
विनिवर्तस्व धर्मज्ञे ! ग्लानिर्भवति तेऽधुना।१६
पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः।१७
मितन्ददति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत्।१८
नीयते यत्र भर्त्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम !।१९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव ! न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्।२०
मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याक्षरदूषिता।
मुहूर्त्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता।२१

कृत काम से अब तुम अति शीघ्र निवृत्त हो जाओ उनके लिए भी धर्म नहींहै—यह कहा जाताहै। मेरा उपरोध और तुम्हारा क्लम(श्रम) होगा। अब इसी कारण से मैं बोलता हूँ।१५। आप तो गुरुवर्ग की पूजा में रति वाली—भक्त—साध्वी और परम पतिव्रता है। हे धर्मज्ञे

यहाँ से आप वापिस लौट जाइए। अब आपको बहुत ग्लानि हो रही है ।१६। सावित्री ने कहा—स्त्रियों का परम देवता पति ही होता है और पति ही परायण होता है। अतएव साध्वी स्त्री के द्वारा प्राण धनेश्वर पति का सर्वदा अनुगमन करना चाहिए ।१७। स्त्री को उसका पिता परिमित ही दिया करता है—भाई और सुत भी स्त्री को परिमित ही दिया करते हैं। अपरिमित का दाता अपने स्वामी का पूजन कौन सी स्त्री नहीं करेगी? ।१८। हे सुरोत्तम। जहाँ पर मेरे स्वामी को ले जाया जा रहा है अथवा स्वयं आप जहाँ पर जा रहे हैं, मुझको भी यथा शक्ति वहीं पर जाना चाहिए ।१९। जब मैं मेरे पति को लेकर गमन करने वाले आपका हे देव! अनुगमन नहीं कर सकूँगी तो मैं अपने भी जीवन का त्याग कर दूँगी ।२०।जो कोई भी मण्डन के योग्य मनस्विनी स्त्री जब वैधव्य के अक्षरों से दूषित होकर अमण्डित हो जाती हैं तो क्या वह एक मुहूर्त भर भी जीवित रहेगी? ।२१।

पतिव्रते ! महाभागे ! परितुष्टोऽस्मि ते शुभे ! ।
विना सत्यवतः प्राणैर्वरं वरय माचिरम् ।२२
विनष्टचक्षुषोराज्यञ्चक्षुषा सह कारय ।
च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ ! श्वशुरस्य महात्मनः ।२३
दूरे पथं गच्छ निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि ।२४

यमराज ने कहा—हे पतिव्रते! हे महान् भाग वाली। हे शुभे! मैं तुम से बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ। अब तुम सत्यवान् के प्राणों के बिना अन्य कोई भी वरदान मुझसे माँगलो और अधिक विलम्ब मत करो ।२२। सावित्री ने कहा—हे धर्मज्ञ! विनष्ट नेत्रों वाले मेरे महान् आत्मा वाले श्वशुर की जिनका कि राज्य च्युत हो गया है अब आप उनको आँख के सहित पुनः राज्य प्राप्त करा दीजिए ।२३। यमराज ने कहा—हे भद्रे! दूर मार्ग में तुम चली आओ और वापिस

लौट जाओ। जो आपने कहा है वह सभी कुछ हो जायगा। अब मेरी ओर से रोक होगी और तुमको परिश्रम होगा इसीलिए मैं तुमसे यह कह रहा हूँ।२४।

==

८९—सावित्री उपाख्यान (३)

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे।
सतान्तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम ! ।१
साधूनां वाप्यसाधूनां सन्त एव सदागतिः।
नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः।२
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम्।
अकारणं जगद्वैरिखलेभ्यो जायतेयथा।३
सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा।
तथाऽसन्तोऽपि सन्त्यज्य परपीडासु तत्पराः।४
त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणावद्यस्य कारणात्।
परोपघातशक्तस्तं परलोकन्तथा सतः।५
निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः।
असतामुपघाताय राजानं ज्ञातवान् वयम्।६
नरान् परीक्षयेद्राजा साधून् सम्मानयेत्सदा।
निग्रहञ्चासतां कुर्यात्सलोके लोकजित्तमः।७

सावित्री ने कहा—सत्पुरुषों के साथ समागम होने पर दुःख कहाँ है और क्लम भी कहाँ है। हे सुरोत्तम ! आपके समीप में जो कि सत्पुरुष हैं मुझे तो बिल्कुल भी ग्लानि नहीं होती।२५। साधु पुरुष हो अथवा असाधु जन हों इन सबकी सन्त ही सदा गति हुआ करते हैं अर्थात् सबका उद्धार सन्त ही किया करते हैं। जो असन्त हैं वे न तो

सत्पुरुषों का—न असत्पुरुषों का और अपने आपका ही उद्धार किया करते हैं असन्तोंमें उद्धार करने की कोईभी क्षमता ही नहीं हुआ करती हैं ।२। विष—अग्नि—सर्प और शस्त्र से उतना भय नहीं होता है जैसा बिना ही कारण के इस जगत् के बैरी खलों से भय उत्पन्न हो जाया करता है । सन्त पुरुष तो अपने प्राणों का भी परित्याग करके सदा दूसरों के अर्थ को किया करते हैं उसी भाँति असन्त पुरुष भी प्राणों तक का परित्याग कर दूसरोंको पीड़ा देने में परायण रहा करते हैं ।३-४। यह लोक जिसके कारण से प्राणों को तिनके के समान त्याग देता है । उसी प्रकार से सत्पुरुष जो परार्थों के उपघात में समर्थ होते हैं वे परलोक को भी त्याग दिया करते हैं।५। उसी प्रकार से इस जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी ने निकाय—निकायों में असत्पुरुषों के उपघात के लिए स्वयं ही राजा को ज्ञात किया है।६। राजा का कर्त्तव्य है कि वह नरों की परीक्षा करे और सदा साधु पुरुषों का सम्मान करना चाहिए । जो राजा असत्पुरुषों का निग्रह किया करता है और उसको ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उसका यह कर्त्तव्य भी है वह इस लोक में लोकों का परम श्रेष्ठ जेता होता है ।७।

निग्रहेणासतां राजा सताञ्च परिपालनम् ।
एतावदेव कर्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना ।८
राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते ।
असतां निग्रहादेव सताञ्च परिपालनात् ।९
राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् ।
तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे ।१०
जगत्तु धार्यते सद्भिः सतामग्र्यस्तथाभवान् ।
तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमादेव ! न विद्यते ।११
तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसंगतैः ।
विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम् ।१२

सहोदराणां भ्रातॄणां कामयामि शतं विभो ! ।
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ।१३

तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ।
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ।१४

असतों का निग्रह और सत्पुरुषों का परिपालन करने वह वस्तुतः राजा कहलाने के योग्य होता है जो स्वर्ग की प्राप्ति करने का इच्छुक है उस राजा का यही इतना कर्त्तव्य होता है । हे जगतीपते । लोकों में राजा का यही कृत्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । असतोंका निग्रह और सतोंके परिपालन का कर्त्तव्यही तो राजाओं का कार्य हुआ करता है । राजाओं के द्वारा भी जो शान्ति नहीं होता है उन असतों के सबके शासन करने वाले फिर आप होते हैं । इसी कारण से मुझे तो समस्त देवों से भी अधिक देव आप ही प्रतीत हो रहे हैं ।८-१०। यह जगत् तो सत्पुरुषों के द्वारा ही धारण किया जाता है और उन सत्पुरुषों में आप सब प्रधान हैं । इसी कारण से आपके पीछे अनुगमन करने वाली मुझको हे देव ! कोई भी क्लम नहीं होता है । यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि । तुम्हारे इन धर्मसंगत वचनों से मैं तुमसे परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ । सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर अन्य जो भी आप चाहें वह वरदान मुझसे माँगलो । विलम्ब मत करो ।११-१२। सावित्री ने कहा—हे विभो । मैं अपने सौ सहोदरों के प्राप्त करने की कामना रखती हूँ । मेरे पिता सन्तान हीन हैं सो वे पुत्रों के लाभ से प्रसन्न हो जावें । फिर यमराज ने उस सावित्री से कहा—हे अनिन्दिते । अब तुम जिस मार्ग से आई हो वापस चली जाओ और अपने स्वामी के और्ध्व देहिक कार्यों के करने में यत्न करो ।१३-१४।

नानुगन्तुमयं शक्यस्तया लोकान्तरं गतः ।
पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तं मम यास्यसि ।१५

गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे ! तथा सत्यवतो महत् ।
पुण्यं समर्जितं येन न याम्येनमहं स्वयम् ।१६

एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ! ।१७

तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने ।
पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे ! ।१८

तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ! ।
पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ।१९

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्तेनात्यवमन्तव्या ब्राह्मणा न विशेषतः ।२०

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ।२१

दूसरे लोक में गये हुए इसका अनुगमन तुम नहीं कर सकते हो। तुम पतिव्रता हो इसी कारण मुहूर्त्त मात्र में मेरे साथ चल सकोगी। हे भद्रे ! गुरुओं की सेवा से इस सत्यवान् ने महान् पुण्य का अर्जन किया है और इसी कारण से मैं स्वयं ही इसको ले जा रहा हूँ ।१५-१६। हे वर्वर्णिनि! विशेष ज्ञान वाले पुरुषका इतना ही कर्त्तव्य करता है कि वह माता-पिता और गुरु की शुश्रूता करता रहे ।१७। इस सत्यवान् ने सदा वन में इन तीनों को परम सन्तुष्ट किया है और समर्चित किया है। इसने स्वर्ग को जीत लिया है और तुमने भी ऐसा ही चिर-काल तक हे शुभे ! किया है ।१८। हे शुभे ! तपश्चर्या से—ब्रह्मचर्य—अग्नि शुश्रूषा से तथा गुरु वर्ग की सेवा से पुरुष स्वर्ग में आया करते हैं ।१९। आचार्य-पिता माता-पूर्वज माता और विशेष रूप से ब्राह्मण इनका आर्त्त दशा में भी पुरुष को कभी अपमान नहीं करना चाहिए। ।२०। आचार्य साक्षात् ब्रह्मा की मूर्त्ति है—पिता प्रजापति की मूर्त्ति

है—माता पृथिवी की मूर्ति है और भाई तो अपनी आत्मा की ही मूर्ति होता है।२१।

जन्मना पितरौ क्लेशं स हेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।२२
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते।२३
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते।
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।२४
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव च त्रयोवेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः।२५
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी।२६
त्रिषु प्रमाद्यते तेषु त्रीन् लोकान् जयते गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते।२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे। भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमःस्यात् तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।२८

मनुष्यों के समुत्पन्न होने में उनके माता-पिता जन्म से ही पूर्ण क्लेश को सहा करते हैं उस क्लेश की निष्कृति मनुष्य सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता है।२२। अतएव मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य होता है कि उनका नित्य ही उसे प्रिय करना चाहिए तथा जो आचार्य हो उस का भी सर्वदा प्रिय करे। इन तीनों के तुष्ट होने पर ही मनुष्य का सभी प्रकार का ताप समाप्त हो जाया करता है। वे तीनों ही उसके तीन लो हैं—ये तीनों उसके तीन आश्रम हैं—वे तीनों ही तीन वेद हैं तथा ये ही तीन मनुष्य की तीन अग्नियाँ हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि—माता दक्षिणाग्नि और गुरु आह्वनीय अग्नि है। ये ही सबसे बड़ी तीन अग्नियों वाला वह माना जाता है। इन तीनों के कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो इस कर्त्तव्य का पालन करता है वह गृही तीनों

को जीत लिया करता है और अपने शरीर की कान्ति से वह दीप्यमान होता हुआ देव के ही समान दिवलोक में आनन्द अनुभव किया करता है।२३-२७। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! कृत काम से निवृत हो जाओ जो तुमने कहा है वह सम्पूर्ण हो जायगा। मेरी ओर से उपरोध होगा और तुमको क्लम होगा। इसी से तुमसे यह मैं बोलता हूं।२८।

९०—सावित्री उपाख्यान (४)

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ। कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा।
त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम्।१
धर्मार्जिनन्तथा कार्यं पुरुषेणाविजानता।
तल्लाभः सर्वलाभेभ्यो सदा देव विशिष्येते।२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः धनम्।
धर्महीनस्य कामार्थौ बन्ध्यासुतसमौ प्रभो।३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा।
धर्म एकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचन गामिनम्।४
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विपद्यते।५
धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः।
क्रियासौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते।६
ब्रह्मेन्द्रोपशर्वेन्दुयनार्काग्न्यनिलाम्भसाम्।
वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः।७
धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक।
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुखानि च।८

हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म के अर्जन करने में ग्लानि और क्लम क्यों

होगा ? आपके चरणों की मूल सेवा ही परम धर्म का कारण है ।१। विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष का उसी भाँति से धर्म का अर्जन करना चाहिए । हे देव ! जबकि उस धर्म का लाभ सभी प्रकार के लाभों से विशिष्ट हुआ करता है ।२। धर्म, अर्थ और काम यही त्रिवर्ग मनुष्य जन्म का परम फल होता है । हे प्रभो ! जो धर्म से हीन पुरुष है उसके काम और अर्थ वन्ध्या के सुतों के ही समान हुआ करते हैं ।१३। धर्मसे अर्थ तथा काम और धर्मसे दोनों लोक होते हैं । जहाँ परभी यह गमन करता है उसके पीछे एक धर्म ही अनुगमन किया करता है ।४। अन्य सभी कुछ शरीर के ही साथ में नाश को प्राप्त हो जाया करता है । यह जन्तु एक ही अकेला समुत्पन्न हुआ करता है और एक ही अकेला मृत्यु को प्राप्त होता है ।५। जब यह मृत्युगत होता है तो उस समयमें केवल एक मात्र धर्म ही उसका अनुगमन किया करता है । उस समयमें न तो कोई मित्र साथ में जाया करताहै और न बान्धव ही उसके साथ जाते हैं । क्रिया, सौभाग्य और रूप लावण्य ये सभी कुछ धर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाया करते हैं ।६। ब्रह्मा, इन्द्र–उपेन्द्र–शर्व—इन्दु—यम—अर्क—अग्नि—अनिल—जल—वसु–अश्विनी कुमार और धनद आदि के जो समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले लोक हैं इनकी प्राप्ति मनुष्य धर्मके ही द्वारा किया करता है । हे पुरुषों के अन्त करने वाले ! धर्म से ही मनोहर द्वीप और सुन्दर सुख देने वाले धनों को यह पुरुष प्राप्त करता है ।७-८।

प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिका: ।
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानि यानि च ।६
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठन्तथा नरैः ।
विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरस: शुभा: ।१०
तैजसानि शरीराणि सदा पुण्यवताफलम् ।
राज्यनृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेप्सिता ।११

संस्काराणि च मुख्यानि फलं पुण्यस्य दृश्यते ।
रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च ।१२
चामराणि सुराध्यक्ष ! भवन्ति शुभकर्मणाम् ।
पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना ।१३
भार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा ।
जलशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिःस्वनैः ।१४

मनुष्य धर्म के द्वारा ही नरगण्डिका को प्राप्त किया करते हैं और नन्दन और मुख्य देवों के जो उद्यान हैं उनमें चले जाया करते हैं। पुण्य के द्वारा ही इन सबकी प्राप्ति होतीहै तथा मनुष्यों के द्वारा नाक-पृष्ठ को भी प्राप्त किया जाता है। विचित्र विमान तथा परम शुभ अप्सराएँ और तैजस शरीर आदि सब सदा पुण्य वालों का ही फल हैं। राज्य-नृपतियोंके द्वारा पूजा-ईप्सित काम सिद्धि एवं मुख्य संस्कार यह सभी पुण्य का ही फल दिखाई देता है। हे सुराध्यक्ष, सावर्ण एवं वैदूर्य के दण्ड जो सूर्य के ही समान हैं और चामर इन सबकी प्राप्ति होना शुभ कर्मों का ही फल होता है। पूर्ण चन्द्र की आभा वाले और रत्नांशुक विकाशी छत्र के धारण करने का अवसर मनुष्य पुण्य कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया करता है। जयकार बतलाने वाले शंखों के स्वर-समूह से तथा सूतों और मागधों की ध्वनियों से समन्वित भी मनुष्य पुण्य कर्म से ही होना है ।९-१४।

वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणाः ।
वरान्नपानं पीतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ।१५
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः ।
रूपौदार्यगुणोपेताः स्त्रियश्चातिमनोहरा ।१६
वासः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणः ।
सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः ।१७
वहन्ति तुरंगा देव नरं पुण्येन कर्मणा ।

तस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दमः क्षमा ।१८
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुभरणं शुभम् ।
स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवासः सुरार्चनम् ।१९
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ।२०
तस्माद्धर्मः सदा कार्यो नित्यमेव विजानता ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य च वा कृतम् ।२१

भृङ्ग के सहित बरासन भी पुण्य कर्म का फल होता है। श्रेष्ठ अन्न—पान—पीत—भृत्य—माल्य और अनुलेपद रत्न और वस्त्र इस प्रकार की मुख्य वस्तुएं प्राप्त होना भी परम पुण्य कर्म का फल होता है। रूप लावण्य एवं अनेक सद्गुणों से सम्पन्न अतीव मनोहर स्त्रियाँ —बड़े महलों में निवास शुभ कर्म वालों को ही प्राप्त होता है। हे देव ! सुवर्ण की किंकणी से मिश्रित चामर एवं आपीड़ के धारण करने वाले तुरग मनुष्य को पुण्य कर्म से वहन किया करते हैं। उस पुरुष के द्वारा–यजन–तप–दान–क्षमा–ब्रह्मचर्य सत्य–शुभ तीर्थानुभरण—स्वाध्याय–साधुसेवा—सहवास—सुरों का अर्चन—गुरुवर्ग की सुश्रूषा—ब्राह्मणों का अभ्यर्चन—इन्द्रियों के ऊपर विजय—मत्सरता का अभाव इन सबकी प्राप्ति पुण्य कर्म के द्वारा हुआ करती है।१५-२० इस कारण से ज्ञानवान पुरुषों को नित्य ही धर्म का समाचरण करना चाहिए क्योंकि मृत्यु इसके कृत तथा अकृत की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं किया करता है ।२१।

बाल एवाचरेद्धर्ममनित्यं देव ! जीवितम् ।
कोहि जानाति कस्याद्य मृत्युरेवागमिष्यति ।२२
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् ।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ! ।२३
युवत्वापेक्षया बालोवृद्धत्वापेक्षया युवा ।

मृत्योरुत्सङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते ।२४
तत्रापि विण्ड (न्द) तस्त्राणं मृत्युना तस्यका गतिः ।
न भयं मरणञ्चैव प्राणिनामभयं क्वचित् ।
तत्रापि निर्भया: सन्तः पुरुषाः सुकृतकारिणः ।२५
तुष्टोऽस्मितेविशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसङ्गतैः ।
विना सत्यवतः प्राणान् वरंवरयमाचिरम् ।२६
वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम् ।
अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते ।२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे । भविष्यतीदं सकलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमःस्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।२८

हे देव । बालक को ही नित्य धर्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि यह जीवित अनित्य है । कौन जानता है कि किसकी मृत्युआज ही आ जायगी । इस लोक के देखते ही हुए मौत के सामने स्थित रहा करती है । हे सुरोत्तम । देव के समान इसका चरित होता है—यही महान आश्चर्य की बात है । युवावस्थामें स्थित की अपेक्षा बालक और वृद्धता की अपेक्षा युवा इस मृत्यु की गोद में समारूढ़ हो रहा है । जो एकदम स्थविर है वह फिर किस व्यवस्था की अपेक्षा किया करता है । ।२२-२४। उस दशा में भी मृत्यु के द्वारा त्राण की प्राप्ति करने वाले उसकी क्या गति होगी । मरण भय नहीं है । प्राणियों को अभय कहा है । जो सुकृत के करने वाले हैं वे वहाँ पर भी सदा सन्त पुरुष निर्भय होते हैं ।२५। यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि । तुम्हारे धर्म से संगत वचनोंसे संगत वचनोंसे अत्यन्त ही परितुष्ट हो गया हूँ किन्तु सत्यवान् के प्राणोंको छोड़कर शीघ्रही मुझसे कोई सा वरदान माँगले । सावित्री ने कहा—हे भगवान् । आपसे द्वारा दिये हुए सौ औरस पुत्रों का वरदान मैं चाहती हूँ क्योंकि जो सन्तान से हीन है उसकी लोकों में कोई भी गति नहीं है । यमराज ने कहा—हे भद्रे ? अब तेरा काम पूर्ण हो गया

है तुम वापिस लौट जाओ । जो भी तुमने कहा है वह सभी हो जायगा साथ चलने के मेरा उपरोध (रुकावट) है और तुमको व्यर्थ श्रम होता है । इसी से मैं तुमसे यह बोल रहा हूँ ।२६-२८।

९१–सावित्री उपाख्यान (५)

धर्ममर्मविधानज्ञ । सर्वधर्मप्रवर्त्तक ।
त्वमेव जगतो नाथ: प्रजासंयमनोतम: ।१
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजा: ।
तस्माद्वै प्रोच्यसे देव । यम इत्येव नामत: ।२
धर्मेणेमा: प्रजा: सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो ।
तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते ।३
सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जना: ।
त्वत्सकाशमृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे ।४
कालं कलार्द्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्वदर्शिभि: ।५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् ।
तस्मात्त्वमन्तक: प्रोक्त: सर्वदेवैर्महाद्युते ।६
विवस्वतस्त्वं तनय: प्रथमं परिकीर्तित: ।
तस्माद्वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यसे ।७

सावित्री ने कहा—हे सब धर्मों के प्रवर्त्तक । आप तो धर्म के मर्म का जो विधान है उसके ज्ञाता हैं और आप ही इन जगतों के नाथ हैं तथा प्रजाओं का संयमन करने वाले यम हैं ।१। कर्मों के अनुरूप जिस कारण से आप प्रजाओं का यमन किया करते हैं हे देव । इसी कारण से 'यम'—इस नाम से आपको पुकारा जाया करता है । हे

प्रभो ! क्योंकि धर्मके द्वारा इन समस्त प्रजाओं का आप रञ्जन किया करते हैं इसी से सत्पुरुषों के द्वारा आप 'धर्मराज'—इस नाम से पुकारे जाया करते हैं ।२-३। जब मनुष्य सुकृत और दुष्कृत इन दोनों को आगे रखकर मृत्युगत होकर आपके समीपमें जाया करते हैं इसी कारण से आपको 'मृत्यु'—इस नाम से कहा जाया करता है। काल की कलाएँ कलन करते हुए सबके मध्य में आप स्थित रहा करते हैं इसी कारण से तत्वदर्शियों के द्वारा 'काल'—यह नाम आपका कहा जाता है। क्योंकि सभी प्राणियों के आप महान् अन्त कर देने वाले हैं इसी कारण से महाद्युते ! समस्त देवों के द्वारा आपको अन्तक कहा गया है। आप विवस्वान के पुत्र प्रथम कहे गये हैं इसीलिए समस्त लोकों में 'वैवस्वत'—इस नाम से आपको कहा जाता है ।४-७।

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभञ्जनम् ।
तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणिहरेति वै ।८
तव प्रसादाद्देवेश ! संकरो न प्रजायते ।
सतां सदा गतिर्देव ! त्वमेव परिकीर्तितः ।९
जगतोऽस्य जगन्नाथ ! मर्यादापरिपालकः ।
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ ! दुःखितांशरणागताम् ।
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ।१०
स्तवेन भक्त्या धर्मज्ञे ! मया तुष्टेन सत्यवान् ।
तव भर्ता विमुक्तोऽयं लब्धकामा व्रजाबले ! ।११
राज्यं कृत्वा त्वया सार्द्धं वत्सराणीतिपञ्चकम् ।
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सह रंस्यते ।१२
त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्यवान् जनयिष्यति ।
ते चापिसर्वे राजानःक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ।१३
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्राख्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ।१४

आयुष्य में कर्म के क्षीण होने पर आप मनुष्य को बलपूर्वक ग्रहण किया करते हैं उस समय में लोक में आप 'सर्व प्राणिहर' इस नाम से कहे जाते हैं । हे देवेश! आपके प्रसाद से सङ्कर नहीं होताहै । हे देव! सत्पुरुषों की सदा आप ही गति कीर्त्तित किये गये हैं । हे जगन्नाथ ! आप इस जगत् के मर्यादा के परिपालक हैं । हे देवों में परमश्रेष्ठ ! शरणागति में समागत दु:खिता मेरी रक्षा करो । इस राजपुत्र के माता पिता इसी भाँति परम दु:खित हो रहे हैं ।७-१०। यमराज ने कहा— हे धर्मज्ञे ! तेरे इस स्तव से और भक्तिभाव से तुष्ट हुए मेरे द्वारा तेरा स्वामी सत्यवान् छोड़ दिया गया है । हे अबले ! अबलब्ध काम वाली तुम यहाँ से चली जाओ । यह अब तेरे साथ राज्य का सुख कर पिचासी वर्ष तक जीवित रहकर फिर अन्तमें स्वर्ग पर समारोहण कर देवों के साथ रमण करेगा । वह सत्यवान् तुममें सौ पुत्र समुत्पन्न करेगा । वे भी सब देवताओंके समान क्षत्रिय राजा लोग होंगे। तुम्हारे नाम से पुत्रों की आख्या वाले प्रमुख एवं शाश्वत होंगे और तुम्हारी माता में तुम्हारे पिता से भी एक सौ पुत्र उत्पन्न होंगे ।११-१४।

मालव्यां मालवानामशाश्वता:पुत्रपौत्रिण: ।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमा: ।१५
स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे ! कल्पमुत्थाय यस्तु माम् ।
कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति ।१६
एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा ।
अदर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्द्धं सह मृत्युना च ।१७

मालवो के नाम वाले मालवी में शाश्वत पुत्र एवं पौत्र होंगे । वे वेदों के समान उपमा वाले क्षत्रिय तेरे भाई होंगे । हे धर्मज्ञों ! जो पुरुष प्रात:कालमें उठकर इस स्तोत्रके द्वारा मेरा कीर्त्तन करेगा उसकी भी दीर्घ आयु हो जायगी ।१५-१६। मत्स्य भगवान् ने कहा—इतना

कहकर महात्मा भगवान् यमराज उस राजपुत्र को छोड़कर वहीं पर काल और मृत्यु के साथ ही अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ।१७।

==

६२-सावित्री उपाख्यान (६)

सावित्री तु ततः साध्वी जगामवरवर्णिनी ।
यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान् मृतः ।१
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः ।
कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे ।२
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः ।
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ! ।३
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् ।
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ।४
न जानामि वरारोहे ! कश्चासौपुरुषःशुभे ।
वनेऽस्मिन् चारुसर्वाङ्गि ! सुप्तस्य च दिनंगतम् ।५
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया ।
अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु ! गमने त्वरिता भव ।६

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर वर वर्णिनी साध्वी जैसे-२ मार्ग से गयी थी और जहाँ पर मृत सत्यवान् था वैसे ही वह चली आयी थी । उसने अपने स्वामी को प्राप्त करके जिसका शिर उसके गोद में था इस तरह से उसके शिर को रखकर दिवाकर के लम्बमान होने पर उस तन्वङ्गी ने उस स्थल पर प्रवेश किया था ।१। ।२। सत्यवान् का जीवात्मा धर्मराज से धीरे-धीरे निर्मुक्त होकर हे नराधिप ! उसने नेत्रोंका उन्मीलन कियाथा और वह प्रस्फुरित हुआ ।

इसके पश्चात् प्रत्यागत प्राण वामा वह होकर अपनी प्रियासे यह वचन बोला—वह पुरुष कहाँ चला गया जो मुझको भी आकर्षित कर रहा है। हे वरारोहे! हे शुभे! मैं नहीं जानता हूँ यह कौन पुरुष था। हे चारु-सर्वाङ्ग! आज इस बन के सोते हुए मुझको पूरा दिन व्यतीत हो गया है। मैंने उपवाससे परिश्रान्त आपको भी दुःखित किया है। हमारे बुरे हृदय से आज हमारे माता-पिता भी बहुत दुःखित हुए हैं। हे सुभ्रु! मैं माता-पिता के दर्शन करना चाहता हूँ अब गमन करने में शीघ्रता वाली हो जाओ।३-६।

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो!।
आश्रमन्तु यास्याव: श्वशुरौ हीनचक्षुषौ।७
यथा वृत्तञ्च तत्रैव शृणु वक्ष्ये यथाश्रमे।
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ।८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा।
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपति:।९
द्युमत्सेन: सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव!।
प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषाञ्चैवाथ कर्शिताम्।१०
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनै:।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह कानने।११
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यव्रता तदा।
ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुङ्गवम्।१२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दन:।
अभिवाद्य तत: सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान्।१३
उवास तत्र मां रात्रिमृषिभि: सर्वधर्मवित्।
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता।१४

सावित्री देवी ने कहा—हे प्रभो! भगवान् सूर्य के अस्तता को प्राप्त होने पर यदि आपको पसन्द हो तो आश्रम में चलेंगे सास श्वसुर

तो दोनों हीन नेत्रों वाले हैं। जिस प्रकार से जो कुछ हुआ है वह सब आश्रम में ही बतलाऊँगी उसका श्रवण करना। इस तरह से अपने भर्त्ता से इतना मात्र कहकर स्वामीके साथही उसी समय में वह सावित्री चली गयी थी।७-८। वह नृपात्मजा भर्त्ता के आश्रम में प्राप्त हो गई थी। इसी समय में नेत्रों को प्राप्त करने वाला वह महीपति द्युमत्सेन भार्या के सहित हे भार्गव! परितृप्त हुआ था क्योंकि उसने अपने प्रिय पुत्र को और अपनी परम कृश पुत्र वधू को देखा था। उसने राजा वहाँ पर तपस्वियों के द्वारा समाश्वस्त होता हुआ स्नुषा के साथ वनमें आये हुए पुत्र को देखा था। उस वर आरोह वाली सावित्री ने उस समय में सत्यवान के साथ वहाँ आकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ भार्या के सहित राजा की वन्दना की थी। तब वह राजनन्दन सत्यवान् अपने पिता के द्वारा भली भाँति आलिङ्गन किया गया था। इसके अनन्तर उसने वन में उन समस्त तपोधनों का अभिवादन किया था। वह सब धर्म का नेता उस रात्रि में उन ऋषियों के साथ वहीं पर रहा था और इसके उपरान्त सावित्री ने भी जो परम आनन्दित थी जो कुछभी घटित हुआ था वह सारा हाल कहकर सुना दिया था।९-१४।

व्रतं समापयामास तस्यामेव यथानिशि।
ततस्तुर्येस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः।१५
अजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे।
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम्।१६
विचक्षुपस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम्।
अमात्यैः स हृतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरे नृपः।१७
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेनचतुरङ्गिणा।
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान् महात्मनः।१८
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना।
एवम्पतिव्रता साध्वी पितृपक्षं नृपात्मजा।१९

उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च ।
मोक्षयामास भर्तारं मृत्युपाशगतं तदा ।२०
तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः ।
तासां राजन् ! प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम् ।२१
तासान्तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।
तस्मात्सदा ताःपरिपूजनीयाःकामान्समग्रानभिकामयानैः।२२

उसी रात्रि में जो महाव्रत ग्रहण किया था उसको समाप्त किया था । इसके अनन्तर सभी जन उस राजा की स्त्रियों के समीप में सेना के सहित तुर्य वाद्यों से समन्वित राज्यार्थ के लिए निमन्त्रणमें वहाँ पर समागत हुए और उस समयमें उन्होंने प्रकृति शासनको विज्ञापितकिया था । हे नृपते ! नेत्रहीन आपका जिसने पहिले राज्य अपहृत किया था उस राजा को आपके ही अमात्यों ने मारा है और अब आप ही उस पुर के राजा हैं । यह श्रवण करके वह राजा द्युमत्सेन चतुरंगी बल के साथ वहाँ पर चला गया था और महात्मा धर्मराज से अपने सम्पूर्ण राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था । वरांगना सावित्री ने भी सौ भाइयों की प्राप्ति करली थी । इस प्रकार से उस परमसाध्वी पतिव्रता ने जो नृप की आत्मजा थी अपने पिताके पक्ष का भी उद्धार कर दिया था तथा उस वरारोहा ने भाइयों के पक्ष का भी उद्धार कर दिया था । उस समय में पतिव्रत के महान् प्रबलतम बल से अपने भर्त्ता को मृत्युके परम घोर पाशसे मुक्त करा दिया था । इसी कारण से मनुष्यों की पूजा करनी चाहिए । हे राजन् ! उनके ही प्रसादसे ये तीनों भुवन धारण किए जाते हैं ।१५-२१। इन चराचर लोकों में कभी भी उन सती साध्वी महिलाओं के वचन मिथ्या नहीं हुआ करते हैं इसी कारण से सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करने वाले मनुष्यों के द्वारा सर्वदा उन नारियों की अभ्यर्चना अवश्य ही की जानी चाहिए ।२२।

———

९६—अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किनुकृत्यतमं भवेत् ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्ति यतो भवान् ।१
अभिषेकार्द्र शिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना ।
सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ।२
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्यैकेन दुश्चरम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ।३
तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान्नृपतिः स्वयम् ।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्तान् श्रियान्वितान् ।४
सत्त्वरूपगुणापेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् मर्मज्ञांश्च प्रियंवदान् ।५
हितोपदेशकान्राज्ञः स्वामिभक्तान्यशोऽर्थिनः ।
एवं विधान्सहायां च शुभकर्मसु योजयेत् ।६
गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् ।
कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ।७

महर्षि मनु ने कहा—जिस राजा का राज्यासन पर अभिषेक कर दिया जावे उस अभिषिक्त नृपतिका क्या कर्त्तव्य है क्योंकि केवल उस का अभिषेक भर ही हुआ है । यह सभी कुछ मुझे बतलाइये क्योंकि आप तो सभी कुछ को भली भाँति जानते हैं ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अभिषेक के द्वारा भींगे हुए मस्तक वाले और राज्य के कार्यों के देखने वाले राजा को चाहिए कि वह उस प्रतिष्ठित राज्य में वहाँ पर अपनी सहायता करने वालों का वरण करे ।२। चाहे बहुत ही छोटा-सा भी कोई कार्य हो किन्तु वह भी एक के द्वारा पूर्ण कर लेना महान् कठिन हुआ करता है जिस पुरुष का कोईभी सहायक न हो । साधारण से साधारण कार्यों के विषय में भी ऐसा ही देखा जाता है किन्तु राज्य

शासन तो महान् उदय वाला एक परम विशाल कार्य है ।३। अतएव नृपति को स्वयं ही कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए । वे सहायक ऐसे होने चाहिए जो शूरवीर हों—अच्छे कुल और उत्तम जाति में समुत्पन्न होने वाले हों—बल से सम्पन्न एवं श्री से समन्वित होवें ।४ राजा को अपने सहायकों के वरण करने में देखना चाहिए कि वे रूप और सत्व गुण से युक्त हों—सज्जन हों—सज्जन हों, क्षमा से संयुक्त हों क्लेशों के सहन करने में समर्थ हों, महान् उत्साह वाले हों, धर्म के ज्ञाता हों, प्रिय वचन बोलने वाले हों । राजा को सदा हित का उपदेश करने वाले, स्वामी के परम भक्त और यश के चाहने वाले हों । इस तरह के भली भाँति खूब देखभाल कर सहायकों का वरण राजा को करना चाहिए और फिर उनको शुभ कर्मों में योजित करना चाहिए जो गुणों से हीन हों इनको भी राजा स्वयं जानकर यथा योग्य कर्मों में भाग करके नियुक्त करना चाहिए ।५-७।

कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः ।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषिता ।८

निमित्ते शकुने ज्ञाने वेत्ताचैव चिकित्सिते ।
कृतज्ञः कर्मणं शूरस्तथा क्लेशसहो ऋजुः ।९

व्यूहतत्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित् ।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ।१०

प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः ।
चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते ।११

यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः ।
शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित् ।१२

विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः ।
वक्ता न यस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत् ।१३

प्रांशवो व्यायताः शूराः दृढभक्ता निराकुलाः ।
राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः ।१४

सेनापति राजा का एक परम सहायक अङ्ग होता है। वह कैसा होना चाहिए यह बतलाया गया है। राजा का सेनापति–शील स्वभाव से युक्त–धनुर्विद्या का महान् विद्वान–हाथियों और अश्वों की शिक्षा में परम प्रवीण कोमल और मधुर भाषण करने वाला–शकुन के निमित्तों का जानने वाला—चिकित्सा के विषय का ज्ञाता–कृतज्ञ—कर्मों में शूर क्लेशों का सहिष्णु-सरल-गूढ़ तत्वों के विधान का ज्ञाता–निरर्थक एवं सार के तत्वों का जानकर ऐसे अनेक गुणोंसे विशिष्ट सेना का स्वामी राजा को बनाना चाहिए क्योंकि सेना ही राज्य एवं प्रजा की रक्षा करने वाली होती है और सेनापति उसका प्रधान होता है। वह सेनापति जाति का ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होना चाहिए। वह प्रांशु–सुन्दर रूप वाला और प्रियवादी होना चाहिए। उद्धत स्वभाव वाला उसको नहीं रहना चाहिए। राजा का दूत सभी के चित्तको ग्रहण करने वाला और प्रतीहार बनाना चाहिए। दूत को जैसा भी कहा जावे वही कहने वाला तथा देश भाषा का विद्वान् होना चाहिए। जो राजा का दूत हो उसको शक्तिशाली–क्लेशों का सहन करने वाला-वाग्मी-देश और काल के विभाग का ज्ञान रखने वाला तथा देश एवं काल का विज्ञाता होना आवश्यक है। जो जिसके काल में वक्ता नहीं है वही दूत राजा का होता है।८-१३। राजा को अपनी रक्षा करने वाले ऐसे ही व्यक्तियों को करना चाहिए जो प्रांशु व्यायत-शूर दृढ भक्त निराकुल—सदा क्लेशों के सहन करने के स्वभाव वाले तथा हितैषी हों।१४।

अनाहार्यो नृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे ।
ताम्बूलधारी भवति नारीं वाप्यथ तद्गुणा ।१५
षाड्गुण्यविधितत्वज्ञो देशभाषाविशारदः ।
सन्धिविग्रहकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः ।१६

कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता ।
आयव्ययज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ।१७
सुरूपस्तरुणः प्रांशुर्दृढभक्तिः कुलोचितः ।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ।१८
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः ।
धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः ।१९
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः ।
हयायुर्वेदतत्वज्ञो भुवोभागविचक्षणः ।२०
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियम्वदः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परकीर्तितः ।२१

राजा का ताम्बूलधारी अनाहार्य्य—अनृशंस और राजा में दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिए अथवा उन्हीं गुणों वाली पुरुष न होकर ताम्बूलधारिणी नारी भी हो सकती है ।१५। राजा के द्वारा षाड्गुण्य विधि के तत्व का ज्ञाता—देश भाषा का विद्वान् और नीति शास्त्र का पण्डित, सन्धि एवं विग्रह करने वाला नियुक्त होना चाहिए । देश का रक्षिता भृत्यों के कृत और अकृत के जानने योग्य होवे । जो आय और व्यय का ज्ञाता होता है वह लोक का वेत्ता तथा देश की उत्पत्ति का मनीषी मनुष्य होना चाहिए । राजा का खगधारी सुन्दर रूप वाला—तरुण-प्रांशु-दृढ़ भक्ति वाला—समुचित कुल में समुत्पन्न-शूरवीर-क्लेशो के सहन करने वाला नियुक्त होना चाहिए । राजा का धनुषधारी ऐसा ही बनाना चाहिए जो शूर-बल से सम्पन्न-गज, अश्व और रथ के विषय में पूर्ण ज्ञान रखने वाला शुचि और सभी तरह के क्लेशों को सहन करने वाला हो । राजा को अपना सारथि बहुत ही सोचकर निम्न गुणों वाला नियुक्त करना चाहिए जो निमित्त और शकुनों के ज्ञान वाला हो—अश्वों की शिक्षा का विशारद—अश्वों के आयुर्वेद के तत्वों का ज्ञाता—भूभाग का पण्डित बलाबल का जानने वाला जोकि

रथी के विषय में भलीभाँति विज्ञता रखता हो। स्थिर दृष्टि वाला-प्रिय बोलने वाला-शूर-कृतविद्य हो।१६-२१।

अनाहार्यः रुचिर्दक्षश्चिकित्सतविदाम्वरः।
सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते।२२
सूदशास्त्रविधानज्ञाः परभेद्या कुलोद्गताः।
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः।२३
समः शत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः।
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणो भवेत्।२४
कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः।
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।२५
लेखकः कथितोराज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान्।२६
अन्तरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः।
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः।२७
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम !।
पुरुषान्तरतत्वज्ञाः प्राज्ञश्चाप्यलोलुपाः।२८

नृपति का सूपाध्यक्ष वही प्रशस्त होता है जो आहार्य न हो-रुचि-दक्ष-चिकित्सा के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ सूपशास्त्र की विशेषताओं का ज्ञाता होता है।२२। सूद शास्त्र के विधान के ज्ञाता-परों को भेदन के योग्य अच्छे कुल से उद्गत ऐसे ही मनुष्य सब महानस् में (रसोई में) रखने चाहिए जिनके केश और नाखून कटे हुए हों।२३। नृप का धर्माधिकारी पुरुष विप्रों में प्रमुख-कुलीन-धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् और शत्रु तथा मित्र में समान रहने वाला होना चाहिए। वहाँ पर राजा की सभा में ऐसे ही सदस्य होने चाहिए जो सभासद द्विजों में मुख्य हों—समस्त देशों की भाषाओं के अभिज्ञ हों तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के विशारद होवें। राजा के यहाँ वह लेखक परम श्रेष्ठ भी कहा गया है

जो शीर्षकों से समन्वित सुसम्पूर्ण---सम और समान श्रेणी में गत अन्तरों को लिखा करता है। हे नृपोत्तम ! जो बहुत ही थोड़े में बहुत बड़े अधिक अर्थ का कहने वाला हो--उपाय वाक्यों में कुशल हो और समस्त शास्त्रों का महापण्डित हो ऐसा ही लेखक होना चाहिए। जो दानदाता हों वे भी राजा के द्वारा ऐसे पुरुषों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो दूसरे पुरुषों के अन्तर को पहिचानने वाले हों अर्थात् अन्यों के हृदय के तत्वों के ज्ञाता हों--प्रांशु एवं अलोलुप भी होंवे।२४-२४।

धर्माधिकारिण: कार्या: जना दानकरा नरा: ।
एवम्विधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जना: ।२६
लोहवस्त्राजिनादीनांरत्नानाञ्च विधानवित् ।
विज्ञातफल्गुसाराणामनाहार्य: शुचि: सदा ।३०
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्ष: प्रकीर्तित: ।
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नरा: ।३१
व्यवहारेषु च तथा कर्त्तव्या: पृथिवीक्षिता ।
परम्परागतो य: स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते ।३२
अनाहार्य: स वैद्य: स्यात् धर्मात्मा च कुलोद्गत: ।
प्राणाचार्य: स विज्ञेया वरुणास्तस्य भूभुजा ।३३
राजन् ! राज्ञा सदा कार्यं पृथक् जनै: ।
हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारद: ।३४
क्लेशक्षमस्तथा राज्ञो गजाध्यक्ष: प्रशस्यते ।
तैरेव गुणैर्युक्त: स्थासनश्च विशेषत: ।३५

उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट नर ही दान करने वाले धर्माधिकारी नियुक्त करने चाहिए। राजा के द्वारा इसी प्रकार के दौवारिकों की नियुक्ति करनी चाहिए जो लोहे-वस्त्र-अजिन आदि--रत्नों की विधि को भली भाँति जानते हों--क्या वस्तु फल्गु और क्या सार वाली है--

इनके ज्ञाता अनाहार्य-सदा शुचि-निपुण और अप्रमत्त मनुष्य ही राजा के धन (कोष) का अध्यक्ष होना चाहिए। समस्त आयके द्वारों में धनाध्यक्ष के तुल्य ही नर नियुक्त होने चाहिए।२९।३१। व्यवहारों में भी राजा को उसी प्रकार के मनुष्यों की नियुक्ति करनी चाहिए। जो अष्टांगों में भली भाँति चिकित्सा का ज्ञान रखता हो---परम्परा से समागत हो--धर्मात्मा अच्छे कुलमें समुत्पन्न हो और अनाहार्य हो वही पुरुष राजघर में वैद्य होने का अधिकारी होता है। राजा के द्वारा वरण से उसका वह प्राणाचार्य जानना चाहिये। हे राजन् ! राजा के द्वारा सदा जनों से पृथक यथा कार्य वन जातिका पण्डित और हाथियों की शिक्षा के विधान का ज्ञाता एवं क्लेशों के सहन करने में समर्थ ऐसा राजा का गजाध्यक्ष परम प्रशस्त माना जाता है और इन्हीं गुणों से समन्वित आने आसन वाला भी विशेष रूप के प्रशस्त होता है। ।३२-३५।

गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते।
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः।३६
अश्वाध्यक्षो महीभर्त्तुः स्वासनश्च प्रशस्यस्ते।
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः।३७
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज उद्युक्तः सर्वकर्मसु।
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः।३८
दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः।
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते।३९
अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते।
वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः।४०
राज्ञामन्तः पुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते।
एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे।४१

परीक्ष्य चापिकुर्या: स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु ।
स्थापनाजातितत्वज्ञ: सततं प्रतिजाग्रता ।४२

राजा का गज पर समारोहण करने वाला सभी प्रकार के कर्मों में प्रशंसनीय होता है । अश्वों की शिक्षा के विधान को जानने वाला अध्यक्ष और स्थासन प्रशस्त माना जाता है । अनाहार्य और शूर तथा प्राज्ञ एवं अच्छे कुल में उत्पन्न राजा का दुर्ग का अध्यक्ष कहा गया है जो सभी प्रकार के कर्मों में उद्युक्त रहा करता है । वास्तु कला की विद्या में महा पण्डित, हलके हाथ वाला, श्रम को जीत लेने वाला, दीर्घदर्शी और शूरस्थपति कीत्तित किया गया है । यन्त्र मुक्त में, पाणि मुक्त में, विमुक्त में और मुक्त धारित में अस्त्राचार्य उद्वेग से रहित एवं कुशल विशिष्ट हुआ करता है । पिता-पितामह से चले जाने वाला पवित्र-वृद्ध तथा कुलीन मूक्त एवं विनीत राजाओं का अन्त:पुर का अध्यक्ष अभीष्ट हुआ करता है । इस प्रकार से इन सात अधिकार के पदों पर पुर में सात पुरुष राजा के द्वारा भली भांति परीक्षा करके अधिकार के योग्य नियुक्त करना चाहिये जो कि सभी कर्मों में उपयुक्त होवें और सभी कर्मों में निरन्तर प्रतिजाग्रत और जाति के तत्वके ज्ञाता को इनका स्थापन करना चाहिए ।३६-४२।

राज्ञ: स्यादायुधागारे दक्ष: कर्मसु चोद्यत: ।
कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह ! ।४३
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिव: ।
उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ।४४
नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात् ।
नियोगं पौरुषं भक्ति श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ।४५
ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता ।
पुरुषान्तर्विज्ञानतत्वसारनिबन्धनात् ।४६
बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रं पृथक् पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ।४७
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
निश्चयस्तु सदा मन्त्रे कार्यं एकेन सूरिणा ।४८
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।
एकस्यैव कार्यंभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः ।४९

नृपति के आयुधों के आगार में ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिये जो दक्ष हो और सभी कर्मों में उद्यत रहता हो। हे नृप कुलोद्वह ! राजा के यहाँ उसके अपरिमेय कर्म हुआ करते हैं। पार्थिव का कर्त्तव्य है कि कर्मोंकी उत्तम-मध्यम और अधम श्रेणियोंको समझ कर ही उत्तम-मध्यम-अधम पुरुषों में से तदनुसार ही पुरुषों को नियोजित करे। यदि उत्तम कर्म में मध्यम और मध्यम कर्म में उत्तम पुरुष की विपर्यास मे नियुक्ति की जावेगी तो इस विपरीतता से नृप का नाश हो जायगा राजा को नियोग, पौरुष, भक्ति, श्रुत, शौर्य, कुल और नय इन सबको भली भाँति समझ बूझकर ही पुरुषोंकी वृत्तिका विधान करना चाहिए और दूसरे पुरुषों के विज्ञान एवं तत्वसार के विवर्धन से ही नियुक्ति करने की नितान्त आवश्यकता होती है।४३-४६। राजा को चाहिये कि वह पृथक-पृथक बहुत से लोगों से स्वेच्छया मन्त्रणा करे और अपने मन्त्रियों से भी अपने मन्त्र का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिये।४७। इस संसार में राजाओं का कहीं पर भी किसी का विश्वास नहीं हुआ करता है और सदा किसी भी एक सूरि से अपने विचारणीय मन्त्र में निश्चय कर लेना चाहिये। अथवा राजा को अपने निश्चय की प्राप्ति पर बुद्धि के उपजीवन से किसी भी एक से ही हो जावे तो भी पुनः उसका विशेह अवश्य ही अन्यों के द्वारा भी करना चाहिये।४८-४९।

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान् ।
नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कण्टकाः ।५०

वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ।
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ।५१
समग्रां वशगां कुर्य्यात् पृथिवीं नात्र संशयः ।
बहवो विनयाद्‌भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः ।५२
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रीविद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।५३
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्याम्वार्तारम्भांश्च लोकतः ।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।५४
जितेन्द्रियोहि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ।
यजेत राजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः ।५५
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्‌भोगान्धनानि च ।
साम्वत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्‌बलिम् ।५६

राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह ऐसे ही ब्राह्मणों की उपासना करे जो वेदत्रयी-समस्त शास्त्रोंमें सुनिश्चय वाले हों तथा असत् शास्त्रों वाले एवं मूढ़ न हों। मूढ़ तो सर्वदा लोक के लिए कण्टक ही हुआ करते हैं ।५०। विनीत आत्मा वाले नृप को नित्य ही वृद्ध-वेदों के वेत्ता और परम शुचि विप्रों का सेवन करना चाहिए और उनसे ही नित्य विनय की शिक्षा का ग्रहण भी करना चाहिए।५१। इस तरह से विनय की शिक्षा सर्वदा ग्रहण करने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश-गामिनी कर लिया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। बहुत से नृपवृन्द सपरिच्छद होते हुए भी केवल-अविनय के कारण ही अपने राज शासन कर्म से भ्रष्ट हो जाया करते हैं ।५२। वन में स्थित रहने वाले भी केवल विनय होने के कारण से ही राज्यों को प्राप्त कर चुके हैं। जो लोग त्रयी विद्या के महामनीषी हैं उनसे त्रयी विद्या को—लोक से वार्त्तारम्भों को—और इन्द्रियों के-विजय में योग को अहर्निश

सीखने में समास्थित होना चाहिए ।५३-५४। जो राजा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर जितेन्द्रिय होता है वह अपनी प्रजा को वश में रख सकता है। राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह दक्षिण से संयुक्त बहुत से क्रतुओं के द्वारा यजन किया करे। धर्म और अर्थ के लिये विप्रोंको भोग एवं धनों का दान देना चाहिए। प्रति सम्वत्सरों तथा मासों के हिसाब से उसे राष्ट्रों से बलि का आहरण करना चाहिए ।५५-५६।

स्यात् स्वाध्यायपरोलोके वर्तेत पितृबन्धुवत् ।
आवृत्तानां गुरुकुलात् द्विजानां पूजको भवेत् ।५७
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्बाह्मोऽभिधीयते ।
ततस्तेनानवा मित्रा हरन्ति न विनश्यति ।५८
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः ।
समोत्तमाधमे राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः ।५९
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरद् ।
संग्रामेस्वनिर्वर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ।६०
शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च राज्ञां निश्रेयसम्परम् ।
कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च पालनम् ।६१
योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथा कार्यं विशेषतः ।६२
स्वधर्मं प्रच्युयान् राजा स्वधर्मे स्थपयेत्तथा ।
आश्रमेषु तथा कार्यमन्नं तैलञ्च भोजनम् ।६३

नृप को लोक में सर्वदा स्वध्याय परायण होना चाहिए और प्रजाजनों में सबके साथ तदनुकूल पिता एवं बन्धु के तुल्य ही व्यवहार करे। जो द्विज गुरुकुलों से अपनी अवधि पूर्ण कर वापिस आवें उनकी पूजा राजा को करनी चाहिए ।५७। राजाओं के लिए यह विधि अक्षय एवं ब्राह्म कही जाती है। इससे वह अनव मित्रोंका हरण किया करते हैं तथा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है। अतएव राजा को इस ब्राह्म

अक्षय विधि को करना चाहिए। राजा का कर्तव्य है कि वह सम— उत्तम और अधमों के द्वारा समाह्वान कर प्रजाजनों का पालन किया करे।५८-५९। नृप को कभी भी अपने क्षत्रियों के व्रत एवं धर्म का स्मरण करते हुए संग्राम से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। संग्रामों से अनिवृत होना भी प्रजा का पूर्ण परिपालन ही होता है। ब्राह्मणों की सुश्रूषा राजाओं के कल्याण करने वाली परम श्रेय ही होती है। राजा का कर्त्तव्य है कि जो कृपण—अनाथ—वृद्ध एवं विधवा हों उनका भली भाँति पालन करे और उनका योग क्षेम तथा वृत्ति की परिकल्पना कर देवे। विशेष रूप से वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न करना राजा का नितान्त आवश्यक कार्य है। जो मनुष्य अपने धर्म को त्याग करके कर्त्तव्य से च्युत हो गये हैं उनको पुनः अपने उचित धर्म के मार्ग पर राजा को स्थापित करना चाहिए। जो आश्रम वासी हैं उनके आश्रमोंमें अन्न—तेल और भोजन आदि की व्यवस्था नृप को ही कर देनी चाहिए।६०-६३।

स्वयमेवानयेद्राजा स क्रमान्नावमावयेत्।
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मात्मनमेवच।६४
निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत्।६५
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः।६६
गूहत्कर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत्।६७
विवासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।
विश्वासयेच्चाप्यपरतस्तत्त्वभूतेन हेतुना।६८
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमे।
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत।६९
दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः।
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत्।७०

आश्रमों में जो आवश्यक वस्तुएँ हों उनकी व्यवस्था राजा को स्वयं ही आनयन करनी चाहिए। जो सत्कार करने के योग्य पुरुष हैं उनका कभी भूलकर भी राजा को अपमान नहीं करना चाहिए। राजा को अपने समस्त कार्य्य—राज्य और अपने आपको भी तपस्वियों के लिए समर्पित कर देना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक निवेदन करके देवों की भाँति ही चिरकाल पर्यन्त उनकी अभ्यर्चना करे। मनुष्यों के द्वारा दो प्रकार की बुद्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए जो कि ऋज्वी और वक्रा नाम वाली कही जाया करती हैं। जो वक्रा बुद्धि है उसका ज्ञान प्राप्त करके उसे कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए। जब भी वह आकर वक्रा बुद्धि उपस्थित हो तो उसका प्रतिबाध कर देना चाहिए। ऐसे ढङ्ग से रहना चाहिए कि कोई भी दूसरा इसके छिद्र को न जान सके और दूसरे के छिद्र को स्वयं समझ ले।६४-६६। अपने गुप्त अङ्गों की भाँति ही अपने कर्म को गोपनीय रखना चाहिए तथा अपने आपके छिद्र की रक्षा करे। जो पुरुष विश्वास करने के योग्य नहीं है उस पर कभी विश्वास न करे किन्तु जो विश्वास का पात्र हो उस पर भी अत्यधिक पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के घात से जो भय समुत्पन्न होता है वह मूलों का भी छेदन कर दिया करता है। तत्वमूल हेतु से दूसरे को भी विश्वास दिला देना चाहिए।६७-६८। बगुला की भाँति अर्थों का चिन्तन करे और सिंह के समान पराक्रम से यत्न करे। वृक (भेड़िया) के तुल्य लुप्त होकर छिप जावे तथा शश के सदृश विनिक्षेप करने वाला होवे। नृप को एक शूकर के समान दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिए। शिखि के तुल्य चित्रकार तथा कुत्ते के तुल्य दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिए।६९-७०।

तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः।
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत्।७१
नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं व्रजेत्।

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम ! ।७२
न गाहेज्जनसम्बाधं न चाज्ञातजलाशयम् ।
अपरीक्षितपूर्वंञ्च पुरुषैराप्तकारिभिः ।७३
नारोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा ।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत् ।७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्तो भवेन्नृपः ।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टा ततं प्रतिमानिताः ।७५
राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता ।
यथार्हञ्चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत् ।७६
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु ।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन् ।७७

नृप को कोकिल के समान मधुर आभाषण करने वाला होना चाहिए । जो वसति अज्ञात है उसी में निवास करना चाहिए । राजाको कौए के तुल्य शंकायुक्त रहना चाहिए । बिना परीक्षा किए हुए कभी भी राजा को भोजन एवं शयन नहीं करना चाहिए । हे मनुजोत्तम ! इसी भाँति से पहिले परीक्षा करके ही वस्त्र-पुष्प-अलंकार तथा अन्य वस्तु को उपयोग में लाना चाहिए ।७१-७२। किसी भी जन सम्बाध का गाहन न करे और जो जलाशय अज्ञात है उसमें भी उतर का अवगाहन राजा को नहीं करना चाहिए । इन सबकी परीक्षा भी आप्तकारी पुरुषों के द्वारा ही पहिले करा लेनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि जिसका पहिले अच्छी तरह से ज्ञान किया गया हो ऐसे गज—व्याल तथा अदान्त अश्व पर समारोहण नहीं करे । जिस स्त्री के विषय में पूर्णज्ञान प्राप्त न कर लिया जावे उसका गमन नृप को नहीं करना चाहिए और देवोत्सव में कभी भी निवास न करे । हे धर्मज्ञ ! क्योंकि नृप नरेन्द्र लक्ष्मी का ज्ञाता होता है उसको अपने सत् भृत्यों को सर्वदा परिपुष्ट और प्रतिमानित रखना चाहिए । जो राजा इस समर भूमिके ऊपर जय

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावें । राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राण-धारियों को ही कर्म्मों में योजित करना चाहिए ।७३-७६। जो पुरुष परम धर्म्मिष्ठ हों उनको धर्म के कार्यों में और जो अतीव शूरवीर हों उन्हें संग्राम के कार्यों में एवं जो परम निपुण हों उन्हें अर्थ सम्बन्धी कृत्यों में और जो पवित्र हों उनको ही सभी कर्म्मों में योजित करना चाहिए ।७७।

स्त्रीषु षण्ढं नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणकर्मसु ।
धर्मे चार्थे च कामे च नृपे च रविनन्दन ! ।७८
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम् ।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान् ।७९
तत्पादान्वेषणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् ।
सर्वमादीनि कर्माणि नृपैः कार्याणि पार्थिव ।८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः ।
कर्माणि पापसाध्यानि यानि राज्ञो नराधिप ! ।८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्ति तस्मात्तानि त्यजेन्नृपः ।
नेष्यतेपृथिवीशातातीक्ष्णोपकरणाक्रिया ।८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम् ।
तस्मिन् कर्मणि तं राजा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ।८३
पितृपैतामहान् भृत्यान सर्वकर्मसु योजयेत् ।
विनादायादकृत्येषुपरीक्षा स्वकृतान्तरान् ।८४

स्त्रियों से सम्बन्धित सभी कार्यों में नपुंसक पुरुष की नियुक्ति करे तथा जो अत्यन्त दारुण कर्म्म हों उनमें तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुष को रखे । हे रविनन्दन ! धर्म्म—अर्थ—काम और नय में राजा को उप-धाओं के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के करने की क्षमता रखता हो उसी की उसमें नियुक्ति करनी चाहिए । समतीतो-

पद चरों को शस्तवकन में भृत्य बनावे ।७८-७६। उनके पादान्वेषण करने वाले उनके अध्यक्षों को भी नियोजित करे। इसी प्रकार के सभी कर्मों नृप के द्वारा पूर्ण करना चाहिए। हे पार्थिव ! राजा का सर्वथा तीक्ष्ण उपकरण का क्रम अभीष्ट नहीं हुआ करता है। हे नराधिप ! राजा के जो कुछ ऐसे कर्म्म होते है जो कि पापों द्वारा साध्य हुआ करते हैं सन्त पुरुष उनको कभी नहीं किया करते हैं। अतएव राजा का कर्त्तव्य है कि उनको त्याग देवे। राजाओं को तीक्ष्ण उपकरणों की क्रिया कभी भी अभीष्ट नहीं हुआ करती है। जिस कर्म्म में जिस पुरुष की विशेष रूप से कुशलता हो उस कर्म्म में राजा को उसकी परीक्षा करके ही उस पुरुष का विनिवेश करना उचित होता है। जो ऐसे भृत्य हैं कि उनके और अपने पिता—पितामह के समय से ही चले आने वाले हैं उनको सभी प्रकार के कर्मों में नियुक्त कर देना चाहिए। स्वकृतान्तरों को दायाद कृत्यों में परीक्षा के बिना भी नियुक्त कर देवें ।८०-८४।

नियुञ्जीत महाभाग ! तस्य ते हितकारिणः ।
परराजगृहात्प्राप्तान् जनसंग्रहकाम्यया ।८५

दुष्टान् वाप्यथवादुष्टान् आश्रयीत प्रयत्नतः ।
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्रभूमिपः ।८६

वृत्तिं तस्यापि वर्त्तेत जनसंग्रहकाम्यया ।
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम् ।८७

मामयं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् ।
कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप ।८८

न च वा संविभक्तांस्तान् कुर्यात्कथञ्चन ।
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति चिन्तयेत् ।८९

भृत्या मनुजशार्दूल ! रुषिताश्च तथैकतः ।
तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञाय नित्यशः ।९०

हे महाभाग ! जन-संग्रह की कामना से दूसरे राज गृह से प्राप्त हुए उसके उन हितकारियों को नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट हों अथवा अदुष्ट हों प्रयत्न से उनको आश्रय देवे। राजा को दुष्ट को जानकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। जन–संग्रह की कामना से उसकी वृत्ति कर देनी चाहिए। राजा को अन्य देशों से प्राप्त हुए पुरुष की अत्यधिक पूजा करनी चाहिए ।८५-८६-८७। यह मेरे देश में प्राप्त हुआ है अतएव उसके विषय में बहुमान चिन्तन करना चाहिए ! हे नराधिप ! राजा को इच्छापूर्वक भृत्यार्जन नहीं करना चाहिए ।८८। उन भृत्यों को किसी भी प्रकार से संविभक्त नहीं करे। शत्रुओं को अग्नि—विष—सर्प और निस्त्रिंश ऐसा ही चिन्तन करना चाहिए ।८९। हे मनुज शार्दूल ! जो भृत्य रुषित हो जावें उनके विषय में एक ओर से राजा को चारों के द्वारा नित्य ही चरित्र का विशेष ज्ञान करते रहना चाहिये ।९०।

गुणिनां पूजनं कुर्यात् निर्गुणानाञ्च शासनम् ।
कथिताः सततं राजन् ! राजानश्चारचक्षुषः ।९१
स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणाम् ।
अनाहार्यान् क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथा चरान् ।९२
जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ।९३
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्यात् चारस्यापि सुभाषितम् ।९४
द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्सदा ।
परस्परस्याविदितौ यदि स्याताञ्च तावुभौ ।९५
तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान्नियोजयेत् ।
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणम् ।९६
सर्वं राज्ञां चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् ।

कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते ।९७
विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता ।
विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः ।९८
तथा च रागप्रभवा हि लक्ष्म्यो राज्ञां मताभास्करवंशचन्द्र ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ।९९

राजा का कर्तव्य है कि जो गुणीजन हों उनका सत्कार एवं पूजन करे तथा जो गुणहीन हों उन पर शासन करे । हे राजन् ! राजा लोग निरन्तर चारों के चक्षुओं वाले ही कहे जाया करते हैं ।९१। अपने राष्ट्र तथा देश में तथा दूसरे देश में ज्ञान के शील वाले—विलक्षण-अनाहार्य और क्लेश सहचरों की नियुक्ति करनी चाहिए ।९२। राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे जिनको साधारणतया मनुष्य नहीं जानते हों—सौम्य—परस्पर में ज्ञात—वणिज मन्त्र में कुशल—साम्वत्सर चिकित्सक—प्रव्राजित (साधु-संन्यासियों) के आकार अर्थात् वेष—भूषा वाले हों । राजा को किसी भी एक गुप्तचर के कथन पर भी श्रद्धा कभी नहीं कर लेनी चाहिए ।९३-९४। जब दो चार उसी एक विषय का समान रूप से प्रतिपादन करें तभी राजा को विश्वास करना चाहिए किन्तु दोनों के सम्बन्ध को पहिले समझ कर ऐसा करे । यदि वे दोनों भी परस्परमें अविदित हों तो उनके सम्बन्ध को जान लेना बहुत-ही आवश्यक है । इसी कारण से राजा को अत्यन्त गूढ़ चारों की नियुक्ति करना उचित है। भृत्यों के राग और अपराग तथा जनोंके गुण और अवगुण को जान लेना सब कुछ गुप्तचरों के ही (राजाओं का) अधीन होता है अतएव राजाओं को उनके विषय में यत्न परायण होना ही चाहिए । राजा का परम कर्त्तव्य यही है कि वह यह सर्वदा जानता-समझता रहे कि मेरे किस कर्म्म से लोकमें सब लोग में अनुरञ्जित होते हैं और कौन-सा मेरा कर्म्म है जिससे लोगों को बुरा मालूम होता है जो लोगों में विराग समुत्पन्न करने वाला कार्य है । उसको पूर्ण रूप से वर्जित

कर देना चाहिए। हे भास्कर वंश के चन्द्र ! राजाओं की लक्ष्मी राम से समुत्पन्न होने वाली हैं—ऐसा ही माना गया है। इस कारण से राजप्रमुखों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक भूमण्डल में मानवों में राजाओं को भली भाँति अनुराग करना चाहिए।६५-६६।

—×—

६४—राजकृत्य वर्णन (१)

यथा न वर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविना।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदता मम।१
राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्यं तत्प्रयत्नतः।
आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः।२
अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत्।३
परार्थमस्य वक्तव्यं समे चेतसि पार्थिव।
स्वार्थः सुहृद्भिर्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन।४
कार्य्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः।
नच हिंस्य धनं किञ्चित् नियुक्तेन च कर्मणि।५
नोपेक्ष्यस्तस्य मानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत्।
राजश्चैव तथा कार्य्यं वेषभाषितचेष्टितम्।६
राजलीला न कर्तव्या तद्विष्टञ्च वर्जयेत्।
राज्ञः समोऽधिको वा न कार्य्योवेषी विजानता।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा राजा के अनुजीवी के द्वारा मन जिस प्रकार से नहीं बरतना चाहिए वही मैं आपको बतलाऊँगा। अब आप मुझसे इसको समझ लो। जिसको कि मैं कह रहा हूँ।१। राजा जो कुछ भी बचन कहे उसे प्रयत्न पूर्वक श्रवण कर लेना चाहिए। उसके

वचन पर आक्षेप करके फिर कुछ भी अपना वचन नहीं कहना चाहिए। ।२। जन संसद में उस नृप का प्रिय और अनुकूल ही वचन बोलना चाहिए। यदि कोई उसके हित को बतलाने वाला भी वचन कहता हो तो उसे चाहे वह अप्रिय भी हो उसी समय में उससे कहना चाहिए जब एकान्त में स्थित हो ।३। हे पार्थिव ! इसका परमार्थ चित्त के सम होने पर ही बोलना चाहिए - यदि अपना कोई स्वार्थ हो तो उसे स्वयं कभी भी न कहकर मित्रों के द्वारा ही कहलाना चाहिए ।४। सबमें कार्यातिपात प्रयत्न पूर्वक रक्षित रखना चाहिए। कर्म में नियुक्त होने पर कुछ भी धन नहीं मारना चाहिए ।५। उसके मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार से मनुष्य राजा का प्रिय हो जाया करता है। राजा के तुल्य वेष—भाषित और चेष्टित जैसा भी हो वैसा ही स्वयं नहीं करना चाहिए ।६। राजा की लीला नहीं करे और उसका जो भी कुछ विद्विष्ट हो वह भी वर्जित कर देना चाहिए। राजा के ही समान अथवा उससे भी अधिक वेष अच्छी तरह से जानते हुए कभी नहीं करना चाहिए ।७।

द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं प्रदर्शयेत् ।
प्रदर्श्यकौशलं चास्य राजानन्तु विशेषयेत् ।८
अन्त:पुरजनाध्यक्षे वैरिदूतैर्निराकृत: ।
संसर्गं न व्रजेद्राजन् विना पार्थिवशासनात् ।९
निस्नेसताञ्चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत् ।
यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत् ।१०
नृपेण श्रावितं यत्स्याद्वाच्यावाच्यं नृपोत्तम ! ।
नतत्संश्रावयेल्लोके तथा राज्ञोऽप्रियो भवेत् ।११
आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् समुत्थाय त्वरान्वित: ।
किमहङ्करवाणीति वाच्योराजाविजानता ।१२
कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत् ।

सततं क्रियमाणेस्मिन् लाघवन्तु व्रजेद् ध्रुवम् ।१३
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि चात्यर्थं पुनः पुनः ।
महासुशीलस्तुभवेत् न चापि भृकुटीमुखः ।१४

उसी भाँति द्यूत (खेल) आदि में अन्य कौशल का प्रदर्शन करे और इसका कौशल प्रदर्शित करके राजा की विशेषता का प्रदर्शन करना चाहिए । हे राजन् ! राजा के शासन के बिना अन्त:पुर के जनाध्यक्षोंके साथ—शत्रु के दूतों के साथ और जो राजा के द्वारा निराकृत हो उनके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए ।८-९। स्नेह के अभाव को और अवमान को प्रयत्न के साथ गोपन करके रखना चाहिए और जो राजा का कोई भी गोपनीय विषय हो उसका भी कभी प्रकाशन नहीं करे । हे नृपोत्तम ! वाच्य तथा अवाच्य नृप के द्वारा जो भी श्रावित हो उसे लोक में कभी भी श्रावित न करे । ऐसा करने से राजा का वह अप्रिय हो जाया करता है । किसी भी दूसरे को आज्ञा देने पर भी शीघ्रता से स्वयं उठ कर राजा से यह कहना चाहिये कि क्या मैं इस कार्य्य का सम्पादन करलूँ—यही एक ज्ञाता पुरुष का कर्त्तव्य है ।१०-१२। कार्य की अवस्था को विशेष रूप से जानकर जैसा भी कार्य्य होवे उसको निरन्तर करते हुए भी लाघव निश्चय रूप से करे ।१३। राजा के प्रिय वाक्यों को अत्यधिक और बारम्बार नहीं कहे । राजा के समक्ष में महान् सुशील ही रहना चाहिए तथा कभी भृकुटियों को चढ़ाकर न रक्खे ।१४।

नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा ।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन ।१५
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित् ।
वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत् ।१६
औदार्य्येण नु तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता ।
तत्रैवात्मासनं कार्यं दिवास्वप्नं न कारयेत् ।१७
नानादिष्टे तथाद्वारे प्रविशेत्तु कथञ्चन ।

न च पश्येत् राजानमयोग्यासु च भूमिषु ।१८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा ।
पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनस्तु विगर्हितम् ।१९
जृम्भां निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम् ।
भृकुटि वान्तनूद्गारन्नतत्समीपे विवर्जयेत् ।२०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः ।
स्वगुणाख्यापने युक्त परमेव प्रयोजयेत् ।२१

राजा के सामने न तो अत्यधिक बोलने वाला ही रहे और न बिल्कुल न बोलने वाला मौन होकर ही रहे। मत्सरता से युक्त भी होकर न रहे तथा किसी भी प्रकार से आत्म सम्भावित भी नहीं रहना चाहिए ।१५। जो कुछ भी राजा के द्वारा किये हुए दुष्कृत हैं उनका कभी भी कहीं पर संकीर्तन नहीं करना चाहिए। जो भी कभी दैवात् राजा के द्वारा प्राप्त वस्त्र—अस्त्र और अलङ्कार हों तो उनको धारण करके रहना चाहिए ।१६। भूति के चाहने वाले को उदारता से उनको कभी दूसरे को नहीं दे डाले और वहीं पर अपना आसन रखना चाहिए तथा दिन में स्वप्न नहीं करे ।१७। जो द्वार या मार्ग अनिर्दिष्ट हो उसमें किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए। अयोग्य भूमि में समव-स्थित राजा को कभी नहीं देखना चाहिए। सर्वदा राजा के दक्षिण तथा वाम भाग में ही उपविष्ट होना चाहिए। राजा के आगे अथवा पीछे अपना आसन रखना गर्हित होता है ।१८-१९। राजा के समीप में जब भी कभी उपस्थित होवे तो मनुष्य को चाहिए कि जँभाई—थूक का थूकना-खाँसना-पर्यस्तिका (मसनद) आदि का सहारा लेकर बैठना—भृकुटि चढ़ाना—वान्ति करना—डकार लेना इन सबका वर्जन कर देवे। बुध पुरुष को राजा के समक्ष में स्वयं अपने गुणों और ख्यापन अपने मुख से नहीं करना चाहिए प्रत्युत अपने गुणों के प्रख्यापन करने के लिये दूसरों को ही प्रयोजित करना चाहिए ।२०-२१।

हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः ।
अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राजामतन्द्रितैः ।२२
शाठ्यं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्य क्षुद्रता तथा ।
चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः ।२३
श्रुविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ।
राजसेवान्जतः कुर्याद् भूतयेभूतिवर्द्धनीम् ।२४
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।
सचिवैश्चास्यविश्वासो न तु कार्यः कथञ्चन ।२५
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि ।
हितं तथ्यञ्च वचनं हितैः सह सुनिश्चितम् ।२६
चित्तञ्चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना ।
भर्त्तुराराधनं कुर्यांच्चित्तज्ञो मानवः सुखम् ।२७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता ।
त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत् ।२८
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदय तथा ।
आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ।२९
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः ।
वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ।३०

जो राजाओं के अनुजीवीगण हों उनको अपना हृदय निर्मल करके परा भक्ति का उपाश्रय करते हुए नित्य ही अतन्द्रिय रहना चाहिए । राजा के अनुजीवियों को शठता–लौल्य–पैशुन्य–नास्तिकता–क्षुद्रता–चापल्य–इन दोनों का सर्वदा परित्याग कर देना चाहिए ।२२-२३। श्रुति-विद्या और सुशीलता के गुणों वाले पुरुषों की आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा का संयोजित करके अन्ततः वैभव की प्राप्ति के लिए भूति के वर्धन करने वाले राजा की सेवा करनी चाहिए । राजा के पुत्र-वल्लभ व मन्त्रियों को सदा नमस्कार करना उचित है । सचिवों के द्वारा इसका किसी प्रकारसे

भी विश्वास नहीं करना चाहिए ।२४-२५। बिना कुछ पूछे हुए इससे भाषण न करे । यदि इच्छा पूर्वक बोले तो हितों के सहित अति सुनिश्चित हित और तथ्य वचन बोलना चाहिये ।२६। जो राजा के अनुजीवी हों उनको नित्य ही इसके चित्त की वृत्ति को जानते रहना चाहिये । चित्त की वृत्ति का ज्ञान रखने वाले मानव को सुख पूर्वक स्वामी का समाराधन करना चाहिए । विभूति के प्राप्त करने की इच्छा पुरुष को इस राजा के राग एवं अपराग को अच्छी तरह से जान लेना अत्यन्त आवश्यक है । इनको जानकर फिर त्याग करे । विरक्त नहीं रहे । नृरत्ति रक्त वृत्ति करावे । विरक्त नाश कराता है और विपक्ष का अभ्युदय कराता है । आशा की वृद्धि करके फल का नाश किया करता है । बिना काम वाला भी क्रोध से युक्त के समान होता है । प्रसन्न होता हुआ भी निष्फल है तथा मद से युक्त वाक्य बोलता है और वृत्ति छेदन कर देता है ।२७-३०।

प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽन्यथा ।
आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते ।३१
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभंग करोति च ।
लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसङ्कीर्तनेऽपि च ।३२
दृष्टि क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि ।
विरक्तलक्षणं चैतत् शृणु रक्तस्य लक्षणम् ।३३
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात् ।
कुशलादिपरिप्रश्नं संप्रयच्छति चासनाम् ।३४
चिविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते ।
जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ।३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते ।
उपायनञ्च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ।३६

कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ।
अतिरक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह ! ।३७
मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।
निभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ।३८

उदित हुआ प्रदेश वाक्य भी अन्यथा सम्भावित नहीं होता है और सब आराधनाओं में सुप्त की भाँति विचेष्टित किया करता है । कथाओं में दोषों का क्षेप किया करता है और वाक्य का भङ्ग करता है । गुणों के संकीर्त्तन करने पर भी विमुख के समान दिखलाई देता है । कर्मों के करने पर भी अन्यत्र दृष्टि डालता है—ये ही एक विरक्त पुरुषके लक्षण हुआ करते हैं । अब जो अनुरक्त होता है उसके लक्षणों का भी श्रवण करलो । देखकर परम प्रसन्न अनुरक्त हुआ करता है और जो भी वाक्य कहा जाता है उसे बड़े ही आदर से ग्रहण करता है । कुशल-क्षेम के प्रश्न आदि करता है और उपविष्ट होने के लिये आसन दिया करता है विविक्त दर्शन में और इसके एकान्त में इसकी शंका नहीं करता है । उसकी उस कथा को श्रवण करके प्रसन्न मुख हो जाया करता है ।३१-३५। उसके द्वारा कहे हुए अप्रिय वाक्यों को भी अभिनन्दित किया करता है तथा थोड़े से भी उपायन को बड़े आदर से ग्रहण करता है । अन्य कथाओं में प्रहृष्ट मुख वाला होकर स्मरण करता है । हे रवि-कुलोद्वह ! इस प्रकार के अनुरक्त की सेवा करनी चाहिए । आपत्ति के समयों में मित्र का उस प्रकार से नहीं जिस तरह भृत्यगण हैं वे अप्रमेय और निर्गुण की सेवा करते हैं । वे भृत्य देववृन्दों के द्वारा सेवित सुरेन्द्र के धाम को तथा विशेष रूप से विभु को प्राप्त किया करते हैं ।३६-३८।

—×—

९६—राजकृत्य वर्णन (२)

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम् ।
रम्यमानतसामन्तं मध्यमन्देशमावसेत् ।१
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथापरैः ।
किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरन्तथा ।२
अदैवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम् ।
करैरापीडितञ्चापि बहुपुष्पफलं तथा ।३
अगम्यं परचक्राणां तद्वासगहमापदि ।
समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ।४
सरीसृपविहीनञ्च व्याघ्रतस्करवर्जितम् ।
एवविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ।५
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ।६
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ! ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा को अपने सहायकों से समन्वित होकर प्रभूत यवस और इन्धन वाले—रम्य एवं आनत सामन्तों वाले मध्यम देश में निवास करना चाहिए ।१। वह स्थल ऐसा होना चाहिए जिसमें राजा का निवास हो वैश्य और शूद्रजन बहुतायतसे रहते हों एवं दूसरों के द्वारा जो आहार्य न हो सके । राजा का निवास स्थल कुछ ब्राह्मणों से भी युक्त तथा बहुत कर्मों के करने वाला होवे ।२। अदैव मातृक—रम्य—अनुरञ्जित जनों से युक्त—करों से अपीड़ित तथा बहुत पुष्प एवं फलों वाला—पर (शत्रु) के चक्रों को अगम्य ऐसा आपत्ति काल में वास गृह होना चाहिए । सुख और दुःख में सम—निरन्तर राजा का प्रिय—सरीसृपों से विहीन—व्याघ्र और तस्करों से

रहित इस प्रकार के यथा लाभ देश में राजा को आना निवास करना चाहिए ।३-५। बुध राजा को वहाँ पर छैः प्रकार के दुर्गों में से एक तरह के दुर्ग की रचना करनी चाहिए । छैः प्रकार के दुर्गों के नाम ये हैं—धनुर्दुर्ग नर दुर्ग—वार्क्ष दुर्ग—अम्बुदुर्ग—और हे पार्थिव ! छठवाँ गिरि दुर्ग है । इन समस्त दुर्गों में गिरि दुर्ग सबसे प्रशस्त माना जाता है ।६-७।

दुर्गंच परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् ।
शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ।८

गोपुरं सकपाटञ्च तत्र स्यात्सुमनोहरम् ।
सपताकङ्गजारूढो येन राजा विशेत्पुरम् ।९

चतस्रश्च तथातत्र कार्यास्त्वायतवीथयः ।
एकस्मिस्तत्र वीथ्यग्रे देववश्य भवेद्दृढम् ।१०

वीथ्यग्र च द्वितीये च राजवेश्म विधीयते ।
धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके ।११
चतुर्थे वथ वीथ्यग्रे गोपुरञ्च विधीयते ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम् ।१२
मुक्तिहीनं त्रिकोणञ्च यवमध्यं तथैव च ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम् ।१३
अर्द्धचन्द्र प्रशसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन् ।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ।१४

राजा का दुर्ग वप्र और अट्टालक से संयुक्त तथा परिखा (खाई) से उपेत—शतघ्नी (तोप) यन्त्रों में जो प्रमुख यन्त्र हैं उन सैकड़ों यन्त्रों से समावृत दुर्ग होना चाहिए । वहाँ पर सुमनोहर कपाटों से युक्त गोपुर होवे जिसमें पताकाऐं फहरा रही हों । वह ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा गज पर समारूढ होकर राजा पुर में प्रवेश करे ।८-९। उसमें चार लम्बी चौड़ी वीथियाँ निर्मित की हुई होवें और वहाँ पर एक वीथी

के अग्रभाग में परम सुदृढ़ देव का आलय होना चाहिए। दूसरे वीथी के अग्रभाग में राजा के रहने का वेश्म गृह निर्मित किया जाना चाहिए। तीसरी वीथी के अग्रभाग में धर्म का अधिकरण करना चाहिये और चतुर्थ वीथी के अगभाग में गोपुर विरचित करे। इस प्रकार से उस पुर को चौकोर—आयत और वृत कराना चाहिए। मुक्तिहीन—त्रिकोण—यवमध्य अथवा चौकोर और आयत वृत्त पुर की रचमा करावे। नदी के तीर पर निवास करते हुए अर्ध चन्द्र की प्रशंसा किया करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयत्नपूर्वक विशेष ज्ञाता को नहीं करना चाहिए। ।८-१०।

राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मन: ।
तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ।१५
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्यावाप्यु दङ्मुखी ।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ।१६
महानसश्च धर्मज्ञ ! कर्मशालास्तथापरा: ।
गृहंपुरोधस: कार्यं वामतो राजवेश्मन: ।१७
मन्त्रिवेदविदाञ्चैव चिकित्साकर्त्तु रेवच ।
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ।१८
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैवच ।
गत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ।१९
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिता: ।
तुरगास्ते तथा धार्या: प्रदीपै: सार्वरात्रिकै: ।२०
कुक्कुटान् वानराश्चैव मर्कटाश्च विशेषत: ।
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेवच ।२१

राजा के निवास गृह के दक्षिण भाग में राजा को अपना कोषगृह बनाना चाहिए। उसके भी दक्षिण भाग में गजों के रहने का स्थान निर्मित करावे ।१५। गजशाला का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा की

ओर करवाना चाहिए। आग्नेय भाग में आयुधों का आगार बनाना अभीष्ट होता है। हे धर्मज्ञ ! (रसोई घर (दूसरी कर्म शालाऐं और पुरोहित का ग्रह ये सब राजा के वेश्म के वाम भाग में निर्मित करावे। वहीं पर उसी भाग में मन्त्री—देववेत्ता और चिकित्सा करने वाले का गृह तथा कोष्ठागार भी निर्मित कराने चाहिये ।१६-१८। यहाँ पर गौओं का स्थान—तुरंगों का स्थान करावे। तु गों की जो श्रेणी है वह उत्तर की ओर मुख वाली होनी चाहिए। अथवा दक्षिणाभिमुख हो। परिशिष्ट सभी गर्हित कही गयी है। वे तुरंग सम्पूर्ण रात्रि में जलने वाले प्रदीपों के साथ रखने चाहिये। उन अश्वशालाओं में कुक्कुटों—वानरों—मर्कटों को विशेष रूप से वत्स के सहित धेनु को भी रखना चाहिए ।१९-२१।

अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः ।२२
अस्तंगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।
तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन् ।२३
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः।
योधानां शिल्पिनाञ्चैव सर्वेषामविशेषतः।
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान्।
गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवद्यांस्तथैवच ।२५
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः।
कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते ।२६
न बहू नामतो दुर्गे विन कार्यं तथा भवेत्।
दुर्गे तेन कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ।२७
सहस्रघातिनी राजस्तेषु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भभुजा ।२८

अश्वों के हित चाहने वाले को यत्नपूर्वक अजाओं को भी वहाँ

पर रखना आवश्यक होता है। गौ-गज और अश्व आदि की शालाओं में उनके पुरीष (मल) का निर्गम (निकालना) देवों के देव भगवान् दिवाकर के अस्त हो जाने पर नहीं करना चाहिए। वहाँ-वहाँ पर स्थानों के अनुसार राजा विशेष रूप से समझ कर सारथियों की नियुक्ति करे तथा उन सबसे आनुपूर्वशः आवसथ (रहने का) स्थान भी देवे। योधाओं को परम शुभ आवसथ दुर्ग में देवे। राजा को चाहिए कि वह गौओं के वैद्य—अश्वों के वैद्य और गजों की चिकित्सा करने वाले लोगों को अच्छी तरह से अधिक संख्या में लाकर रक्खे क्योंकि दुर्ग में बीमारियाँ भी बहुत प्रबल हुआ करती हैं। कुशीलव विप्रों का दुर्ग में स्थान किया जाता है।२२-२६। दुर्ग में कार्य के बिना फालतू बहुतों को उस प्रकार से स्थान नहीं देवे। हे राजन् ! दुर्ग में अनेक प्रकार के प्रहरणों (शस्त्रों) से समन्वित सहस्र घातियों को नियुक्त करना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा रक्षा की जाया करती है। राजा के द्वारा अपने दुर्ग में गुप्त द्वार भी निर्मित करा कर रखने चाहिए।२७-२८।

सञ्चयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते ।
धनुषां क्षेपणीयानान्तोमराणां च पार्थिव: ।२९

शराणामथ खड्गाना कवचानां तथैव च ।
लगुडानां गुडानाञ्च हुडानां परिधै: सह ।३०

अश्मनाञ्च प्रभूतानां मुद्गराणां तथैव च ।
त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणाञ्च पार्थिव ।३१

प्रासानाञ्च सशूलानां शक्तीनाञ्च नरोत्तम: ।
परश्वधानां चक्राणां वर्मणाञ्चर्मभि: सह ।३२

कुद्दालक्षुरवेत्राणां पीठकानान्तथैव च ।
तुषाणांचैव दात्राणामङ्गाराणाञ्च सचय: ।।३३

सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते ।
वादित्रणाञ्च सर्वेषामौषधीनान्तथैव च ।३४
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः ।
गुडस्थ सर्वतैलानां गोरसानान्तथैव च ।३५

यहाँ पर दुर्ग में सभी आयुधों का संग्रह रखना परम प्रशस्त होता है । पार्थिव को धनुषों का—क्षेपणीयों का और तोमरों का सञ्चय रखना आवश्यक है । शरों का—कवचों का-खङ्गों का—लडों— हुड़ और परिधों का भी संग्रह करे । बहुत तादाद में पाषाणों का—मुद्गरों का—त्रिशूलों का—पट्टिशों का और हे पार्थिव कुठारों का भी संग्रह करना चाहिए ।२९-३१। नरोत्तम को प्रास—सशूल—शक्ति—परश्वध—चक्र—चर्म के सहित वर्मों का भी वहाँ सर्ग में संग्रह होना उचित होता है । कुद्दाल—क्षुर—नेत्र—पीठक—तुष—दात्र और अंगारों का भी सञ्चय करे । सभी प्रकार के शिल्पियों के भाण्डों का सञ्चय भी दुर्ग में अभीष्ट होता है । सब तरह के वादित्र और सभी औषधियाँ तथा प्रभूत यवस और ईंधन का संचय वहाँ रक्खे । गुड़, सभी तरह के तैल और गोरसों का संग्रह दुर्ग में करना आवश्यक है । ।३२-३५।

वसानामथ मज्जानां स्नायुनामस्थिभिः सह ।
गोचर्मपटहानांच धान्यानान्तथैव च ।३६
तथैवाभ्रपटानांच यवगोधूमयोरपि ।
रत्नानां सर्ववस्त्रात्राणां लोहानायप्यशेषतः ।३७
कलापमुद्गमाषाणां चणकानान्तिलैः सह ।
तथा च सर्वशः स्यानां पांशुगोमययोरपि ।३८
शणसर्जरसं भूर्जं जतुलाक्षा च टङ्कणम् ।
राजा संचिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किंचन ।३९
कुम्भांश्चाशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा ।

मृगाश्च पक्षिगश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ।४०
स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक् ।
कर्तव्यानि महाभाग ! यत्नेन पृथिवीक्षिता ।४१
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषत: ।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जमानां हितकाम्यया ।४२

राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह वसा—मन्त्र—अस्थियों के साथ, स्नायु—गोचर्य—पटह्—सभी प्रकार के धान्य—अभ्रपट—यव—गोधूम (गेहूँ)—रत्न—सभी वस्त्र—सम्पूर्ण प्रकार के लौह—कलाप—मुद्ग—माष—(उर्द)—तिल—चना—सभी तरह के शस्य—पांसु-गोमय-शण—सर्जरस— भूर्ज-जतु-लाक्षा-टङ्कण—(सुहागा) और अन्य भी जो कुछ हो उन सबका सञ्चय दुर्ग में राजा को करना ही चाहिए। आशी-विषों के द्वारा कुम्भों को पूर्ण करे तथा व्याल—सिंह आदि मृग और पक्षिगण इन सबकी परस्पर में रक्षा करनी चाहिये ।४०। आपस में जो भी जीव विरोध रखने वाले हैं उनका अलग २ स्थान निमित करावे और अच्छी तरह उन्हें सुप्त रक्खे। हे महाभाग ! राजा को यत्न के साथ यह सभी कुछ करना चाहिए। जो बता दिये गये हैं और जो नहीं भी कहे गये हैं उन सम्पूर्ण राजद्रव्यों को पुर में सुगुप्त जनता के हित की कामना से रखना चाहिए ।४१-४२।

जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूपकान् ।
शालपर्णी पृष्टिपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ।४३
माषमर्णी च मदद्वे सारिवेद्वे बलात्रयम् ।
वारा श्वसन्ती वृष्या च वृहती कण्टकारिका ।४४
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्हाभूदभरेणुका ।
मधुपर्णी विदार्येद्वे महाक्षीरा महातपा: ।४५
धान्वना मतुदेवाह्वा कटुकैरण्यकं विष: ।
पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गु खर्जरयष्टिका: ।४६

शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यं छत्रातिच्छत्रवीरणाः ।
इक्षु रिक्षु विकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ।४७
सिंहो च सहदेवो च विश्वेदेवाश्वरोधकम् ।
मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ।४८
शतावरीमधूकेच पिप्पलन्तालमेव च ।
आत्मगुप्ता कट्फलाख्यादार्विका राजशीर्षकी ।४९

एक राजा का परम कर्त्तव्य होता है कि सभी प्रकार की वन—स्पतियों का सञ्चय अपने पुर में न करे । उनमें कुछ नामों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है--जीव कर्षभ—काकोल—›मलकी—आटरूषक--शालपर्णी-पृष्ठ पर्णी--मुद्गपर्णी--माषपर्णी--मदद्व—सारिवा दोनों प्रकार की—तीनों बलाऐं—वारा--श्वसन्ती—वृष्या४वहती--कष्ट कारिका--श्रृङ्गी--श्रृगारकी--द्रोणी—वर्षाभदर्भरेणुका--मधुपणी—दोनों विदारी--महाक्षीरा-महातपा—धन्वय—सहदेवी नाम धारिणी--कटुक--ऐरण्डक--विषपर्णी--शतानाम वाली—मृद्धीका—फल्गु—सजारियष्टिका--शुक्रातिशुक्रका-अश्मरी—छत्रातिछत्रका—वीरणा—इक्षु विकार—फाणिता आदि—सिंह—सहदेवी—विश्वेदेवा—अश्वरोधक—मधुक—पुष्पहंसानाम वाली—शत--पुष्पा—मधूलिका—शतावरी—मधूक—पिप्पल—ताल—-आत्मसुप्ता-कट्फला—दार्विका—राजशीर्षकी ।४३-४९।

राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा ।
कालशाकं पद्मबीजं गोवल्ली मधुवल्लिका ।५०
शीतपाकी कुवेराक्षी काकजिह्वोरुपुष्टिका ।
पर्वतत्रयुषौ चोभौ गुञ्जातकपुनर्नवे ।५१
कसेरु कारुकाश्मीरी बल्या शालकाकेसरम् ।
तुषधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि ।५२
क्षीरं क्षौद्रन्तथा तक्रं तैलं मज्जा वसा घृतम् ।
नीपश्चारिष्टकाक्षोड़वातायसामबाणकम् ।५३

एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरोगण: ।
राजा सञ्चिनुयात्सर्वं पुरे निरशेषत: ।५४
दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिड़ीकाम्लवेतसम् ।
भव्यककर्न्धुलकुचकरमर्द्दकरुषकम् ।५५
बीजपूरककण्डरे मालतीराजबन्धुकम् ।
कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्नातयोरपि ।५६

राज सर्षप—धान्याक—मृष्यप्रोक्त—उत्कटा—काल शाक—पद्म बीज—गोवल्ली—मधुवल्लिका—शीतपाकी—कुबेराक्षी—काक जिह्वा—उत्पुष्पिका—पर्वत—वयुष—गुञ्जातक—तुनर्नवा दोनों—कसेरु—काश्मीरी—बल्या—शालूक—केसर—सब तुष धान्य—क्षीर क्षौद्र—तक्र—तैल—वसा—मज्जा—घृत—नाप—अरिष्टक—क्षोड वाताय—सामबाणक—इस प्रकार के धान्य मधुरोगण—इस सभी का पूर्ण रूप से सञ्चय राजा को करना आवश्यक है ।१०-५४। दाड़िम—आम्रातक—तिन्तिड़ीक—आम्लवेतस—भव्य कर्कन्धु—लंकुच—करमर्द्द— करुषक—बीजपूरक—कण्डुर—मालती—राज—बन्धुक—दोनों कोलक पर्ण—दोनों आम्नात ।५५-५६।

पारावत नागरकं प्राचीनोलकमेव च ।
कपित्थामलकं चुक्रफलन्दन्तशठस्य च ।५७
आम्ववं नवनीतञ्च सौवीरकरुपोदके ।
सुरासवञ्च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ।५८
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमम्लगणं द्विज ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।५९
सैन्धोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम् ।
कुप्यसौवचलविड़ बालकेय यवाह्वकम् ।६०
औवं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गण: ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।६१

पिप्पली पिप्लीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
कुबेरकं मरिचकं शिग्रु भल्लातसर्षपा: ।६२
कुष्ठाजमोदाकिणिह्रोहिङ्गुमूलकधान्यकम् ।
कारवीकुञ्जिका याज्या सुमुखा कालमालिका ।६३

परावत—नागरक—प्राचीनोलक—कपित्थ—आमलक—चुक्रफल—दन्तशठ—जामबव—नवनीत—सौवीरक—तुषोदक—सुरा—आसव—मद्य—मण्ड—तक्र—दधि—सब शुक्ल पदार्थ हे द्विज ! और अम्लगण इस प्रकार के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुर में करना चाहिए । सैन्धोद्भिद—पाठेय—पाक्य—सामुद्र—लोमक—कुप्य—सौवर्चल—विड़—बालकेय—यवाह्वक—औवं—क्षार—कालभस्म लवण गण—इस भाँति के पदार्थों का पुत्र में संग्रह राजा को आवश्यक है । पिप्पली—पिप्पली मूल—चव्य—चित्रक—नागर—कुबेरक—मरिच—शिग्रु—भल्लातक—सर्षप—कुष्ठ—अजमोद—आकिणि—हिङ्गु—मूलक—धान्यक—कारवी—कुञ्जिका—याज्या—सुमखा—काल मालिका—।५७-६३।

फणिज्जकोथलशुनं भूस्तृणां सुरसन्तथा ।
कायस्था च वयस्था च हरितालं मन:शिला ।६४
अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमन्तथा ।
जया एरण्डकारण्डीरं सल्लकीहञ्जिका तथा ।६५
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायोहरितकानि च ।
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपट्टिका ।६६
एवमादीनि चान्यानि गण: कटुकसंज्ञित: ।
राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम ! ।६७
मुस्तञ्चन्दनह्रीवेरकृतमालकदारुः ।
दरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम् ।६८
दूर्वा पटोलकटुका दीर्घत्वक् पत्रकं वचा ।
किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ।६९

तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः ।
काकोदुम्बरिका दिव्या तथा चैव सुरोद्‌भवा ।७०

फणिज्ज, कोथ, लशुन, भूस्तृण, सुरस, कायस्थ, वयस्थ, हरिताल, मैनशिल, अमृता, रुदन्ती रोहिष, कुंकुम, जया एरण्ड, काण्डीर, सल्लकी, हञ्जिका, पित्ता, मूत्र, प्रायोहरितक, फल, सूक्ष्म एला, हिंगुपट्टिका इस प्रकार के सब धान्य और कटुक संज्ञा वाला गण । हे नृपोत्तम ! राजा को अपने दुर्ग में सबका सञ्चय करना चाहिए । मुस्त, चन्दन, ह्रीवेर, कृतमालक, दारु, दरिद्र, अनलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्बक, दूर्वा, पटोल, कटुका, दीर्घत्वक्, पत्रक, वचा, किरात, त्तिक्त, भूतुम्बी, विषा, अतिविषा, तालीस पत्र तगर सप्तपर्ण, विकङ्कता, काक, उदुम्बरिका, दिव्या, सुरोद्‌भवा ।६४-७०।

षड्ग्रन्था रोहिणी मासी पर्पटश्चाथ दन्तिका ।
रसाञ्जन भृङ्गराज पतङ्गो परिपेलवम् ।७१
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यासाकं गन्धनाकुली ।
रूपपर्णी व्याघ्रनखा मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ।७१
रम्भा चैवांकुरास्फोता तालास्फोता हरणुका ।
वेत्राग्र वेतसस्तुम्बी विषाणी लोध्रपुष्पिणी ।७३
मालतीकरकृष्णाख्यावृश्चिका जीविता तथा ।
पर्णिका च गुडूची च सगणस्तिक्तसञ्ज्ञकः ।७४
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
अभयामलके चोभे तथैव च विभीतकम् ।७५
प्रियङ्गु धातकीपुष्पं मोचाख्या चार्जुनासनाः ।
अनन्तास्त्रीतुवरिका स्योनाकङ्कटफलन्तथा ।७६
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम् ।
समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ।७७

षड्ग्रन्था, रोहिणी, मांसी, पर्पट, दन्तिका, रसाञ्जन, भृङ्गराज,

पतंगी, परिपेलव, दु:स्पर्शा, गुरुणी, कामा, श्याशाक, गन्धनाकुली, रूप-पर्णी, व्याघ्रनख, मंजिष्ठा, चतुरंगुला, रम्भा, अंकुरास्फोता, ताला स्फोता, हरणुका, वेत्राग्र, वेतस, तुम्बी, विषाणी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीविता, पर्णिका, गुडूची, सगण, तिक्त संज्ञावाला, इस तरह के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुरमें करना चाहिए। अभया, आमलक, बिभीतक, प्रियंगु, धातकी, पुष्प मोच, अर्जुनासन, अनन्ता, स्त्री, तुवरिका स्योन, लट्फल, भूर्जपत्र, शिलापत्र, पत्र, लोमक, समंगा, त्रिवृतामूल, कार्पास, गेरिक, अञ्जन ।७१-७७।

विद्रुमं स मधूच्छिष्ट कुम्भिकाकुमुदोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाकिशुका: शिशुरा शमी ।७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषा: पद्मकन्तथा ।
बिल्वोऽग्निमन्थ: प्लक्षञ्च श्यामकश्च वको धनम् ।७९
राजादनं करीरश्च धान्यकं प्रियकस्तथा ।
कङ्कोलाशोकवदरा: कदम्बखदिरद्वयम् ।८०
एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानिच ।
एवमादीनी चान्या निकषायाख्यामोमतोरस: ।८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ ! राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गताया तथैवच ।८२
वातधूमाश्च मार्गाणां दूषणानि तथैव च ।
धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव ।८३
विषाणां धारणें कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चाङ्गदा धार्या विषस्य शमनास्तथा ।८४

विद्रुम—मधूच्छिष्ठ—कुम्भिका—कुमुदोत्पल—न्यग्रोध—उदुम्बर--अश्वत्थ—किंशुक—शिशुप--शमी--प्रियाल--पीलुक---सारि---शिरीष—पद्मक—बिल्व—अग्निमन्थ—प्लक्ष—श्यामक-वक—घन—राजादन--

करीर—धान्यक—प्रियक–कंकोल–अशोक–बदर–कदम्ब–खदिर–इनके पत्र–सार—मूल और कुसुम इस प्रकार के तथा अन्य आदि कषाय नाम वाला रस माना गया है। हे नृपों में परमश्रेष्ठ ! राजा को चाहिए इन सबका प्रतत्नपूर्वक अपने पुर में सञ्चय करे। व्यंगता में मारण में योग्य कीट—मार्गों के वातधूम तथा दूषण राजाओं को दुर्ग में रखने चाहिए हे पार्थिव ! उनको मैं बताऊंगा। महीभुज को प्रयत्न पूर्वक विषों को मारण करना चाहिए। विचित्र अंगद तथा विष के शमन करने वाले भी रखने चाहिए ।७८-८४।

रक्षोभूतपिशाचघ्ना: पापघ्ना: पुष्टिवर्धना: ।
कलाविदश्च पुरुषा: पुरे धार्या: प्रयत्नतऽ ।८५
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान्
कुभृत्वान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे ।८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपन्नं समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम् ।
वणिग्जनैश्च वृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपति: सदैव ।८७

राजा के द्वारा अपने पुर में राक्षस, भूत और पिशाचों के हनन करने वाले–पापों का विनाश करने वाले—पुष्टि के बढ़ाने वाले कलाओं के वेत्ता पुरुष प्रयत्न पूर्वक रखने चाहिए ।८५। भीत—प्रमत्त—कुपित–विमानित—पापशील और कुभृत्यों को अपने पुर में कभी नहीं बसाना चाहिए ।८६। अनेक आयुध—अट्टालिकाओं के समूह से उत्पन्न तथा सम्पूर्ण धान्य एवं औषधियों से संयुक्त—वणिग्जनों के द्वारा समाकीर्ण और भलीभाँति रक्षित दुर्ग में ही राजा को सदैव निवास करना चाहिए ।८७।

९६—राजधर्म वर्णन (१)

रक्षोघ्नानि निषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृताम्बर ! ।१
विल्वाटकी यवक्षारं पाटलावाह्लिकोषणा: ।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तोनिक्वाथ: प्रोक्षणंपरम् ।२
सविषं प्रोक्षितं तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ।३
कवचाभरणं छत्रं बालव्यजनवेश्मनाम् ।
शेलु: पाटलातिविषा शिग्रुमूर्वा पूनर्नवा ।४
समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् ।
महादन्तशठन्तद्वम् प्रोक्षणं विषनाशनम् ।५
लाक्षाप्रियंगु मञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका ।
यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रु पित्तेनकल्पिता: ।६
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले ।
तत: कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत् ।७

महर्षि मनु ने कहा—हे धर्मधारियों में परमश्रेष्ठ ! राक्षसों के हनन करने और विषों का नाश करने वाले भी राजा का धारण करने अर्थात् रखने चाहिए उन अगदों को आप बतलाइये ।१। श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—विल्वाटकी, यवक्षार, पाटला, वाह्लिल कोषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी इनका क्वाथ सर्वश्रेष्ठ प्रोक्षण होता है । यदि कोई भी विषयुक्त हो तो उससे प्रोक्षित होकर वह तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है । यव, सैंधव, पानी, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, कवचाभरण, बाल व्यंजन, वेश्म, इनके विष का नाश शेलु, पाटल, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समङ्गा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोणित, और महादन्तशठ इन सबके उसी भाँति प्रोक्षण करने से हो जाया करता है ।२-४।

।५। लाक्षा, प्रियंगु, मजिष्ठा, ये सब समान भाग और एला (इलायची), हरेणुका, यष्टि नामवाली, मधुरा वभ्रुपित्त से कल्पित कर रखे। इसके अनन्तर मणि को हेम से बद्ध करके हाथ में धारण करना चाहिये।६-७।

संसृष्टं सविषन्तेन सद्यो भवति निर्विषम्।
मनोह्वया समीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपा: ।८
कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठा: पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिता: ।
शुनो गो: कपिलाश्च सौम्याक्षिप्तरोगद: ।६
विषजित् परमं कार्यं मणिरत्नञ्च पूर्ववत्।
मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्धा विषापहा।१०
हरेणमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुकामधु।
अक्षत्वक् सुरस लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि।११
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतैः प्रलेपिता: ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्योभवति निर्विष: ।१२
त्र्युषण पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम्।
सूक्ष्मैलात्रिवृतात्रं विडङ्गनीन्द्रवारुणी।१३
मधुकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत्।
तस्मादुष्णाम्बुना मावं प्रागुक्तं योजयेत्तत: ।१४
शुक्लं सर्जरसोपेतसर्षपा एलवालुकै: ।१५
सुवोगा तस्करसुरो कुसुमैरर्जुनस्य तु।
धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्।१६

इससे संसृष्ट सविष तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। मनोह्वया, शमीपत्र, तुम्बिका, श्वेत सर्षप, कपित्थ कुष्ठ, मञ्जिष्टा पित्त के द्वारा श्लक्ष्ण कल्पित किये हुए हे सौम्य ! कुत्ता, गौ और कपिल, के लिये अक्षिप्त यह दूसरा अगद होता है।८-६। पूर्व की भाँति मणिरत्न परम विषजित् करना चाहिए। मषिका और जतुका भी

हाथ में बांधने पर विष के अपहरण करने वाली होती है ।१०। हरेण मांसी, मञ्जिष्ठा, रजनी, हल्दी, मधुका, मधु, अक्षत्वक् सुरस, लाक्षा (लाख)—इनको पूर्व की ही भाँति श्वान् का पित्त लेकर पेषण करे और इनमे वादियों और पताकाओं पर प्रलेप करे तो श्रवण करके—देख करके और सूँघ करके तुरन्त ही विष से रहित हो जाया करता है। ।११-१२। त्रुषण—पाँचों लवण—मजीठ—दोनों प्रकार की हल्दी-छोटी इलायची-त्रिवृतापत्र-विडङ्ग, इन्द्र वारुणी, मधुक, वेतस और क्षौद्र, इन सबको विषाण में निधापित करो केवल उष्ण जल से पहिले बताये हुए को योजित करना चाहिए। शुक्लसर्ज रस से युक्त—सर्षप--और एलाबासुकों से समन्वितप्सुवोगा--तस्कर--सर तथा अर्जुन वृक्ष के पुष्प इनके द्वारा निर्मित धूप निवास गृह में देवे तो स्थावर और जङ्गम दोनों के विष का हनन हो जाया करता है ।१३-१६।

न तत्र कीटा न विषन्ददुंरा न सरीसृपाः ।
न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽय यत्र दह्यते ।१७
कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रु मवल्कलेः ।
मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकैः ।१८
क्वाथः सर्वादिकार्येषु काकमोचीयुतो हितः ।
रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन् ।१९
विषैर्न बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः ।
चूर्णैर्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः ।२०
दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्नैतिषादितम् ।
शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पंत्वङ्मलमेव च ।२१
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः ।
एकवीर ! महौषध्यः शृणु चातः परं नृपः ! ।२२

जिस स्थान में इस धूप को जलाया जाता है वहाँ पर कोई भी कीट नहीं रहते हैं। न कोई विष का प्रभाव ही रहता है और दद्दुंर

तथा सरीसृप भी नहीं रहा करते हैं। वहाँ पर कृत्या के भी कर्म्मों की स्थिति नहीं होती है।१७। चन्दन, क्षीर, पलाश, द्रुम वल्कल, मूर्द, एला, वालु, सरसा, नाकुली और तण्डुलीय इससे कल्पित क्वाथ जो कि काकमोची से युक्त हो तो वह सब उक्त कार्यों में हितप्रद होता है। रोचना पत्र नेपाली और कुंकुम से युक्त तिलों को हवन करने वाला नर-नारी, नृप प्रिय कभी भी विषों से वाधित नहीं हुआ करता है। हरिद्रा, मजीठ, किण ही कण और निम्बज इससे दिग्ध गात्र जो सब विषों से अर्दित हो शीघ्र ही निर्विषता को प्राप्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष के फल पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल इन पाँचों अंगों को गोमूत्र के साथ पीसकर डाले तो यह सब काम करने वाला अगद हो जाता है-ऐसा कहा गया है। हे एक वीर ! हे नृप ! इससे भी परम महौषधियों के विषय में मुझसे आप श्रवण कीजिए।१८-२२।

वन्ध्या कर्कोटकी राजन् ! विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा।
शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका।२३
सोमपिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या।
स्थले कमलिनी या च विशाली शंखमूलिनी ॥२४
चाण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापण करम्भिका।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या।२५
कोशातकी नक्तमाभं प्रियालञ्च सुलोचनी।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली।२६
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका।
जातुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका।२७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः।
जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका।२८

हे राजन् ! वन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुकान्य, उत्कटा, शतमूली, सितानन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमापिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थल

कमलिनी, विशाली, शंख मूलिका, चण्डाली, हस्ति मगधा, गोऽजापर्णी, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यमला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिन्धुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नत नागर कण्टका ।२३-२८।

नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका ।
कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुर्हंसपादिका ।२६
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपा सुखाकरा ।३०
रुजापहा वृद्धिकरी तथाचैव तु शल्यदा ।
पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी ।३१
तथामलकमन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ।३२
केशिनी वृश्चिकालीच महानागा शतावरी ।
गरुडीच तथा वेगा जले कुमुदिनीतथा ।३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या ।
उन्मादिनीसोमराजी सर्वरत्नानि पार्थिव ।३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषत: ।
जीवजाताश्च मणय: सर्वे धार्या: प्रयत्नत: ।३५

नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, कार्त्त स्वर, महानीला, कन्दुरु, हहंसमादिका, मण्डूक पर्णी, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्त-माला, महौषधी, आमलक, मन्दाक, श्याम चित्रफला, काकोली, क्षीर, काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, वाराही दोनों—तण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, सुरजापद, महानाभा, शतावरी, गरुडी, वेगा, जल में कुमुदिनी, स्थल में उत्पलिनी, महाभूमि-

लता, उन्मादिनी, सोमराजी, हे पार्थिव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मरकत आदि—विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक धारण करनी चाहिए।२९-३५।

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावैतालनाशनाः।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः।३६
सर्पतित्तिरगोमायुवस्त्र (क)मण्डकजाश्च ये।
सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवाः।
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये।३७
इत्युक्तमेतैः सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वैः स्वपुरं सुरक्षितम्।
राजा वसेत्तत्र गृहं सुशुभ्र गुणान्वितं लक्षणसंयुक्तम्।३८

राक्षसों के हनन वाले—विष के नाशक कृत्या और बैताल के नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्रों समुद्भव वाले—सर्प, त्तित्तिर, गोमायु, वस्त्र और मण्डकज—सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, मार्जार, द्वीपी और वानरों से समुत्पन्न—कपिञ्जल, गज, बाजि, महिष और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यों के द्वारा सुरक्षित अपने पुर में राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा का गृह सुशुभ्र-गुणों से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणों से सम्प्रयुक्त होना चाहिए।३६-३८।

—×—

९७—राजधर्म वर्णन (२)

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत्।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च।१
शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम्।
क्षयुद्योगः कथितो राजन् ! मासार्द्धं तु पुरातनैः।२

कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा बिसम् ।
दूर्वाक्षीरघृतमण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः ।३
नरं शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् ।
कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ।४
गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव ! ।
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्याविचारणा ।५
कार्पासस्था भुभङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् ।
सर्पनिर्वासिने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे ।६
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका ।
तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ! ।७

महर्षि मनु ने कहा—मही के भरण करने वाला अपने दुर्ग में जिन राज्य की रक्षा के रहस्यों को निवापित करे अथवा करावे आप कृपा करके उन तत्वों को बतलाइये ।१। श्रीमत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! शिरीष, उदुम्बर, शमी बीजपूर को घृत से प्लुक करे इसका पुरातन लोगों के द्वारा क्षुद्योग कहा गया है जो मास के अर्द्ध तक होता है ।२। कशेरु के फल और मूल, ईख का मूल, विस, दूर्वा, क्षीर घृत, से मण्ड सिद्ध होता है जो पर एवं मासिक होता है ।३। शस्त्र से हत हुए नर को प्राप्त हो जावे तो उसका मरण नहीं होता है । जहाँ पर कल्माष वेणु से विभावसु का जन्म करना चाहिए । हे पार्थिव ! जहाँ पर गृह में तीन बार अपसव्य किया जाता है । वहाँ पर अन्य कोई भी अग्नि नहीं जलती है—इस विषय में कोई विचरणा करने की आवश्यकता नहीं है । कार्पास में स्थित हो तो उससे भुजङ्ग का निर्मोचन हो जाता है । यह धूप निरन्तर सर्पों के निर्वासन करने के कर्म्म में परम प्रशस्त होता है ।३-६। सामुद्र सैन्धव, यव, विद्युत से दग्ध मृत्तिका, इससे जो गृह अनुलिप्त किया जावे तो हे नृप ! वह वेश्म अग्नि से कभी भी दग्ध नहीं किया जाता है ।७।

दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः ।
विषाच्च रक्ष्योनृपतिस्तत्र युक्ति निबोध मे ।८
क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिण: ।
अन्न वै प्राक् परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च ।९
वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा ।
नापरीक्षितपूर्वन्तु स्पृशेदपि महामति: ।१०
स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्तः सोद्वेगश्च निरीक्षते ।
विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते ।११
स्रस्तोत्तरीयो विमना: स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरके तथा ।१२
भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप ! ।
कण्डूयति च मूर्द्धानं परिलोड्याननन्तथा ।१३
क्रियासु त्वरितो राजन् ! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।
एवमादिनी चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ।१४

दिन के समय में दुर्ग में अग्नि की रक्षा करनी चाहिए । विशेष रूप से उस समय में रक्षा करनी आवश्यक है जब वायु वहन किया करता है । खास तौर से नृपति की सुरक्षा अवश्य ही करती चाहिए । इसमें जो युक्ति अमल में लाई जावे उसको भी तुम मुझसे समझ लो । ।८। क्रीड़ा के निमित्त राजा को मृगों और पक्षियों को धारण करना चाहिए । सर्व प्रथम अग्नि में अन्न की परीक्षा लेनी अत्यावश्यक है । अन्य तर पदार्थों में भी वस्त्र, पुष्प, अलङ्कार, भोजन तथा आच्छादन इन सबका महान मति वाले राजा को पहिले भली भाँति परीक्षा किये बिना कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए ।९-१०। यह वक्त्र सन्तप्त होने और उद्वेग के सहित विपत्तियों को देखता है । वहाँ पर दिये हुये विष की जो परीक्षा करता है अपने उत्तरीय वस्त्र को छोड़ देने वाला—उदास स्तम्भ कुड्य आदि से आपने आपको ढक लिया करता है अर्थात्

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है।११-१२। हे नृप ! भूमि पर लिखता है—गरदन को घुमाया करता है—मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परि-लोड़न किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होता है। इसी तरह के जो चिन्ह होते हैं उन विषद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए।१३-१४।

समीपेर्विक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितैः।
इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम्।१५
एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते।१६
सविषेऽऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा।१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम !।
विकृतिञ्च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप !।१८
गतिस्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च।१९
विक्रोशतिशुकोराजन् ! सारिका वमतेततः।
चामीकरोऽन्यतोयातिमृत्युंकारण्डवस्तथा।२०
मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः।
हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति।२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरा से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए। इन्द्रायुध के वर्ण के समान रूक्ष, स्फोट से संयुक्त, एकावर्त्त, दुर्गन्ध से युक्त होकर अत्यन्त चट-चट ध्वनि किया करती है। उसके धूम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है।१५-१६। हे पार्थिव ! विष से युक्त अन्न में मक्खियाँ विलीन नहीं हुआ करती है तथा सविष अन्न

के संस्पर्श होने पर वे मक्षिकाएँ उसी में विलीन हो जाया करती हैं। ।१७। हे पार्थिव श्रेष्ठ ! चकोर पक्षी की दृष्टि विगत अर्थात् हीनता को प्राप्त हो जाया करती है। हंस की गति जो कि अति प्रशंसनीय होती है स्खलित हो जाया करती है—भृङ्गराज कूजन करता है। क्रौंच मद को प्राप्त हो जाता है और कृकवाकु विरुत करने लगता है। हे राजन् ! शुक्र विक्रोशन करता है—सारिका वमन करती है। चामोकर अन्य ओर जाता है—कारण्डव मृत्यु को प्राप्त होता है—हे राजन् ! वानर मेहन करता है—जीव जीवक ग्लानि करता है—बभ्रु हृष्ट रोमों वाला होता है और पृषत रुदन करता है।१८-२१।

हर्षमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप ! ।
अन्नञ्च सविषं राजश्चिरेण च विपद्यते ।२२
तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्युषितोपमम् ।
व्यापन्नरसगन्धञ्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ।२३
व्यञ्जनानान्तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः ।
ससैन्धवानां द्रव्याणां जायतेफेनमालिता ।२४
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा ।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम ! ।२५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च ।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ।२६
घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सत्तुनः ।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्य च तथारुणा ।२७
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते ।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा ।२८

हे नृप ! विष के संदर्शन से शिखी हर्ष को प्राप्त होता है। हे राजन् ! विष के सहित अन्न चिरकाल में विपन्न करता है। उस समय में निःश्राव्य—व्यापन्न रस और गन्ध से युक्त—चन्द्रिकाओं से समन्वित

और पक्ष पर्युषितोपम हो जाता है।२२-२३। व्यञ्जनों में शुष्कता— द्रव पदार्थों में बुदों की उत्पत्ति और जो सैन्धव से युक्त पदार्थ है उनमें फेन मालिता उत्पन्न हो जाया करती है। जो सस्यों की राजि है ताम्र वर्ण वाली और पय की आभा नीली हो जाती है। मद्य एवं तोय की आभा कोकिला के तुल्य हो जाया करती है। हे नृपोत्तम ! धान्याम्ल की कृष्ण और को द्रव की कपिल-तक्र की मधुश्याम, नील, पीत, हो जाया करती है। घृत की उदक के समान तथा कपोत जैसी आभा हो जाती है। माक्षिक (शहद) की हरी एवं तैल की अरुण आभा होती है। जो फल अपक्व होते हैं उन पर प्रकोप होता है तथा माल्यों की म्लानता हो जाया करती है।२४-२८।

मृदुता कठिनानां स्यात् मृदूनाञ्च विपर्ययः।
सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता।२६
श्यामनण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैवच।
लोहानाश्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता।३०
अनुलेपनगन्धानां माल्यानाञ्च नृपोत्तम।
विगन्धता च विज्ञेया तथा राजन् ! जलस्य तु।३१
दन्तकाष्ठत्वचः श्यामास्तनुसत्त्वथैव च।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम !।३२
तस्माद्राजा सदा तिष्ठेत् मणिमन्त्रौषधीगणैः।
उक्तैः सरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः।३३
प्रजातरोर्मूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम्।
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र !।३४

जो कठिन एवं कठोर द्रव्य हैं उनमें कोमलता और जो स्वभाव से ही मृदु पदार्थ हैं उनमें विपर्यय हो जाया करता है। सूक्ष्म पदार्थों के रूप का दलन होता है तथा अतिरंगिता आ जाया करती है वस्त्रों में श्याम मण्डलता होती है। सर्व प्रकार के लोह और मणियों में मल के

पङ्क की उपदिग्धता हो जाती है। हे नृपोत्तम है। जो अनुलेपन करने के द्रव्य हैं जिनमें सुन्दर गन्ध होती है उसमें और माल्यों में तथा जल में विगन्धता उत्पन्न हो जाया करती है। दन्तकाष्ठ की त्वचा श्याम और तनु सत्व हो जाती है। हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से इन चिन्हों को जान लेना चाहिये। इसी कारण से राजा को सर्वदा मणि—मन्त्र और औषधों के गणों से संयुत होकर ही निवास करना चाहिए अथवा स्थित रहना चाहिए इन उक्त पदार्थों से अच्छी तरह से संरक्षित एवं प्रमाद से परिवर्जित राजा को होना चाहिए।२६-३३। यहाँ पर अवनीश प्रजा के तरु का मूल होता है। उसका संरक्षण रहने से ही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है। हे रविवंश चन्द्र ! इसी कारण से सब प्रकार के प्रयत्न से नृप की रक्षा करनी चाहिए।३४।

६८—राजधर्म वर्णन (३)

राजन् ! पुत्रस्य रक्षा च कर्त्तव्या पृथिवीक्षिता।
आचार्यश्चात्र कर्त्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः।१
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत्।
रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामङ्कारयेत्सदा।२
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाप्तो मिथ्या प्रियं वदेत्।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत्।३
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः।
तथा च विनयेदेनं यथा च यौवनगोचरे।४
इन्द्रियैर्नापकृष्येत्म सतां मार्गात्सुदुर्गमात्।
गुणाधानमशक्यस्तु यस्य कर्तुं स्वभावतः।५
बन्धनं तस्य कर्त्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते।६

अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये और रक्षा करने वालों के सहित नित्य युक्त यहाँ पर आचार्य को नियुक्त करना चाहिए ।१। उस पुत्र को धर्म—काम और अर्थ शास्त्रों की तथा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवानी चाहिए रथ में तथा कुञ्जर में भी दीक्षित करावे और सदा इस अपने पुत्र से व्यायाम करवाना चाहिए ।२। इस पुत्र को अनेक शिल्पों की शिक्षा दिलवावे । ऐसा प्रयत्न करे कि वहाँ आप्त अर्थात् सत्य वक्ता होवे और कभी उसे मिथ्या बोलने का अवसर ही न होवे । राजा के पुत्र के शरीर की रक्षा के मिष से पक्षियों को नियोजित करना चाहिए ।३। क्रुद्ध-लुब्ध और अपमानित हुए व्यक्तियों के साथ इस पुत्र का सङ्ग कभी भी न होने देवे । जैसे ही यह यौवन में पदार्पण करे इसको विनीत बनाना चाहिए ।४। सज्जनों के सुदुर्गम मार्ग से इन्द्रियों के द्वारा अपकृष्ट नहीं होने देवे । स्वभाव से ही अशक्य गुणों का आधान करना चाहिए । किसी गुप्त देश में सुख से समन्वित उसका बन्धन करना चाहिए । जो राजकुमार अविनीत होता है उसका कुल शीघ्र ही विशीर्ण हुआ करता है । सभी अधिकार के कार्यों में विनीत का नियोजन करना चाहिए । आदि में छोटे पद पर इसके पश्चात् क्रम से बड़े पदों पर भी नियुक्तियाँ करे ।५-७।

मृगयां पानमक्षांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः ।
एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः ।८
बहवो नरशार्दूल ! तेषां सङ्ख्या न विद्यते ।
दिवा स्वापं क्षितीशस्तु विशेषेणविवर्जयेत् ।९
वाक्पारुष्यं न कर्तव्य दण्डपाद ष्यमेव च ।
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता ।१०
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत् ।

अर्थानां दूषणञ्चैकं तथार्थेषु च दूषणम् ।११
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ।१२
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ।१३
कामः क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च ।
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ।१४

जो पृथिवी का स्वामी हो उसको मृगया (शिकार)—मदिरा पान और अक्षक्रीड़ा (द्यूत) का परिवर्जन कर देना चाहिए। इनका जो सेवन किया करते हैं वे भूपतिगण विनष्ट हो जाया करते हैं। हे नरशार्दूल! ऐसे बहुत-से राजा लोग हैं उनकी कोई भी संख्या नहीं है राजा का कर्त्तव्य है कि वह कभी भी वाणी की कठोरता न करे तथा दण्ड देने में भी अत्यन्त कठोर उसे नहीं होना चाहिए। नृपति को परोक्ष में किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। अर्थ के दो प्रकार के दूषण का वर्जन राजा को करना आवश्यक है—एक अर्थों का दूषण तथा अर्थों में दूषण। प्राकारों का समुच्छेद और दुर्गादि की असत्क्रिया यही अर्थों का दूषण कहा गया है तथा विप्रकीर्णता भी अर्थों का दूषण होता है। अनुचित देश तथा अनुपयुक्त काल में जो दान दिया जाता है और दान का जो पात्र ही नहीं है उसको दान देना एवं असत्कर्म्म में प्रवर्त्तन करना अर्थों में दूषण बताया गया है। पृथिवी के स्वामी को प्रयत्न पूर्वक आदर के सहित काम—क्रोध—मद—मान—लोभ हर्ष इनका वर्जन अवश्य ही कर देना चाहिए।८-१४।

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः ।
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ।१५
कृत्वा च विजयन्तेषां शत्रून् वाह्यांस्ततो जयेत् ।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयातुल्याभ्यन्तरकृत्रिमा: ।१६
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत् ।
पितृपितामहोमित्रममित्रञ्च तथा रिपो: ।१७
कृत्रिमञ्च महाभाग ! मित्रं त्रिविधमुच्यते ।
तथापि च गुरु: पूर्वं भवेत्तत्रापि चाहृत: ।१८
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च ।
कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ।१९
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तित: ।
तन्मूलत्वात्तथाङ्गानां सतुरक्ष्य: प्रयत्नत: ।२०
षड्ङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नत: ।
अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधी: ।२१

इन सब पर अपना पूर्ण विजय करके ही राजा को फिर अपने भृत्यों पर भी जय प्राप्त करना चाहिए। जब भृत्यों पर विजय करली जावे तो फिर इसके उपरान्त पौरों एवं जानपदों पर विजय करना आवश्यक होता है ।१५। इन सब पर विजय को स्थापित करके इनके अनन्तर ही राजा को बाहिर रहने वाले शत्रुओं पर जय का लाभ लेना चाहिए। जो बाह्य शत्रु होते हैं वे अनेक प्रकार के हुआ करते हैं। वे तुल्य—अभ्यन्तर और कृत्रिम होते हैं ।१६। वे यथा पूर्व बहुत बड़े हुआ करते। इसलिए उनमें यत्न परायण राजा को होना आवश्यक है। पिता पितामह के समय से चले आने वाला मित्र तथा रिपु का अमित्र (शत्रु) हे महाभाग ! कृत्रिम मित्र तीन प्रकार का कहा जाता है। तो भी पूर्व गुरु होता है उसमें भी आहृत होना चाहिए। हे धर्मज्ञ ! स्वामी—अमात्य—जनपद—दुर्ग—दण्ड—कोश और अमित्र इन सात अङ्गों वाला राज्य कहा जाया करता है। यद्यपि राज्य के ये उपर्युक्त सात अङ्ग होते हैं तो भी इन सातों में भी मूल स्वामी ही कीर्तित किया गया है। सभी अङ्गों का उसको मूल होने से उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा

करनी चाहिए। अन्य छः अंगों की भी उसके द्वारा प्रयत्न के साथ सुरक्षा करनी चाहिए। इन अंगों में जो कोई एक द्रोह किसी भी अंग से करता है वह अल्प बुद्धि वाला ही होता है।१७-२१।

बन्धस्तस्य तु कर्त्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता।
न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते।२२
न भाव्यं दारुणनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः।२३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत्।
भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत्।२४
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशंङ्गतम्।
व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत्।२५
लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनो भवेत्।
शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्विक्तचेतसः।२६
जना विरागमायान्ति सदादुःसेव्यभावतः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सर्वस्यैव महीपतिः।२७
वध्येष्वपि महाभाग ! भ्रूकुटिं न समाचरेत्।
भाव्यंधर्मभृतांश्रेष्ठ ! स्थूललक्ष्येण भूभुजा।२८

राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे द्रोह करने वाले व्यक्ति का बन्ध कर देवे और शीघ्र ही उसको बाँध कर बन्ध कर देना चाहिए। राजा को मृदु नहीं होना चाहिए जो राजा मृदु होता है वह परिभूत हो जाया करता है।२२। राजा अत्यन्त दारुण भी नहीं होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्ण राजा से प्रजाजन उद्विग्न हो जाया करते हैं। जो राजा उचित समय पर मृदु होता है तथा आवश्यकताके अनुसार उचित अवसर पर दारुण होता है वह दोनों लोकों की अपेक्षा वाला हुआ करता है और उसके दोनों ही लोक सफल हुआ करते हैं। राजा को अपने भृत्योंके साथ कभी भी परिहास नहीं करना चाहिए। जो राजा हर्ष के वशंगत हो

जाया करता है उसको भृत्य परिभूत कर दिया करते हैं। राजा को सभी प्रकार के व्यसनों को परिवर्जित कर देना चाहिए। लोक के संग्रह के लिए यदि कोई व्यसन करने वाला भी होवे तो उसे कृतक व्यसनी ही होना चाहिए। जो नरेन्द्र शौण्डीर होता है उससे नित्य ही उद्विग्न चित्त वाले मनुष्य विराग को प्राप्त हो जाते हैं और उनके हृदय में सदा दुःसेव्य भावना उत्पन्न हो जाया करती है। महीपति का कर्त्तव्य है कि सभी के साथ मुस्कराते हुए भाषण करने वाला होवे। जो लोग अपराधों के कारण बध के भी योग्य हों हे महाभाग! उन पर भी राजा को अपनी भौंहें तिरछी नहीं करनी चाहिए। हे धर्मधारियों में परम श्रेष्ठ! राजा को सर्वदा स्थूल लक्ष्य से युक्त ही होना चाहिए।२३-२८।

स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वा भवति मेदिनी।
अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः।२९
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवंम्भवेत्।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि।३०
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते।
राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्य नृपोत्तम!।३१
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्।
कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः।३२
नारब्धानि महाभाग! तस्य स्याद्वसुधावशे।
मन्त्रमूलं सदाराज्यं तस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः।३३
कर्तव्या पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा।
मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनां सुखावहः।३४
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।३५
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।
नयस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा।३६

जिस नृप का मूल लक्ष्य होता है उसकी यह सम्पूर्ण भूमि वश-गामिनी हुआ करती है। पार्थिव को समस्त कर्मों में दीर्घसूत्री नहीं रहना चाहिए। जो नृपति दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्मों की हानि निश्चित रूप से हो जाया करती है। राग में—हर्ष में—मान में—द्रोह में—पाप कर्म्म में और अप्रिय कर्त्तव्य में दीर्घसूत्र होना प्रशस्त माना गया है। हे नृपोत्तम ! राजा को अपना मन्त्र संवृत रखने वाला सर्वदा होना चाहिये। जो राजा अपने मन्त्र को असंवृत रखता है उसको सभी आपत्तियां निश्चित रूप से आ जाया करती है। जिस राजा के कार्य्य किये जाने पर ही लोगों को मालूम हुआ करते हैं और हे महाभाग ; आरम्भ किये हुये हुये या पूर्व में नहीं ज्ञात होते हैं उस राजा के वश में यह समग्र वसुधा हुआ करती है। राज्य का मूलतत्व मन्त्र ही सदा होता है इसलिए मन्त्र को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना चाहिए। मन्त्र के भेद से होने वाले भय से राजाओं को सदा उसे पूर्ण रक्षित रखना आवश्यक है। मन्त्र के ज्ञाता के द्वारा सुसाधित मन्त्र सभी सम्पत्तियों का और सुख का देने वाला हुआ करता है। मन्त्र के छल से बहुत से राजा लोग विनष्ट हो गये हैं। आकाश—इङ्गित—गति—चेष्टा—भाषित—नेत्र तथा मुख की विकृति—इनके द्वारा अन्तर्गत मन का ज्ञान हो जाया करता है और जो नीति शास्त्र में कुशल होते हैं वे सभी कुछ मन का भाव जान लिया करते हैं और जो ऐसे कुशल हैं उनके वश में यह सम्पूर्ण वसुन्धरा रहा करती है।२९-३६।

भवतीह महीपाले सदा पार्थिनन्दन !।
नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह।३७
नारोहेद्विषमां नावमपरीक्षितनाविकम्।
ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः।३८
तानानयेद्वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।
यथा न स्यात् कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया।३९

तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता ।
महोद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।४०
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।४१
तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहम्भवेत् ।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ।४२

हे पार्थिव नन्दन ! ऐसे परम—कुशल राजा के वश में यहाँ पर यह पृथ्वी वशीभूत रहा करती है । राजा को कभी एक अकेले ही मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए और बहुतों के साथ भी अपने गुप्त मन्त्रों के विषय में मन्त्रणा नहीं करे । राजा को कभी भी विषम नौका पर समारोहण नहीं करना चाहिये जिसके नाविक के विषय में पहिले परीक्षण नहीं कर लिया हो । जो इसकी भूमि पर विजय प्राप्त करने वाले परिपन्थी हों उन सबको साम आदि उपक्रमों के द्वारा अपने वश में ले आना राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए । जिससे प्रजाओं के अनवेक्षण से कृशीभाव न होने पावे । अपने राष्ट्र का परिरक्षण करने वाले नृपों को उसी भाँति करना चाहिए कि मोह से जो अनवेक्षण करके अपने राष्ट्र का अपनी ओर आकर्षण कर लेवे । जो ऐसा नहीं करता है वह नृप बान्धवों के सहित शीघ्र ही अपने राज्य से और जीवन से भी भ्रष्ट हो जाया करता है । अतएव ऐसा ही होवे जो भृत–वत्स—जातबल और कर्म के योग्य होवे । हे महाभाग ! राष्ट्र को उसी भाँति करे जो भृत और कर्म सह हो जावे । जो राष्ट्र पर अनुग्रह किया करता है वह राज्य का परिरक्षण करता है ।३७-४२।

सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत् फलम् ।
गृह्याद्धिरण्यधान्यञ्च महीं राजासु रक्षिताम् ।४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्राय च रक्षिता ।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ।४४

गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च ।
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलन्तेभ्यस्तथैव च ।४५
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचित्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ।४६
एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवयश्चापिपराचलक्ष्मी ।४७

जो संजात है उसको उपजीवित करे तो महान् फल वह प्राप्त किया करता है । वह राजा हिरण्य—धान्य और सुरक्षित मही का ग्रहण करता है । बड़े भारी प्रयत्न से अपने राष्ट्र की जो रक्षा करने वाला है वह नित्य ही अपने लोगों से और दूसरों से माता तथा पिता की भाँति ही समादर प्राप्त करता है । राजा का कर्त्तव्य है कि वह सदा इन्द्रियों को संयत एवं गोपित करे और निरन्तर उनसे उपयुक्त फल प्राप्त करना चाहिए ।४३-४५। दैवमानुष विधान में सम्पूर्ण यह कर्म अधीन है उन दोनों में जो दैवी विधान है वह विशेष चिन्तन के योग्य नहीं है और पौरुष में ही क्रिया विधान रहा करती है ।४६। इस प्रकार से इस मही के पालन करने वाले इस नृप का परम लोकानुराग हुआ करता है । जब लोक का अनुराग राजा में होता है तो उसी से समुत्पन्न होने वाली लक्ष्मी हुआ करती है और लक्ष्मीवान् की ही परालक्ष्मी होती है ।४७।

—×—

९९—दैव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा ?

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे !
अत्र मे संशयो देव ! च्छेतुमर्हस्यशेषतः ।१
स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।२

प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ।३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्विकं मनुजोत्तम ! ।
पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ।४

कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ।५

पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्रार्थितव्यं फलं नरैः ।
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषर्जिताः ।६
तस्मात्त्रिकालं संयुक्त दैवन्तु सफलंभवेत् ।
पौरुषं दैवसम्पत्या काले फलति पार्थिव ! ।७

महर्षि मनु ने कहा—हे देव । दैव और पुरुषकार में कौन बड़ा है ? यह मुझे बतलाइये । इसमें मुझे संशय हो रहा है सो इसका छेदन आप पूर्णतया कर दीजिये ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दैव नाम वाला जो कर्म है वह भी अपना ही कर्म्म समझना चाहिये क्योंकि वह वही अपना किया हुआ कर्म है जो दूसरे (प्रथम) देह के द्वारा अर्जित किया गया है । इसीलिये मनीषी लोग इस संसार में पौरुष को ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ।२। यदि दैव प्रतिकूल भी होता है तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाया करता है । ऐसा देखा जाता है कि जो मंगल आचार से युक्त और नित्य ही उत्थानशाली लोग होते हैं वे पौरुष से प्रतिकूल दैव को विनिष्ट कर देते हैं ।३। हे मनुओत्तम ! जिन पुरुषों का पूर्व जन्मों में किया हुआ सात्विक धर्म होता है ऐसे कुछ पुरुषों का अच्छा फल बिना ही पौरुष के किये देखने में आता है ।४। लोक में राजस कर्म का फल कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । तामस कर्म का फल कठिन कर्म्म के द्वारा समझ लो ।५। हे राजन् ! पौरुष के द्वारा मनुष्यों को प्रार्थित फल की प्राप्ति हो जाया करती है । जो मनुष्य पौरुष से वर्जित हुआ करते हैं वे तो केवल एक दैव को ही जाया

करते हैं ।६। इसलिये त्रिकाल से संयुक्त दैव सफल हुआ करता है। हे पार्थिव ! पौरुष जो है वह दैव की सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है ।७।

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम ! ।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम् ।८
कृष्टिवृष्टिसमायोगं दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ।९
तस्मात्सदैव कर्तव्यं सधर्मं पौरुषं नरैः ।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ।१०
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणाः ।
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ।११
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या—
नुत्थानयुक्तान्पुरुषान् हि लक्ष्मीः ।
अन्विष्य यत्नात् वृणुयान्नृपेन्द्र !
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ।१२

हे पुरुषोत्तम ! दैव-पुरुषकार और काल—ये तीनों का तिगड्डा पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता है ।८। कृष्टि और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं। वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते हैं और असमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नहीं देते हैं। इससे मनुष्यों को सदैव धर्म के सहित पौरुष करना ही चाहिये। चाहे विपत्ति भी क्यों न हो, पुरुषकार करे जिसका इस लोक में और परलोक में निश्चित फल होता है। जो आलसी नर होते हैं वे और जो केवल दैव को ही मानने में परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से उत्तम धर्म का समाचरण करना चाहिए। हे नृपेन्द्र ! यह लक्ष्मी अलस दैव-परायण मनुष्यों को त्याग

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए।९-१२।

१००—राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णज

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते !।
लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम !।१
सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर !।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव।२
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु।
द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्च तथ्यमेव च।३
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते।
यत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम।४
महाकुलीना ऋजवो धर्मंनित्या जितेन्द्रियाः।
सामसाध्या न चातथ्यन्तेषु सामप्रयोजयेत्।५
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादि वर्णनम्।
तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम्।६

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युति वाले ! हे सुरोत्तम ! अब आप साम पूर्वक जो उपाय हों उनका वर्णन कीजिए। उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये।१। श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं। मैं अब उनको कहता हूँ सो आप मुझसे उनका श्रवण करलो। यह साम दो प्रकार का कहा गया है। एक तथ्य साम होता है और दूसरा अतथ्य

साम हुआ करता है। २-३। इन दोनों में अतथ्य साम साधु पुरुषों के आक्रोश के लिये ही हुआ करता है। हे नरोत्तम ! उनमें प्रयत्नपूर्वक साधु साम ही साध्य होना चाहिये।४। महान् कुलीन, हुआ करते हैं। उनमें कभी भी अतथ्य साम का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथ्य साम का ही प्रयोग करना चाहिये जिसमें कुल और शील आदि का वर्णन होता है तथा किये हुए उसके उपचारों का वर्णन किया जाता है। ।५-६।

अनयैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापन स्वकम् ।
एवं साम्ना च कर्त्तव्या वशगा धर्मतत्परा: ।७
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुति: ।
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारम् ।८
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम् ।
असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत् ।९
ये शुद्धावंशा ऋजव:प्रणीता धर्मेस्थिता: सत्यपराविनीता:
ते सामसाध्ता:पुरुषा:प्रदिष्टा मानोन्नता ये सततञ्च राजन् ।१०

इसी युक्ति से अपनी कृतज्ञता का ख्यापन इस प्रकार से साम के द्वारा धर्म में परायण मनुष्य अपने वशवर्ती करने चाहिए ।७। यद्यपि साम के द्वारा राक्षस भी ग्रहण किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है तो भी असाधु पुरुषों में प्रयोग किया हुआ यह–कभी उपकार करने वाला नहीं होता है ।८। जो असाधु पुरुष होते हैं वे सामवादी पुरुष को अतिशङ्कित है—ऐसा ही हमेशा जाना करते हैं। इसीलिए इस साम का प्रयोग उनमें वर्जित ही कर देना चाहिए। जो शुद्ध वंश वाले-सरल सीधे-प्रणीत-धर्म में स्थित-सत्य परायण और विनीत पुरुष हैं उन्हीं पुरुषों को साम के द्वारा साध्य कहा गया है। हे राजन् ! जो निरन्तर ही मानोन्मत्त होते है वे ही साम से साध्य हुआ करते हैं ।९-१०।

१०१–राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन

परस्परन्तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ।१
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति ।
ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशन्ततः ।२
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद्दर्शयेद्भयम् ।
एवं हि भेदयेद्भिन्नाम् यथावद्वशमनायेत् ।३
संहितानि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहाः ।
भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदः ।४
स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च ।
परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम् ।५
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्येहि भेदिताः ।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राजार्थवादिभिः ।६
अन्तःकोपो वहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् ।
अन्तःकोपो महांस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम् ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो दुष्ट पुरुष परस्पर क्रुद्ध—भीत और अवमानित हैं। उनका भेद प्रयुक्त करना चाहिये क्योंकि वे लोग भेद के द्वारा ही साध्य होते हैं—ऐसा माना गया है ।१। जो लोग जिस ही दोष से दूसरे से भी नहीं करते हैं ये उस दोष के पात से अत्यन्त ही भेदन करने के योग्य होते हैं ।२। अपनी आशा को दिख-लावे और दूसरे से भय का प्रदर्शन करना चाहिए। इसी प्रकार से मित्रों का भेदन करे और यथावत् उनको अपने वश में लाना चाहिये ।३। जो संहित हैं वे बिना भेद के इन्द्र के द्वारा भी सुदुःसह हुआ करते हैं। इसलिये ऐसे अवसर पर नय शास्त्र के पण्डित लोग भेद की ही प्रशंसा किया करते हैं। अपने मुख से भेद का आश्रय करे और पराये मुख से

भेद ग्रहण करे। अतएव भली भाँति भेद की जाँच करके ही पराये मुख से सुने हुए भेद को मानना चाहिए ।४-५। तुरन्त ही अपने कार्य का उद्देश्य करके कुशल पुरुषों के द्वारा जो भेदित होते है वे ही भेदित विनिर्दिष्ट होते हैं और राजा के द्वारा अथवादियों से भेदित नहीं हुआ करते हैं ।६। जहाँ पर राजाओं का अन्त:कोप और बहि-कोप हुआ करता है। इनमें जो अन्त:कोप होता है वह महान् हैं और नाश करने वाला होता है जो नृपों का विनाशक है ।७।

साम्ना न कोपोबाह्यस्तु कोप: प्रोक्तो महीभृव: ।
महिषीयुवराजभ्यां तथासेनापतेर्नृप ।८
अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रे तथैवच ।
अन्त:कोपो विनिर्दिष्टो दारुणं पृथिवीक्षिताम् ।९
बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिव: ।
शुद्धान्तस्तु महाभाग ! शीघ्रमेव जयी भवेत् ।१०
अपि शक्रसमो राजा अन्त:कोपेन नश्यति ।
सोऽन्त: कोप: प्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्योभहीभृता ।११
परत: कोपमुत्पाद्य भेदेन विजियीषणा ।
ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ।१२
रक्ष्यञ्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मन: ।
ज्ञातय: परितप्यन्ते सततं परितापिता: ।१३
तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा ।
ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्कर: ।१४
न ज्ञातिमनुगृह्णान्ति न ज्ञाति विश्वसन्ति च ।
ज्ञातिभिर्भेदनायास्तु रिवस्ते ने पार्थिव: ।१५
भिन्ना हि शक्या रिपव:प्रभूता:स्वल्पेनसैन्यैन निहन्मानो ।
सुसंहतानाहि तदस्तुभेद: कार्योरिपूणानयशास्त्रविद्भि: ।१६

राजा का कहा हुआ कोप जो कोप बाह्य होता है वह साम के

द्वारा शान्त नहीं होता है। हे नृप ! राजाओं का अन्तःकोप महिषी-युवराज-सेनापति-अमात्य—मन्त्रों और राजपुत्र का महान् दारुण विनिर्दिष्ट किया गया है।८-९। सुमहान् बाह्य कोप के समुत्पन्न होने पर भी हे महाभाग ! अन्तःकरण में शुद्ध सत्ता बहुत ही शीघ्र जयशील हुआ करता है।१०। भले ही कोई राजा इन्द्र के समान ही क्यों न होवे वह भी अन्तःकोप से विनष्ट हो जाया करता है। इस कारण से राजा के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अन्तःकोप की रक्षा करनी चाहिए।११। विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले के द्वारा भेद से दूसरे से कोप का उत्पादन करावे दूसरों के 'विजिगीषु' को ज्ञातियों का भेदन करना चाहिए।१२। तथा अपना ज्ञाति भेद अत्यधिक प्रयत्न से रक्षित रखना चाहिए। परितापित की हुई ज्ञातियाँ निरन्तर परितप्त हुआ करती हैं।१३। तो भी सुगम्भीर चित्त के रखने वाले को उनका दान तथा मान से ग्रहण करना चाहिए। उनके साथ भेद करना तो महान् भयङ्कर हुआ करता है।१४। राजाओं के द्वारा शत्रुगण ज्ञातियों से भेदन करने के योग्य होते हैं अर्थात् शत्रुओं की ज्ञातियों में भेद कर देना चाहिए और ऐसा कर देवे कि वे अपनी ज्ञातियों पर अनुग्रह तथा विश्वास बिल्कुल ही नहीं करें।१५। भेद के द्वारा भिन्न किये हुए बहुत से शत्रु भी युद्ध में बहुत ही थोड़ी सेना के द्वारा मारे जा सकते हैं नये शास्त्र के ज्ञाताओं को जो सुसहृत हो उनका भेद कर देवे और रिपुओं का भेद अवश्य ही कर देना चाहिए।१६।

१०२—राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्।१
न सोऽस्ति राजन् ! दानेन वशगो यो न जायते।
दानेन वशगा देवा भवन्ती हसदानृणाम्।२

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम ! ।
विप्रो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते ।३
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् ।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान् ।४
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः ।
न गृह्णान्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः ।५
अन्यत्रापि कृतं दान करोत्यन्यान्यथा वशे ।
उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः ।६
दानं श्रेष्ठतमं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् ।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ।७
न केवल दानपरा जयन्ति भूलोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासा ।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ये जितने भी उपाय बतलाये गये हैं उन सब में दान का उपाय सबसे परम श्रेष्ठ उपाय माना गया है । यहाँ संसार में अच्छी तरह से दिए हुए दान से मनुष्य उभय लोकों का विजेता हो जाया करता है ।१। हे राजन् ! इस लोक में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्ती न हो जावे । यह दान तो एक ऐसा उत्तम साधन है कि इस दान से सदा मनुष्यों के वश में देवगण भी आ जाया करते हैं ।२। हे नृपोत्तम ! सम्पूर्ण प्रजा दान को ही समाश्रित कर के उपजीवित रहा करती हैं । इस लोक में विप्र तो सबका ही दानवान् उत्पन्न हुआ करता है ।३। दान देने वाला राजा बहुत ही शीघ्र शत्रुओं को जीत लिया करता हैं और जो दान वाला होता है वही संहृत परों को भेद युक्त कर सकता है ।४। यद्यपि ऐसे भी पुरुष होते हैं जो अलुब्ध और गम्भीर सागर के समान हैं जो ग्रहण नहीं किया करते हैं तो भी पक्षपाती हो जाते हैं ।५। अन्यत्र भी किया हुआ दान किस तरह से अन्यों को वश में करा दिया करता है किन्तु मनुष्य उपायों से दिये हुए दान को

परम श्रेष्ठ तप कह कर इसकी प्रशंसा किया करते है। यह दान ही पुरुष का परम श्रेष्ठ साधन होता है और दान की परम श्रेष्ठता कही जाती है। जो दानवान् होता है वह ही लोक में सदा पुत्रत्व में धारण किया जाता है।६-७। जो दान परायण प्रवर पुरुष होते हैं वे केवल एक इस भूलाक को ही नहीं जीतते हैं वे तो सुदुर्जय राज सुरेन्द्रलोक को भी जीत लिया करते हैं जो देवगणों के निवास का स्थल होता है।८।

—×—

१०३—राजधर्म वर्णन में दण्डोपाय वर्णन

न शक्या वशे कर्त मुपायत्रितयेन तु।
दण्डेन तान् वशीकुर्यात् दण्डो हि वशकृन्नृणाम् ।१
सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता।
धर्मशास्त्रानुसारेण स सहायेन धीमता ।२
तस्य सम्यक् प्रणयनं यथाकार्यं महीक्षिता।
वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्ममान्निष्परिग्रहान् ।३
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान्।
समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ।४
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान्।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति ।५
अदण्ड्यान् दण्डयेद्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकञ्च प्रपद्यते ।६
तस्माद्राजा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः।
दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—जो मनुष्य साम—दाम और भेद—इन तीनों उपायों से भी वश में नहीं किये जा सकते हैं उनको दण्ड से

ही अपने वश में करना चाहिए क्योंकि गूढ़ दण्ड ऐसा साधन है जो मनुष्यों को वश में कर देने वाला होता है ।१। राजा के द्वारा इस दण्ड का प्रणयन भली भाँति किया जाना चाहिए और धीमान् किसी सहायक के साथ एवं धर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग करे ।२। राजा के द्वारा उस दण्ड का प्रणयन जिस प्रकार से करना उचित है वह बहुत अच्छा होना चाहिए । वानप्रस्थ—धर्म के ज्ञाता-ममता से रहित-निष्परिग्रह—अपने या पराये देश में धर्म शास्त्र के महा पण्डितों को भली भाँति परीक्षण करके दण्ड का प्रणयन करना चाहिए क्योंकि इस दण्ड में सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ।३-४। किसी आश्रम में संस्थित हो—वर्णी (ब्रह्मचारी) हो—पूज्य-महान् और गुरु हो तो ऐसा पुरुष राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य नहीं हुआ करता है क्योंकि वह तो अपने धर्म में संस्थित रहता है । निष्कर्ष यह है कि जो भी कोई अपने धर्म के मार्ग पर भली भाँति चल रहा है वह कभी भी दण्डनीय नहीं होता है ।५। जो राजा दण्ड देने के अयोग्य पुरुषों को दण्डित करता है और दण्ड देने के योग्य हों उनको दण्ड नहीं देता है वह राजा यहाँ पर राज्य से परिभ्रष्ट होकर अन्त में नरक का गामी होता है ।६। इस कारण से विनीत भाव वाले राजा के द्वारा लोकों के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से धर्म्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रणमन करना चाहिए ।७।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति निर्भय: ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ।८
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवायत: ।
मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्डं न पातयेत् ।९
देवदैत्योरगणा: सर्वे भूतपतत्त्रिण: ।
उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत् ।१०
एष ब्रह्माभिक्षापेषु सर्वं प्रहरेणेषु च ।
सर्वविक्रमकोपेषु व्यसाये च तिष्ठति ।११

पूजयन्ते मण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वमण्डिन: ।
न ब्राह्मण विधारतारं न पूषार्यमणावपि ।१२
यजन्ते मानवा: केचित् प्रशान्ता: सर्वकर्मसु ।
रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।१३
विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डिन: पूजयन्ति च ।
दण्ड: शास्ति प्रजा: सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।१४

जहाँ पर श्याम लोहिताक्ष दण्ड निर्भय होकर चरण किया करता है वहाँ पर प्रजा को कोई भी मोह नहीं होता है, यदि नेता अच्छी प्रकार से देखता है ।८। यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो बालक—वृद्ध-आतुर-यति-द्विज-स्त्री विधवा इनको मत्स्य न्याय से ही दुष्ट लोग खा जाया करते हैं । यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो देव, दैत्य, उरग गण, सब भूत और पतत्रि मर्यादा का उत्क्रमण कर देवें ।।९-१०। यह ब्रह्माभिशापों में—समस्त प्रहरणों में—सब निक्रम कोपों में और व्यवसाय में स्थित रहा करता है ।११। दण्डी देवों के द्वारा पूजे जाया करते हैं और जो अदण्डी होते हैं वे नहीं पूजे जाते हैं । विधाता ब्रह्मा और पूषा अर्यमा की भी पूजा नहीं करते हैं । समस्त कर्मों में कुछ प्रशान्त मानव यजन किया करते हैं । रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, देवगण और अन्य दण्डिगण की पूजा करते हैं । दण्ड ही प्रजा का शासन किया करता है और दण्ड ही सब प्रजा का अभिरक्षण किया करता है ।१२-१४।

दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्मं विदुर्बुधा: ।
राजदण्डभयादेव पाप: पापं न कुर्वते ।१५
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि ।
एवं सांसिद्धिक लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ।१६
अन्धे तमसि मज्जेपुर्यदि दण्डं न पातयेत् ।
यस्माद्दण्डो यमयति अदण्ड्यान्दमयत्यपि ।

दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधा ।१७
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागोधृतः शूलधरस्य यज्ञे ।
दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वरं शिशूनाञ्च भयाद्बलस्य ।१८

सुप्त हुओं में दण्ड ही जागता है और बुध लोग दण्ड का ही धर्म्म जानते हैं। राजा के द्वारा प्राप्त होने वाले दण्ड के भय से ही पापी लोग पाप कर्म नहीं किया करते हैं।१५। कुछ लोग यमराज के द्वारा मिलने वाले दण्ठ के भय से और पारस्परिक दण्ड के भय से भी पाप कर्म नहीं करते हैं। इस प्रकार से इस सांसारिक लोक में सभी कुछ दण्ड में ही प्रतिष्ठित है।१६। यदि दण्ड का पातन नहीं किया जावे तो सब लोक अँधतम में मज्जन किया करें। क्योंकि दण्ड दमन किया करता है और जो अदण्डनीय है उनका भी दमन किया करता है। दमन करने से और दण्ड न करने से बुध लोग इसको दण्ड कहते हैं। दण्ड से भीत हुए समेत देवों ने यज्ञ में भगवान् शूलधर का भाग धृत किया था कुमार में सेना-पतित्व का पद दिया था और बल के भय से शिशुओं का वर दिया था।१७-१८।

१०४—राजधर्म वर्णन में देवसाम्यत्व वर्णन

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टिः स्वयम्भुवा ।
देवभागानुपादाय सर्वं भूतादिगुप्तये ।१
तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् ।
ततो भवति लोकेषु राजा भास्करवत्प्रभुः ।२
यदास्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति ।
नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः ।३
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्ते कालेप्रयच्छति ।
तथा राज्ञा विधातव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ।४

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एव प्रदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ।५
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः ।
तदा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः ।६
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्सर्वकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रते स्थितः ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—भगवान् स्वयम्भू ने दण्ड के प्रणयन के ही लिये राजा का सृजन किया था, और इस की सृष्टि देवों के भागों को ग्रहण करके समस्त भूतों की रक्षा की गयी थी ।१। राजा में बहुत तेज होता है और तेज कोई भी इसको देख नहीं सकता है । इसके अनन्तर ही लोकों में राजा भगवान् भास्कर के ही समान प्रभु हुआ करता है । जिस समय में इस राजा के दर्शन में लोक प्रसाद की प्राप्ति किया करता है उस समय में यह नयनों को आनन्दकारी होने से चन्द्रमा हो जाता है ।२-३। जिस प्रकार से यमराज प्रिय या द्वेष्य कोई कैसा भी हो काल आने पर वह दूत भेजकर बुला ही लेता है उसी भाँति राजा को भी प्रजा के साथ करना चाहिए इसे यमव्रत कहते हैं । वरुण के द्वारा जिस तरह पाशों से बद्ध होकर ही दिखलाई दिया करता है उसी भाँति पापों से निगृहीत करे—यही वारुण व्रत कहलाता है ।४-५। जिस तरह परिपूर्ण चन्द्रमा का दर्शन प्राप्त करके मानव परम हर्षित हुआ करता है उसी भाँति जिसमें प्रकृतियाँ है और नृप चन्द्रमा के समान ही होता है । राजा नित्य ही समस्त कर्मों में प्रताप से युक्त अत्यन्त तेजस्वी होता है । दुष्ट सामन्त और हिंसक जीवों में राजा आग्नेय व्रत में स्थित रहा करता है ।६-७।

यथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ।
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ।८
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्चतेजोव्रतं नृपश्चरेत् ।

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽप्यथवर्षति ।९
तथाभिवर्षेत्स्वंराज्यकाममिन्द्रव्रतस्मृतम् ।
अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकर्मव्रतं हितत् ।१०
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ।११

जिस तरह से सब भूतों का विशेष मरण करने वाले का पार्थिव व्रत होता है । इन्द्र, सूर्य, वायु यम, वरुण, चन्द्र अग्नि और पृथिवी का तेजोव्रत नृप को चरण करना चाहिए । वर्षा के चार मासों में जिस तरह से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं उसी भाँति से राजा को अपने राज्य में प्रजा की कामनाओं की पूर्ति वर्षा भली भाँति करनी चाहिए—इसी को इन्द्रव्रत कहा जाता है । जिस तरह से आठ मास तक सूर्य्य अपनी किरणों के द्वारा जल का हरण किया करता है उसी तरह से राजा राष्ट्र से कर का आहरण करे—यही नित्य कर्मव्रत कहा गया है ।८-१०। मारुत समस्त भूतों में प्रवेश करके जिस तरह से सचरण किया करता है वैसे ही चारों के द्वारा राजा को प्रवेश करना चाहिए यही मारुत व्रत कहा जाता है ।११।

१०५—ग्रह यज्ञादि का विधान वर्णन

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः ।
कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपामप्रणाशनः ।१
क्रियते विधिना येन यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकैः ।
तत्सर्वं विस्तारद्देव । कथायत्र जनार्दन ।२
इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप ।

राज्ञा धर्मसक्तेन प्रजानाञ्च हितेप्सुना ।३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः ।
नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ।४
सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः ।
गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमिं परिक्षयेत् ।५

खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम् ।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ।६
युग्मासु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः ।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ।७

महर्षिवर मनु ने कहा—हे देव ! नृपों के द्वारा ग्रह यज्ञ और लक्ष होम किस प्रकार से करना चाहिए ? अथवा कोटि होम भी किस तरह से करे जो कि सभी तरह के प्रबल पापों का विनाश करने वाला होता है ।१। जिस विधि से यह किया जाता है और जो शान्ति चिन्तक लोगों ने देखा है हे जनार्दन देव ! उसका वर्णन आप विस्तार पूर्वक सब कीजिएगा ।२। मत्स्य भगवान् ने कहा—हे नृप ! अब मैं प्रसङ्ग से ही तुमको कहूँगा । प्रजाओं के हित के चाहने वाले और धर्म में प्रसक्त नृप के द्वारा एक लाख होम से संयुत ग्रह यज्ञ सदा ही करना चाहिए । यह यज्ञ नदियों के सङ्गम में तथा देवों के आगे ही करना चाहिए ।३-४। दैवज्ञों से अधिष्ठित नृप को समतल भूमि के भाग में गुरुदेव और ऋत्विजों के साथ भूमिका परिक्षय करना चाहिए । वहीं पर सुसम और एक हाथ लम्बा चौड़ा कुण्ड भी खोदना चाहिए । एक लक्ष के होम करने में यह कुण्ड दुगुना बनावे तथा कोटि होम करना हो तो चौगुना बड़ा बनवाना आवश्यक है ।५-६। दोनों में वेदों के पारगामी आठ ऋत्विज बताये गये हैं जो कि कन्द-मूल और फलों के आहार करने वाले अथवा दधि तथा क्षीर के अशन करने वाले होने चाहिए ।७।

वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च ।

सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धियेत् ।८
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः ।
त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ।९
कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश ।
होतव्या मशसाहस्रं बदिरैर्जातवेदसि ।१०
श्रियोमन्त्रेण होतव्याः सहस्राणि चतुर्दशः ।
शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ।११
हुत्वा शतसहस्रन्तु पुण्तस्नानं सुमङ्गलैः ।
कुम्भैः षोडशसङ्ख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ।१२
स्नापयेद्यजमानन्तु ततः शान्तिर्भविष्यति ।
एवं कृते ते यत्किञ्चिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ।१३
तत्सर्वं नाशमायाति दत्वा वै दक्षिणां नृप ! ।
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ।१४

जो वेदी निर्मित कराई जावे उसमें अनेक प्रकार के रत्नों को निधापित करे और उस वेदी का सिकता से परिवेष बनवाना चाहिए। इसके अनन्तर उसमें अग्नि को समिन्वित करे ।८। गायत्री से दश सहस्र आहुतियाँ देवे। मानस्तोक से षड्गुण—ग्रह आदि के मन्त्रों से तीस—जिनके विष्णु देवता हैं उस मन्त्रों से चार—कूष्माण्डों से पाँच—कुसुम आदि से षोडस और बादेरों से दस सहस्र अग्नि में हवन करना चाहिए। ।९।१०। श्री मन्त्र से चौदह सहस्र आहुतियों द्वारा हवन करे। शेष जो पाच सहस्र आहुतियाँ हैं वे इन्द्र दैवत मन्त्रों से हवन करनी चाहिए। ।११। सौ सहस्र आहुतियों का हवन करके फिर पुण्य स्नान करे जो सुमङ्गल—सहिरण्य सोलह संख्या वाले कुम्भों द्वारा किया जाना चाहिए ।१२। इस तरह से यजमान का स्नपन करावे। इसके अनन्तर शान्ति होगी। इस तरह से करने पर जो कुछ भी कष्ट ग्रहों की पीड़ा से समुत्पन्न होगा वह सब नाश को प्राप्त हो जाता है। हे नृप ! फिर दक्षिणा

देवे । सब प्रकार के प्रयत्नों से अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि यज्ञ में दक्षिणा परम प्रधान कही गयी है ।१३-१४।

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च ।
अनुडुद्गोशतं दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम् ।१५
यथा विभवसारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ।१६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र ! विधानं परिकीर्तितम् ।
इदानीं कोटिहोमस्य शृणुत्वं कथयाम्यहम् ।१७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर ! ।
नर्मदा देविकायास्तु तटे होमो विधीयते ।१८
तत्रापि रित्विजः कार्या रविनन्दन ! षोडश ।
सर्वहोमेतु राजर्षे ! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम् ।१९
रित्विगाचार्यसहितो दीक्षां साम्वत्सरीं स्थितः ।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ।२०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप !
यजमानः पयोभक्षी फलाशी च तथानघ ! ।२१

ऋत्विजों को दक्षिणा में हाथी—अश्व, रथ, यान भूमि, वस्त्र-युग, अनड्वान्, सौ गौ आदि समर्पित करे।१५। जैसा भी अपना वैभव हो उसी के सार के अनुसार रितुजों को दक्षिणा देवे और धन अतुल होते हुए भी दक्षिणा में कृपणता करने का वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिए । हे नराधिप ! एक मास पूर्ण हो जाने पर यह एक लक्ष आहुतियों का होम समाप्त हो जाया करता है । हे राजेन्द्र ! यह एक लक्ष के होम का पूर्ण विधान कीर्त्तितकर दिया गया है । अब मैं कोटि होम के विधान को कहता हूँ, उसका आप श्रवण करिए।१६-१६। हे नरेश्वर गङ्गा के तट पर—यमुना सरस्वती के तीर पर नर्मदा अथवा देविका नदी के तट पर यह होम करे । हे रविनन्दन ! उसमें भी सोलह रित्विज नियोजित करने चाहिए । हे राजर्षे ! सब प्रकार के होम में

विप्र को धन देवे । रित्विक् और आचार्य के सहित साम्वत्सरी दीक्षा में स्थित होता हुआ चैत्र मास के प्राप्त होने पर या विशेष रूप से कार्त्तिक मास के आने पर इसका प्रारम्भ करना चाहिए । अथवा वर्ष प्रति वर्ष करे । हे नृप ! हे अनघ ! यजमान को पय का अशन करने वाला तथा फलों का आहार करने वाला होना चाहिए ।१८-२१।

यवादिव्रीह्यो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः ।
पालाशाः समिधः शस्ता वसोर्धारातथोपरि ।२२
मासेऽथ प्रथमे दद्यात् रित्विग्भ्यः क्षीरंभोजनम् ।
द्वितीये कृशरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधिनीम् ।२३
तृतीये मासि सैयावो देयो वै रविनन्दन ! ।
चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन् ।२४
पञ्चमे दधिभक्तन्तु पष्ठे वै सक्तुभोजनम् ।
पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ।२५
षष्ठयोदनञ्च नवमे दशमे यवषष्टिका ।
एकादशे समाषन्तु भोजनं रविनन्दन ! ।२६
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वहः ।
षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम् ।२७
देया द्विजानां राजेन्द्र ! मासि मासि च दक्षिणाः ।
अहतवासाः सम्वीतो दिनार्द्धं होमयेच्छुचिः ।२८

यव आदि व्रीहि, माष, तिल, और सर्षप पलाश की समिधायें प्रशस्त होती हैं तथा ऊपर में वसोर्धारा हो । प्रथम मास से रित्विजों के लिए क्षीर का भोजन देना चाहिए । दूसरे मास में कृशरा देवे जो धर्म काम और अर्थ की साधन करने वाली होती है ।२२-२३। तीसरे मास में संयाव देवे । हे रविनन्दन ! चतुर्थ मास में विप्रों की प्रीतिका आवहन करते हुए मोदक देना चाहिए । पाँचवें मासमें दधि और भात

देवे और छठवें मास में सत्तू का भोजन देना चाहिए। सतावें मास में पूषा देनी चाहिए तथा आठवें महीना में घृत पूपक का भोजन देवे। ।२४-२५। नवम मास में षष्ठयोदन देवे और दशम मासमें यव पष्टिका का भोजन देना चाहिए। हे रविनन्दन! एकादश मास में माष के सहित भोजन देवे। हे रवि कुलोद्वह! द्वादश मास के सम्प्राप्त होने पर—षटरसों के सहित भक्ष्यों से युक्त सर्व काम करने वाला भोजन द्विजों को देना चाहिए। हे राजेन्द्र! मास-मास में दक्षिणा भी द्विजों को अवश्य ही देनी चाहिए। अहतवासा और सम्वीत होकर परमशुचि होवे और दिनार्द्ध में होम करना चाहिए ।२६-२८।

तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः ।
इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम् ।२६
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र ! पशुघातसमन्वितम् ।
सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत् ।३०

एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते ।
सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ।३१
पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थं च रित्विजैः ।
युक्तो वसन् मानवैश्च पुनः प्राप्ताचंनान् द्विजान् ।३२
प्रीणयित्वा सुरान् सर्वान् पितृ नेव ततः क्रमात् ।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम् ।३३
समाप्तौ तस्य होमस्यविप्राणामथ दक्षिणाम् ।
समाञ्चैव तुलां कृत्वा बद्ध्वा शिक्यद्वयपुनः ।३४

आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम् ।
सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ।३५

इसलिए द्विजों के ही साथ में यजमानों को सदा उठना चाहिए। इन्द्रादि देवों का प्रीणन सब कामनायें पूर्ण करने वाला होता है ।२६। हे राजेन्द्र! इस प्रकार से सुरों के पशुघात से समन्वित प्रीणन का

सम्पादन करके समस्त प्रकार के दान देवे तथा देवों का अग्निष्टोम करावे इस रीति से सब सम्पादन करके एक-एक शत पर पूर्णाहुति करनी चाहिए। जब सहस्र आहुतियाँ हो जावें तो यावच्छत सहस्रक द्विगुणी आहुति देनी चाहिए। इसके अनन्तर देवता के लिए रित्विजों के द्वारा पुरोडाश साध्य करे तथा युक्त होता हुआ वास करे। पुनः मानवों के द्वारा द्विजों का अर्चन करना चाहिए।३०-३२। सब सुरों का प्रीणन (प्रसन्नता) करके पितृगण के लिए क्रम से क्रम से शास्त्र में वर्णित विधान के द्वारा पिण्डों का समर्पण करना चाहिए।३३। उस होम की समाप्ति होने पर विप्रों को दक्षिणा के देनेकी व्यवस्था करनी चाहिए। तुला को समान करके दोनों पलड़ोंको भली भाँति बाँध करके उसमें अपने आपको और दूसरी अपनी पत्नी का तोलन करे। सुवर्ण से अपने आपको तोले और चाँदी से अपनी प्रिया का तोलन करे।३४-३५।

तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ददेच्छतसहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च।३६
सर्वस्वं ददेत्तत्र राजसूयफलं लभेत्।
एतत्कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत्।३७
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं सर्वं प्रीणितं भवेत्।३८
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते।
एवं शान्तिस्तवाख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत्।३९
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे।
सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।४०
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप!।४१

राजा को इस भाँति तोलन करके वित्त की शठता का परित्याग करते हुए दान देना चाहिए।३६। अथवा अपना सर्वस्व दान कर देवे

तो वहाँ पर राजसूय यज्ञ के पुण्य-फल की प्राप्ति का लाभ करें। इस रीति से विधान के साथ सब कुछ करके फिर उन सब विप्रों को विसर्जित कर देना चाहिए। उस समय में यह प्रार्थना करनी चाहिए भगवान् समस्त यज्ञों के ईश्वर श्रीहरि पुण्डरीकाक्ष प्रसन्न होवें। उन प्रभु के पूर्णतया सन्तुष्ट हो जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् तुष्ट हो जाया करता है और उनके प्रीणित होने पर सब प्रीणित हो जाते हैं। इस प्रकार से देवमानुषों के द्वारा कारिता सर्वोपघात होने पर इस रीति से आप की शान्ति बताई गई है जिसको करके तुम सुकृती हो जाओगे। जन्म और मरण के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करे तथा कृत एवं अकृत के विषय में भी शोच न करे। हे नृप! समस्त तीर्थों में स्नान करने का जो पुण्य-फल होता है और सब यज्ञों में जो फल होता है वह सम्पूर्ण फल ये तीन यज्ञ करके ही मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है।३७-३८॥

१०६—यात्राकाल विधान वर्णन

इदानीं सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ।
यात्राकालविधानं मे कथयस्व महीक्षिताम् ।१
यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा ।
पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽयं तदा यात्रां प्रयोजयेत् ।२
दुष्टायोधा भृता भृत्याः साम्प्रतञ्च बलं मम ।
मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदा यात्रां प्रयोजयेत् ।३
अशुद्धपार्ष्णिनृपतिर्नतु यात्रां प्रयोजयेत् ।
पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यंमूले निक्षिप्यचव्रजेत् ।४
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः ।
चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टश्च शारदीम् ।५

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिप: ।
शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालएव सुदुर्लभ: ।६

महर्षि मनु ने कहा—हे सर्व धर्मज्ञ ! आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी हैं, इस समय में राजाओं की यात्रा-काल का जो कुछ विधान हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाइए ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस समय में नृपति बलीयान् आक्रन्द से युक्त मान लेवे उस समय में पार्ष्णिग्राह से अभिभूत इसको नीर्थ यात्रा की प्रयोजना करनी चाहिए । दुष्ट योधा—भूत भृत्य है इस प्रकार से इस समय में मेरा बल विद्यमान है । मैं इस समय में मूल रक्षा में समर्थ हूँ । उसी समय में यात्रा को प्रयोजित करना चाहिए ।२-३। जो नृपति अशुद्ध पार्ष्णि वाला हो उसे यात्रा प्रयोजित नहीं करनी चाहिए । पार्ष्णिग्राह से अधिक सैन्य को मूल में निक्षिप्त करके गमन करे ।४। नराधिप को चैत्री अथवा मार्गशीर्षी पूर्णिमा में यात्राके लिए गमन करना चाहिए । चैत्री में निदाघ के दृश्य को देखे और शारदी पुष्टि का हनन करता है ।५। यह ही मार्गशीर्षी में विपर्यस्त होता है । नराधिप शत्रु के व्यसनमें गमन करे क्योंकि यह काल ही सुदुर्लभ होता है ।६।

दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातै: पीडित: परम् ।
षडक्षपीडासन्तप्तं पीडितञ्च तथा गहै: ।७
ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं याञ्च प्रपद्यते ।
भूकम्पोल्का दिश याति याञ्चकेतु: प्रसूयते ।८
निर्घातश्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिप: ।
स बलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीडितम् ।९
सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्रं प्रायादरिं नृप: ।
यूकायाक्षीकबहुलं बहुपङ्कन्तथा विलम् ।१०
नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथा मङ्गलवादिनम् ।
अपेतप्रकृतिञ्चैव नि:सारञ्च तथा जयेत् ।११

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम् ।
व्यसनाशक्तनृपतिं बलं राजाभियोजयेत् ।१२
सैनिकानां न शस्त्राणिस्फुरन्त्यङ्गानियत्रच ।
दुःस्वप्नानि च पश्यन्ति बलन्तदभियोजयेत् ।१३
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा ।
तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ।१४

दिव्यान्तरिक्ष और क्षिति से समुत्पन्न उत्पातों से परम पीड़ित-पडक्ष पीड़ा से सन्तप्त तथा ग्रहों से पीड़ित—जलती हुई उल्का जिस दिशा को जाती है—भूकम्पोल्का जिस दिशा को जाती है और केतुको प्रसूत किया करती है । जहांपर निर्घात गिरता है उसी दिशाको राजा को गममें करना चाहिए । उस नृप को बल-व्यसन से युक्त—दुर्भिक्ष से पीड़ित और जिसके अन्दर कोप समुत्पन्न हो गया हो ऐसे शत्रु पर शीघ्र ही चढ़ाई नृपको कर देनी चाहिए । जिसमें यूका और यक्षिकायें बहुत हों—अधिक पङ्कयुक्त—बिल-नास्तिक भिन्न मर्यादा वाला-मंगल वादी अपेत प्रकृति वाला और निस्सार को जीत लेना चाहिए ।८-११। जिस राजा की सेना ऐसी हो कि उसके नायक से विद्वेप हो और जो परस्पर में भिन्न हो—जिस राजा की आसक्ति व्यसनों में हो ऐसे बल-हीन नृप के साथ अभियोग करना चाहिए अर्थात् युद्ध करे । जिसके सैनिकों के पास शस्त्र न हों और जिसमें अंग स्फुरित होते हों—जो बुरे स्वप्न देखते हों ऐसों पर बल का अभियोजन करना चाहिए । उत्साह और बल से युक्त—जिसकी सेना पूर्ण अनुराग वाली हों—तुष्ट एवं पुष्ट बल राजा ही अपने शत्रुओं से युद्ध करने की अभिमुख होवे ।
।१२-१४।

शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने ।
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत् ।१५
ऋक्षेपु षटसु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च ।

प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः ।१६
एवन्तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः ।
देशकालोपपन्नां तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः ।१७
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे ।
उलूकस्य निशि ध्वांक्षः सचतस्यदिवावशे ।१८
एवं देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् ।१९
पदातिसागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवजिसमाकुलाम् ।
खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः ।२०
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ ।
सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपतेः ।२१
अभियोज्यो भवेत्तेन वा शत्रुर्विषममाश्रितः ।
गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुन्तथैव च ।२२

परम धन्य अर्थात् अनुकूल शरीर के स्फुरण होने पर दुःस्वप्नों के नाश होने पर और अच्छे निमित्त एवं शकुनी के होने पर ही राजा को अपने शत्रु के नगर में प्रवेश करना चाहिए । नक्षत्रों के शुद्ध होने पर तथा ग्रहों के बिल्कुल अपने अनुकूल हो जाने पर ही जब प्रश्नकाल परम शुभ होवे तभी राजा को शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए । इस प्रकारसे दैव (भाग्य) से सुसम्पन्न होकर पौरुषसे भी पूर्ण समन्वित राजा को देश तथा कालसे उत्पन्न यात्रा करनी चाहिए । स्थलमें नाग और सजल देश में नक्र के वशमें होने पर तथा रात्रिमें उलूक एवं दिन में ध्वांक्ष (कौआ) के वशगत होने पर ही इस प्रकार से देश तथा काल का ज्ञान प्राप्त करके राजा को अपनी यात्रा करनी चाहिए ।१५-१९। वर्षा ऋतु में ऐसी सेना को तैयार करे जिसमें पदाति सैनिक अधिक हों । हेमन्त और शिशिर रितु में अधिक रथों एवं अश्वों की समाकुलता होनी चाहिए । नराधिप को ग्रीष्म रितु में खर

और उष्ट्रोंकी अधिकता वाली सेना सज्जित करनी चाहिए।२०। बसन्त एवं शरद रितु में चतुरंग बल से समुपेत सेना बनानी चाहिए। जिसमें पदाति-अश्व-रथ और गज सभी समुचित संख्या में स्थित होवें। जिस राजा की सेना अधिक पदाति (पैदल) वाली हो उस विषम का आश्रय लेने वाला शत्रु राजाके द्वारा अभियोजित होना चाहिए। गमन करने के योग्य—वृक्षों से समावृत देश में स्थित शत्रु का अभियोजन करे। ।२१-२२।

किञ्चित् पङ्कं तथा यायाद् बहुनागोनराधिपः।
तथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समं पथिस्थितम् ।२३
तमाश्रन्तो बहुलास्तांस्तु राजा प्रपूजयेत्।
खरोष्ट्रबलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः ।२४
बन्धनस्थोऽभिवाज्योऽरिस्तथा प्रावृषि भूभुजा।
हिमपातयुते देशेस्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयेत् ।२५
यवसेन्धनसंयुक्तः कालः पार्थिव ! हेमन्तः।
शरद्वसन्तौधर्मज्ञ ! कालौधारणौस्मृतौ ।२६
विज्ञाय राजा हितदेशकालौ दैवं त्रिकालञ्च तथैव बुद्ध्वा।
यायात्परंकालविदांमतेन सञ्चिन्त्य सार्द्धं द्विजमंत्रविद्भिः ।२७

बहुत अधिक नागों वाले नराधिप को कुछ पङ्क में उसी प्रकार से गमन करना चाहिए जिस तरह से बहुत अश्वों वाला राजा मार्ग में स्थित समान शत्रु का अभियोजन कर लेवे।२३। उसके जो बहुत से आश्रय ग्रहण करने वाले हों उनका राजा को पूजन करना चाहिए। खरों और उष्ट्रों की बहुलता वाला शत्रु राजा जब बन्ध में संस्थित हो तो उस बन्धन में संस्थित शत्रु को राजा के द्वारा वर्षा रितु में अभियोजन करे। हे पार्थिव! यवस और ईंधन से संयुक्त काल हेमन्त होता है। हे धर्मज्ञ ! शरद् और वसन्त ये दोनों रितुएँ साधारण काल कहे गये हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि उसे हितकर देश और काल को समझ

मे जो दक्षिण भाग है उसमें जो स्फुरण होता है उसे परम प्रशस्त कहा गया है। उसी भाँति से वाम भाग में पृष्ठ और हृदय का प्रस्फुरण भी शस्त होता है।२। महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान्! अंगों का स्पन्दन और उसके शुभ एवं अशुभ का विचेष्टित होता है उसको विस्तारपूर्वक मेरे समक्ष में वर्णित कीजिए। इस भूमण्डल में उसी प्रकार का मनुष्य हो जावे।३। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन! मूर्धा में स्पन्दन हो तो पृथ्वी का लाभ होता है—ललाट में स्फुरण हो तो स्थान की विशेष वृद्धि होती है—भ्रूओं में हो तो प्रिय का सगम होता है। नेत्र के भाग में स्पन्दन हो तो भृत्य की प्राप्ति होती है और दृग के उपान्त में प्रस्फुरण हो तो धन का आगम हुआ करता है। हे राजन्! विचक्षण पुरुषों ने देखा है कि मध्य भाग में स्पन्दन हो तो उत्कण्ठ का उपगम हुआ करता है। दृग्बन्धनमें और संगर (युद्ध) में बहुत ही शीघ्र जय का लाभ हुआ करता है। अपांग देश में होने से स्त्री का उपभोग होता है और श्रवण के अन्त में विस्फुरण हो तो प्रिय की श्रुति होती है। नासिका में स्पन्दन होने से प्रीति होती है और सौख्य होता है। अधरोष्ठ में स्पन्दन से प्रजा की प्राप्ति होती है। कण्ठ में भोग का लाभ और अंस देशों में स्पन्दन से भोग की वृद्धि हुआ करती है।४-।७।

सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः।
पृष्ठे पराजयः सद्यः जयो वक्षःस्थले भवेत्।८
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने।
स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चैव धनागमः।९
जानुसन्धौ परैः सन्धिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप!।
दिशेकदेशनाशोऽथ जङ्घायां रविनन्दन!।१०
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप!।
सलाभञ्चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप!।११
लाञ्छनं पिटकञ्चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा।

विपर्ययेण विहिता सर्वस्त्रीणां फलागमः ।
दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ।१२
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णों तु तर्पणंस्यात् ।१३

बाहुओं के स्फुरण से सुहृद् का स्नेह और हाथ में होने से धन का समागम हुआ करता है । पृष्ठ में होने से तुरन्त ही पराजय होती है तथा वक्षःस्थल में स्पन्दन से जय हुआ करता है । कुक्षियों में होने से प्रीति उपदिष्ट की गई है और स्तन में स्पन्दन से स्त्री के प्रजनन हुआ करता है । नाभि देश में प्रस्फुरण होने से स्थान का भ्रंश हुआ करता है तथा अन्त्रमें होने से धन का आगमन होता है । जानुओं की सन्धिमें प्रस्फुरण होनेसे परोंमें सन्धि होती है जो कि बहुत बलवान हुआ करते हैं । हे नृप ! हे रविनन्दन ! दिशा के एक देश में होने से नाश होताहै तथा जलंघा में स्पन्दन होतो उत्तम स्थान का लाभ होता है और पैरों में होने से लाभ के सहित मार्ग का गमन होता है । हे नृप ! पादतलमें होने से लाञ्छन लगता है और स्फुरण की ही भाँति फिर सभी जान लेना विपर्यय से फलागम हुआ करता है । प्रशस्त अंग दक्षिण में भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है इसलिए अन्यथा सिद्धि के प्रजल्पन से प्रशस्त और निन्दित फल का । अनिष्ट चिन्हों के उपगम होने पर द्विजों का सुवर्ण के द्वारा तर्पण करना चाहिए ।८-१३।

१०८—स्वप्न दर्शन वर्णन

स्वप्नाख्यानं कथं देव ! गमने प्रत्युपस्थिते ।
दृश्यन्ते विविधाकाराः कथन्तेषां फलं भवेत् ।१

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने ।
नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ।२
चूर्णनं मूर्द्धिन कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ।३
उच्चात् प्रपतनञ्चैव दोलारोहणमेव च ।
अर्जनं पक्वलोहानां हयानामपि मारणम् ।४
रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च मण्डलस्य तथैव च ।
वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ।५
भक्षणं पक्वमांसानां तैलस्य कृसरस्य च ।
नर्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव ।६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम् ।
स्रोतोऽवगाहगमनं स्नान गोमयवारिणा ।७

महा महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! कहीं पर गमन के प्रत्युपस्थित होने पर स्वप्न का आख्यान किस प्रकार से हुआ करता है ? ये स्वप्न तो अनेक एवं विभिन्न प्रकार वाले दिखलाई दिया करते हैं फिर उन सबका फल किस प्रकार से हुआ करता है ।१। श्री मत्स्य देव ने कहा—इस समय में मैं स्वप्न के दर्शन में जो निमित्त होता है उसेही बतलाता हूँ । केवल एक नाभिको छोड़कर शरीर के अन्य किसी भी अंग में तृण और वृक्षों की समुत्पत्ति—मस्तक का चूर्ण हो जाना—कांस्यों का मुण्डन तथा नग्नता—मलिन वस्त्रों का धारण करना, अभ्यंग, पङ्क से दिग्धता ऊँचे से पतन होना दोला पर समारोहण करना, पक्व लोहोंका अर्जन हयों का मारण, रक्त पुष्प वाले द्रुमों के मण्डल का तथा वराह, रीछ, खर और उष्ट्रों के ऊपर आरोहण करना—पके हुए मांस का भक्षण करना तथा तैल और कृसर का खाना, हँसना, विवाह, गीत, तन्त्री के द्वारा बजने वाले वाद्यों से रहित अन्य वाद्यों का अभिवादन करना, स्रोत में अवगाहन गमन करना, गोमयवारि से स्नान करना आदि ये सब दुःस्वप्न होते हैं ।२-७।

पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ ।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ।८
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पानाञ्च दर्शनम् ।९
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च ।
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषांणाञ्च मैथुनम् ।१०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमतक्रिया ।
दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा ।११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च ।
गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनस्तथा ।१२
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरक्षंनरैरपि ।
परादभिभवश्चैव चस्माच्च व्यसनोद्भवः ।१३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीडनन्तथा ।
स्नेहपानावगाहाश्च रक्तमाल्यानुलेपनम् ।१४

पङ्क के मिश्रित जल से स्नान, मही तोय से स्नान, माता के उदर मे प्रवेश करना, चितापर समारोहण, शक्र ध्वज का गिरना, चाँद और सूर्य का पतन, दिव्यन्तरिक्ष भौमों का और उत्पातों का दर्शन, देव, द्विजाति, राजा और गुरुका क्रोध, कुमारियों का आलिगन, पुरुष मैथुन अपने गात्रों की हानि, विरेचन और वमन, दक्षिण दिशाकी ओर गमन करना, व्याधि से अभिभव, फल की अप हानि, पुष्प हानि, गृहों का गिरना, गृह का समार्जन, पिशाच, राक्षस, वानर, ऋक्ष और नरों के साथ क्रीड़ा करना, दूसरे से अभिभव और उससे ही व्यसन की उत्पत्ति गेरुआ वस्त्रों का धारण करना, स्त्री के साथ क्रीड़न, स्नेह पान और अवगाहन तथा रक्त माल्य और अनुलेपन करना ये सब दुःस्वप्न होते हैं ।८-१४।

ऐवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत् ।
एषां सङ्कथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनन्तथा ।१५
कल्कस्नानन्तिलैर्होमो ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ।१६
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे सम्वत्सरविपाकिनः ।१७
षड्भिर्मासै द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ।
चतुर्थं मासमात्रेण पच्यते नात्र संशयः ।१८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलम्भवेत् ।
एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम् ।१९
पश्चाद्दृष्टो यस्तत्रतस्य पाकं विनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छोभनकेस्वप्ने पश्चात् स्वप्नो न पश्यति ।२०

इस प्रकार के तथा ऐसे ही अन्य दुःस्वप्न हुआ करते हैं—ऐसा ही विनिर्देश करना चाहिए । ऐसे दुःस्वप्नों का भली भाँति कथन तथा ऐसे स्वप्न देखकर फिर स्वप्न करना अच्छा होता है इसका फल फिर बुरा नहीं रहा सकता है । कल्क स्नान, तिलों से होम और ब्राह्मणोंका पूजन, भगवान् वासुदेवका स्तवन तथा उनकाही पूजन और गजेन्द्रमोक्ष की कथा का श्रवण करना—इनसे स्वप्नों से होने वाले कुफल का नाश हो जाया करता है । स्वप्न यदि प्रथम ही याम होवे तो उसका फल एक वर्ष तक विपाक की दशा में पहुँचता है । दूसरे प्रहर में स्वप्न हो तो उसका फल छै मास में होता है । तीसरे रात्रि के प्रहर में स्वप्न देखे तो तीन मासों में फल हुआ करता है और चौथे प्रहर में स्वप्न जो दिखाई देता है उसका फल एक मास में हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यदि अरुणोदय के समय में स्वप्न हो तो दश दिन में फल होता है । एक ही रात्रिमें शुभ और अशुभ स्वप्न हों तो जो पीछे दिखाई देता है उसी का पाक निर्दिष्ट करना चाहिए । इसी कारण से

यदि कोई अच्छा स्वप्न हो और पीछे स्वप्न नहीं देखता है तो अच्छा है अतएव अच्छा है अतएव अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना ही नहीं चाहिए ।१५-२०।

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमनं च तथा द्विज ।२१
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता ।
तथैव शीर्षत्वं फलितोद्भव एव च ।२२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ।
चन्द्रार्कताराग्रहण परिमार्जनमेव च ।२३
शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा ।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणाञ्च वधक्रिया ।२४
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ! ।
भक्षणञ्चार्द्र मांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ।२५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथवा ।२६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ।२७
सिंहानां हस्तिनीनाञ्च वडवानां तथैव च ।
प्रसादो देवविप्रेभ्यश्च गुरुभ्यश्च तथा शुभः ।२८

अब अच्छे स्वप्न के विषय में बतलाया जाता है—नागेन्द्र, शैल अश्व, प्रासाद और वृषभ का समारोहण हितकर हुआ करता है। हे श्वेत पुष्पों वाले द्रुमों का गमन में आरोहण भी शोभन होता है। नाभि में द्रुम और तृणों का उद्भव तथा बहुत सी बाहुओं की उत्पत्ति हो जाना—बहुत सारे मस्तकों का होना और फलितोद्भव, सुन्दर शुक्ल मालाओं का धारण करना शुक्ल वस्त्रोंका धारण चन्द्र, सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन शक्र की ध्वजा का आलिङ्गन, उसके उच्छ्राय की क्रिया भूमि तथा अम्बुधियों का ग्रसन, शत्रुओं के वध करने का कर्म,

विवाह संग्राम और द्यूत में जीत, आर्द्र माँस का भक्षण, मत्स्यों का भक्षण पायस का खाना, रुधिर का दर्शन रुधिर से स्नान, सुरा, रुधिर मद्य का पान करना अथवा क्षीर का पान, आँतों के द्वारा वेष्टन जो भूमि में हो, निर्मल गगन, मुख के द्वारा भैंसों तथा गौओं का दोहन प्रशस्त होता है। सिंहनियों का हाथनियों का और बड़वाओं का भी दोहन प्रशस्त है। देव तथा विप्रों की प्रसन्नता और गुरु वर्ग का प्रसाद भी शुभ होता है।२१-२८।

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गाश्रितेन वा ।
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन् ! ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः ।२९
राज्याभिषेकश्च तथाच्छेदनं शिरसस्तथा ।
मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु ।३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलंघनम् ।३१
हस्तिनीवडवानाञ्च गवाञ्च प्रसवो गृहे ।
आरोहणमथाश्वानां रोदनञ्च तथाशुभम् ।३२
वरस्त्रीणां तथालाभस्तथालिङ्गनमेव च ।
निगडैर्बन्धनं तथा तथा विष्ठानुलेपनम् ।३३
जीवितां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम् ।
दर्शनं देवतानाञ्च विमलानां तथाम्भसाम् ।३४
शुभान्यथैतानि नरस्तुदृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद्ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ!व्याधेर्विमोक्षञ्च तथाऽऽतुरोऽपि।३५

जल के द्वारा अभिषेक का होना अथवा गौओं शृङ्गों के आश्रितों जल के द्वारा अभिषिञ्चन होना, हे राजन् ! चन्द्र से भ्रष्ट के द्वारा अभिषिचन का होना तो राज्य को प्रदान करने वाला ही जानना चाहिए।२९। राज्याभिषेक का होना, शिर का छेदन होता जाना मरण अग्नि का दाह, गृह आदि में अग्निके द्वारा दाह का हो जाना, राज्यके

चिन्हों की प्राप्ति का हो जाना, तन्त्रों वाले वाद्यों का अभिवादन होना जलों में तैरना, विषम स्थान का लंघन करना, गृह में हथिनी, बड़वा तथा गौओं का प्रसव होना, अश्वों पर समारोसण करना शुभ होता है। अच्छी स्त्रियों का लाभ करना तथा वरस्त्रियों का समालिंगन करना, निगड़ोंके द्वारा बन्धन का होना, विष्ठासे अनुलेपन होना यह सब धन्य एवं शुभ होता है। जीवित भूमिपालों का तथा सुहृदों का दर्शन प्राप्त करना, दैव का दर्शन करना, विमल जलों का देखना ये सब परम शुभ स्वप्न हुआ करते हैं। मनुष्य इन ऐसे शुभ स्वप्नों को देखकर बिना ही यत्न के किये ध्रुव रूप से अर्थ का लाभ प्राप्त किया करता है। हे धर्म धारियों में वरिष्ठ! आतुर होकर भी व्याधियों का विमोक्ष होना शुभ स्वप्न होता है।२०-३५।

१०९-यात्राके समय मंगल अमंगल सूचक शकुन वर्णन

गमनं प्रति राज्ञान्तु संमुखदर्शने च किम् ।
प्रशस्ताश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्च कीर्तय ।१

औषधानि त्वयुक्तानिधान्यं कृष्णञ्चयद्भवेत् ।
कार्पासिचतृणां राजन् ! शुष्कं गोमयमेव च ।२
इन्धनञ्च तथाङ्गारं गुडं तैलं तथा शुभम् ।
अभ्यक्तं मलिनं मुण्डन्तथा नग्नञ्च मानवम् ।३
मुक्तकेशं रुजार्तञ्च काषायाम्बरधारिणम् ।
उन्मत्तकन्तथा सत्त्वं दीनञ्चाथ नपुंसकम् ।४
पयः पङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च ।
तथैवोद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ।५
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनबालकाः ।

वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च ।६
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च ।
रक्तानि चैव भण्डानि मृतंशार्ङ्गिकमेवच ।७
एवामादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने ।
अशस्तो वाह्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः ।८

महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान् ! जिस समय में राजा लोग गमन किया करते हैं तो संमुख में दर्शन करने में क्या-क्या प्रशस्त हुआ करते हैं, यह बतलाकर इन सम्पूर्ण शकुनों का वर्णन कृपा करके करिये ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! अयुक्त औषध, कृष्ण धान्य, कपास, तृण, शुष्क गोमय, ईंधन, अंगार गुड़ तेल ये सब शकुन शुभ हुआ करते हैं । अभ्यंग कियाहुआ, मलिन, मुण्ड, नग्न मानव, केशों को खुले हुए रखने वाला, रोगसे आर्त, काषाय वस्त्रों के धारण करने वाला, उन्मत्त सत्व, दीन नपुंसक, लोहापक, चर्म, केशबन्धन, पिण्याक आदि सार वस्तुएँ बन्धन पालक, वधक, पाप कर्म करने वाले, गर्भिणी स्त्री तुष, भस्म, कपाल, अस्थि, भिन्न भाण्ड, रक्त वर्ण के भाण्ड, मृत, शार्ङ्गिक इस प्रकार से इत्यादि अभिदर्शन में अशस्त होते हैं । बाह्य शब्द और भिन्न भैरव जर्जर शब्द भी अशस्त हुआ करता है ।२-८।

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः ।
गच्छेति पश्चात् धर्मज्ञो ! पुरस्तात्तु विगर्हितः ।९
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किन्ते तत्र गतस्य तु ।
अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्ते विपत्तिकरापि ।१०
ध्वजादिषु तथास्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम् ।
स्खलनं वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैव च ।११
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता ।
छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनञ्च तथा शुभम् ।१२
दृष्टे निमित्ते प्रथमेऽमङ्गल्यविनाशनम् ।

केशवं पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ।१३

द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथाऽनघ ! ।१४

आगे की ओर से आओ—यह शब्द शस्त होता है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है। हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ'—यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गर्हित माना गया है। 'कहाँ जाते हो'—रुकसाओ'—'वहाँ पर जानेसे तुझको क्या प्रयोजन है'—ये इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होते हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं।६-१०। क्रव्यादों राक्षसों का ध्वज आदि में स्थान गर्हित हुआ करता है। वाहनों का स्खलन, वस्त्र संग, द्वार। आदि में निर्गमन करने वाले के शिरका अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रों का पतन भी शुभ होता है। प्रथम में ही निमित्त के देखने पर अमंगल्य का विनाश होता है। विद्वान् पुरुषका कर्त्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिए ।११-१३। अनघ! फिर द्वितीय प्रतीप के देखने पर गृहमें प्रवेश कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् इष्ट मंगलों के विषय में मैं वर्णन करूँगा ।१४।

श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च ।
जलजाः पक्षिणश्चैव मांसं मत्स्याश्चपार्थिव ! ।१५

गावस्तुरङ्गमानागाबद्ध एकः पशुस्त्वजः ।
त्रिदेशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ।१६

गणिका च महाभाग ! दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम् ।
रुक्मरूप्यन्तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ ।१७

औषधानि च धर्मज्ञ । यवाः सिद्धार्थकास्तथा ।
नृवाह्यमानं यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ।१८

खड्गं चक्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च ।
राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदिवर्जिताः ।१६

घृतं दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च ।
स्वस्तिकं वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम् ।२०
वादित्राणां सुखः शब्दः गम्भीरः सुमनोहरः ।
गान्धारषड्ज ऋषभा ये च शस्तास्तथा खराः ।२१

हे पार्थिव ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज, पक्षीगण, मांस, मत्स्य, गौयें, तुरंगम नाग, बद्ध एक पशु, अज, त्रिदश, सुहृद विप्र, जलती हुई अग्नि, गणिका, ताम्र और हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न, हे धर्मज्ञ ! दूर्वा, आर्द्र गोमय, सुवर्ण, रूप्यक, औषध, यव, सिद्धार्थक, मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान यान, भद्रपीठ, खंड, चक्र, पताका, मृत्तिका, आयुध, सम्पूर्ण, राजा के चिह्न जो रुदित से रहित होवें । घृत, दधि, पय, विविध भाँति के फल, स्वास्तिक, वर्द्धमान, नन्द्या, वर्त्त, कौस्तुभ, वादित्रों का सुखकर शब्द जो गम्भीर एवं मनोहर हो; गन्धार, षड्ज, ऋषभ जो कि शस्य तथा खर हैं ।१५-२१।

वायुः सशर्करोरुक्षः सर्वत्र समुपस्थितः ।
प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयोभयकृद्द्विज ! ।२२
अनुकूलोमृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः ।
रूक्षारूक्षस्वराभद्राः क्रव्यादाः परिगच्छताम् ।२३
मेघाः शस्ताघनाः स्निग्धागजबृंहितसन्निभाः ।
अनुलोमास्तडिच्छन्नाः शक्रचापन्तथैव च ।२४
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे ।
अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः ।२५
आस्तिक्यं श्रद्दधानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम् ।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ ! यश्च स्यान्मनसः प्रियम् ।२६
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् ।

एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ।२७
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन् ! ज्ञेयानि नित्यं
विजयावहानि ।२८

धूलि के सहित रूक्ष वायु जो कि सभी जगह समुपस्थित है। हे द्विज ! जो प्रतिलोम और नीच है वह भय करने वाला ही समझना चाहिए। अनुकूल, कोमल, स्निग्ध, सुख देने वाले स्पर्श से युक्त—सुख का आवाहन करने वाल—रूक्ष, अरूक्ष स्वर अमद्र, परिगमन करने वालों के क्रव्याद, हाथियों के बृंहित के सदृश घने, स्निग्ध मेघ प्रशस्त होते हैं। अनुलोम विद्युत से छन्न-चक्रचाप तथा परिवेष में प्रवर्षण प्रशस्त जानने चाहिए। जो ग्रह अनुलोम होते हैं वे प्रशस्त हुआ करते हैं और वाक्पति विशेष रूप से प्रशस्त माने गये हैं। आस्तिकता-श्रद्धानता, पूज्यगण का अभिपूजन—हे धर्मज्ञ ! ये सब प्रशस्त हुआ करते हैं और वह भी परम प्रशस्त माना गया है जो अपने मन के लिए अतिशय प्रिय होता है। यहाँ पर अपने मन की जो तुष्टि हुआ करती है वह ही परम जय का लक्षण हुआ करता है। एक ओर तो ये सभी चिह्न होते हैं और एक ओर अपने मन की तुष्टि हुआ करती है। मन की उत्सुकता अर्थात् उत्साह और मनमें होने वाला प्रहर्ष यह ही शुभ लाभ और विजय का प्रवाद होता है मंगल्य की लब्धि और उसका श्रवण हे राजन् ! नित्य ही विजय के आवह करने वाले जानने चाहिए ।२२-२८।

११०—वराहावतार के विषय में अर्जुन का प्रश्न

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ।१
न जाने तस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम् ।

न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तं मनीषिणः ।२
किमात्मको बराहोऽसौ किंमूर्त्तिः कास्य देवता ।
किं प्रमाणाः किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ।३
एतन्मे शंस तत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ।
यथार्हञ्च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः ।४
एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।५
यथा नारायणो राजन् ! वाराहं वपुरास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ।६
छन्दोगोर्भिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलङ्कृतः ।
मनः प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना ।७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अपरिमित तेज से युक्त भगवान् विष्णु के पुराणों में प्रादुर्भावों को कहने वाले सत्पुरुषों में हमने एक वाराह का भी प्रादुर्भाव सुना है ।१। उस वाराह का चरित्र मैं नहीं जानता हूँ और न तो उसकी कोई विधि ही मुझे मालूम है और न कुछ विस्तार का ही ज्ञान है । उनके कर्म और गुणों का संस्थान क्या था—यह भी मैं नहीं जानता हूँ । उन अत्यन्त मनीषी प्रभु का तो अद्भुत ही कर्म—गुण संस्था होगा ।२। यह वराह किस स्वरूप वाला प्रादुर्भाव था ? इनकी कैसी मूर्त्ति थी और इनका देवता कौन था ? इनका प्रमाण कितना था और क्या प्रभाव था तथा पहिले इन्होंने क्या किया था ? ।३। श्रुति विस्तार इस वाराह को आप तात्विक रूप से मुझे सब बतलाइए ? विशेष रूप से ये एकत्रित हुए द्विजाति गण हैं इनके अनुसार जो भी योग्य हो श्रवण कराइए ।४। श्री शौनक जी ने कहा—अद्भुत कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्णके इस महा वराह चरित्रको जो ब्रह्मसम्मित पुराण है मैं आपको कहूँगा ।५। हे राजन् ! जिस प्रकार से भगवान् शत्रुओं में मर्दन करने वाले नारायण ने वाराह के वपु में समास्थित

होकर अपनी दाढ़ से इस समुद्र मे स्थित भूमि को उठाकर इसका उद्धार किया था ।६। छन्द, वाणी, उदार श्रुतियो से सम्यक् प्रकार से अलंकृत होकर तथा मन को प्रसन्न करके अब उस विजय का ज्ञान करलो ।७।

इदं पुराण परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ।८
पुराणं वेदमखिलं साङ्ख्यं योगञ्च वेद यः ।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं सौख्यार्थं वै वदिष्यति ।९
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ।१०
मनः सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा ।
वसवो मरुतश्चैव गन्धर्व्वा यक्षराक्षसाः ।११
दैत्याः पिशाचाः नागाश्च भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः म्लेच्छाश्च ये भुवि ।१२
चतुष्पादानि सर्व्वाणि तिर्य्यग्योनिगतानि च ।
जंगमानिचसत्वानियच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ।१३
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते ।
निर्व्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ।१४

यह वराह पुराण परम पुण्यमय है और समस्त वेदो के सम्मत है । यह अनेक श्रुतियो से भी समायुक्त है । इसका कीर्तन किसी भी नास्तिक के समक्ष में नही करना चाहिए यह सम्पूर्ण पुराण वेद ही है जो सांख्य और योग को जानता है वह पूर्ण विधि से कथित इसको सौख्य सम्पादन करने के लिए कहेगा ।८-९। विश्वेदेवा, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और प्रजाओं के पतिगण सप्त महर्षि है । पूर्वज ऋषिगण थे वे सब मन के सङ्कल्प से ही समुत्पन्न हुए हैं । वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध

भूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो भूमण्डलमें म्लेच्छ हैं--समस्त चतुष्पाद, तिर्यग्योनिगत सैकड़ों-जङ्गम सत्व और जो अन्य जीव संज्ञा से युक्त सब एक सहस्र युगोंके पूर्ण होने पर ब्रह्माजी के दिन के समागत हो जाने पर सर्वोत्पातों के समुद्भव वाले समस्त भूतों का निर्वाण हो गया था ।१०-१४।

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः ।
शिखाभिर्विधमँल्लोकानशोषयत वह्निना ।१५
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः ।
विवर्णवर्णा दग्धांगा हताचिष्मद्भिराननैः ।१६
सांगोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः ।
सर्वविद्याः क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ।१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम् ।
सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तु कोटयः ।१८
तस्मिन्नहनि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ।
प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ।१९
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह ।२०
पूर्णे युगसहस्रान्ते सर्वे निःशेष उच्यते ।
यस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषं समतिष्ठत ।२१

इसके अनन्तर हिरण्यरेता त्रिशिख ने वृषा कपि होकर शिखाओं से लोकोंको विशेष रूपसे धमन करते हुए वह्निके द्वारा सबका शोषण कर दिया था। इसके अनन्तर समुद्गत उसके तेज की राशियों से दह्यमान होते हुए अर्चिमान आननोंके विवर्ण वदन वाले, दग्ध अङ्गोंसे युक्त होकर हत होगये थे। साङ्गवेद तथा उपनिषद, इतिहासों को आगे कर के सम्पूर्ण विद्या-सर्व धर्म परायण क्रियायें और विश्व तो मुख प्रभव ब्रह्माजीको आगे करके तेतीस करोड़ समस्त देवगण उस दिनके सम्प्राप्त होने पर महदक्षर, महात्मा, हंस उन प्रभु नारायण हरि के धाम में

प्रवेश करते हैं। प्रवृत्त हुए उनके पुनः निधन से उत्पत्ति कही जाती है जिस तरह से यहाँ पर निरन्तर सूर्यका उदय और अस्तमन हुआ करते हैं। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर सबका निःशेष कहा जाता है जिसमें सब जीवकृत निःशेष समवस्थित हुआ ।१५-२१।

संहृत्य लोकनखिलान् सदेवासुरमानुषान् ।
कृत्वा सुसंस्थां भगवानास्तएकजगद्गुरुः ।२२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्ययः शाश्वतो देवो यस्य सर्वमिदंजगत् ।२३
नष्टार्ककिरणो लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते ।
त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ।२४
अपक्षिगणसम्पाते सर्वप्राणिहरे पथि ।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते ।२५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् ।
प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ।२६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके ।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ।२७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः ।
शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ।२८
श्रीवत्सलक्षधरं रक्तचन्दनभूषितम् ।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स विष्णुरिव तोयदः ।२९

समस्त देव असुर और मानवों के सहित पूर्ण सम्पूर्ण लोकों का संहार करके जगत् में गुरु एक ही भगवान् असुसंस्था करके स्थित हुआ करते हैं। इस तरह वही कल्पों के अन्त से पुनः पुनः समस्त भूतों के स्रष्टा होते हैं वह अव्यय-शाश्वत देव है जिनका यह सम्पूर्ण जगत् हैं। सूर्य की किरण जिसमें नष्ट हो गई हैं और चन्द्र तथा ग्रहों से वर्जित हैं--धूप, अग्नि और पवन ने भी जिसका त्यागकर दिया है तथा अग्नि

रहित और यज्ञ एवं वषट् क्रिया से क्षीण, पक्षिगण के सम्पात से शून्य समस्त प्राणियोंके हरण करने वाले, अमर्यादासे आकुल, रौद्र, सब ओर से अन्धकार से समावृत मार्ग में सब लोकों के दृश्यमान होने पर, सब कर्मों के अभाव में सब सम्पात के प्रशान्त हो जाने पर इस नारायणात्मक लोकमें स्वभाव संस्थान के गत होने पर परमेष्ठी हृषीकेशने अपने शयन करने का उपक्रम किया था। पीत वस्त्रधारी लोहित नेत्रों वाले, मेघ के सदृश सहस्रों शिखाओं के विकच जटाओं के भार का समुद्वहन करने वाले श्रीकृष्ण विराजमान थे।२२-२८। श्रीवत्स के लक्षण को धारण करने वाले और रक्त चन्दन से विभूषित वक्षःस्थल को रखने वाले—महान् बाहुओं से युक्त वह तोयद के समान ही श्री विष्णु भगवान् थे।२९।

पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा ।
पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्यतिष्ठति ।३०
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोके शुभावहः ।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमपागतः ।३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ।३२
ततश्चिन्तयति भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ।
नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।३३
ततः सञ्चिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः ।
सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतांगतिः ।३४
कर्त्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः ।
नारायणः परं सत्यं नारायणः परं पदम् ।३५

इन विष्णु भगवान् की पत्नी स्वयं साक्षात् लक्ष्मी जो देह को आवृत करके स्थित रहती हैं एक सहस्र पुण्डरीकों की मालासे वह शुभा शोभित हो रही थीं।३०। इसके उपरान्त समस्त लोक में सुख का

आवाहन करने वाले प्रशान्त आत्मा से सम्पन्न शयन किया करते हैं। वह अमित योग के स्वरूपधारी किसी योग निद्रा को प्राप्त हो गये थे ।३१। अनन्तर एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर वह विभु पुरुषोत्तम जो त्रिबुधों के स्वामी है स्वयमेव ही प्रबुध हो जाया करते हैं।३२। इसके पश्चात् लोकों से करने वाले ने फिर लोक की सृष्टि के विषयमें चिन्तन किया था। नरगण और देवगणों का पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा चिंतन करते हैं। फिर समतिञ्जय प्रभु देवोंके विषयमें कार्य का चिंतन करते हुए सत्पुरुषों की गति प्रभु समस्त लोक की उत्पत्ति की किया करते हैं। वह प्रजापति इस जगत् के कर्त्ता विकर्त्ता और संहार के कर्त्ता हैं। नारायण परसत्य हैं—नारायण परम पद हैं।३३-३५।

नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः।
स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टा भुवनाधिपः।३६
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः।
यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते।३७
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः।
प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः।३८
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः।
यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्ति देवताः।३९
प्रादुर्भावे तु यद्रूपन्तदर्चन्ति दिवौकसः।
दर्शितं यद्वि तेनैव तदवेक्ष्यन्ति देवताः।४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमार्हते।
ग्राम्याणां सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः।४१
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च।
चतुराश्रमधर्मेशश्चतुर्होत्रफलाशनः।४२
चतुः सागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः।
तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थामात्मनः।
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम्।४३

**सुरासुरद्विजभुजंगाप्सरोगणैर्द्रु मौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसंकुलं तदा सर्वं
रसृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ।४४**

नारायण पर यज्ञ हैं—नारायण परागति है वह स्वयम्भू—वह जानने के योग्य हैं—वह भुवन के स्वामी सृजन करने वाले हैं? वह सब कुछ हैं—ऐसा ही समझना चाहिए। वही यज्ञ और प्रजापति हैं जो देवों के द्वारा जानने के योग्य है और वह ऐसा ही कीर्त्तित किया जाता है। जो कुछ भी भगवान का वेद्य (जानने के योग्य हैं) उसे देव गण भी नहीं जानते हैं। न प्रजापति जानते हैं और अमरगणों के साथ ऋषि लोग ही जानते हैं।३६-३८। विशेष रूप से खोज करते हुए भी उस प्रभु के अन्त का ज्ञान कोई भी प्राप्त नहीं किया करते हैं—ऐसी श्रुति है। जो इसका पर रूप होता है उसे देवगण भी नहीं देख पाते हैं। जब इनके प्रादुर्भाव का कोई स्वरूप होता है उसीका देवगण अभ्यर्चन किया करते हैं यदि इन्हीं ने उसे दिखला दिया है तो देवता लोग उसे देख पाते हैं। जो कभी भी उन्होंने नहीं दिखलाया है उसकी खोज करने की कौन इच्छा करता है अर्थात् उसका अन्वेषण कोई भी नहीं कर पाता है। समस्त ग्राम्य प्राणियों की गति अग्नि और मारुत की होती है। तेज तप और अमृत का निधान—चारों आश्रमों के धर्म का ईश चार होत्रों का फलाशयन चार सागरों की सीमा तक रहने वाला चारों युगों का निवर्त्तक वह इसका संहार करके फिर अपने गर्भ में स्थित जगत् की रचना करता हुआ महायोगी एक सहस्र वर्ष तक धारण किये अण्ड को छोड़ देता था। सुर, असुर, द्विज, भुजग और अप्सराओं के गणों से युक्त-औषधियों-क्षितिधर-यक्ष और गुह्यकोंसे समन्वित-श्रुतियों से असंकुल इस जगत् को उस समय में वह प्रजापति प्रभु आत्मा से ही सृजन किया करता है।३९-४४।

==

१११-वराहावतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम् ।
प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ।१

ततु वर्षसहस्रान्ते बिभेदूर्ध्वमुखं विभुः ।
लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं नृप ! ।२
भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभागं सविभागकृत ।३
यच्छिद्रमूर्द्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम् ।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ।४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया ।
तत्र यत्सलिलस्स्कन्नः सोऽभवत्काञ्चनोगिरिः ।५

शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाभवत् ।
तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ।६
पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
महामते भूरिबलं दिव्यं नारायणात्मकम् ।७

महर्षि शौनक जी ने कहा—यह जगत् का अण्ड पहिले परमदिव्य हिरण्य था । यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्त्ति ही था—ऐसा श्रुति का वचन कहता है ।१। वह एक सहस्र वर्ष के अन्त में विभु ने ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था । हे नृप ! लोक के सर्जन के हेतु से अधोमुख का भेदन किया था । लोकों के जन्म के करने वाले भगवान् विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागों में भेदन किया था । विभागके करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग कियाथा । ऊर्ध्व आकाश मे जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था । विश्व के योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था । देव ने पहिले जो अण्ड किया था वह लोक को रचना करने की इच्छा से ही किया था ।

वहाँ पर जो सलिल स्कन्न हुआ था वह सुवर्ण गिरि हो गया था। सहस्रों शैलों के होने से यह महती मेदिनी विषम हो गई थी जो कि बहुत से योजनों के विस्तार से युक्त पर्वतों के जालों के ओघों से युक्त थी। उस समय में इन बड़े भारी पर्वतों से यह पीड़ित एवं व्यथित मेदिनी देवी हो गयी थी हे महामने! यह अण्ड परम दिव्य बहुत अधिक बल वाला नारायण के स्वरूप से सम्पन्न था।२-७।

हिरण्यं समुत्सृज्य तेजो व जातरूपिणम्।
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा।८
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः।
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधोमधुसूदनः।९
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया।१०
मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी।
रसातलं प्रविशति पंके गौरिव दुर्बला।११
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर! प्रसीद।१२
तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम्।
ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वत विदुः।१३
तव प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः।
तव क्रोधाद्धि बलवान् जनार्दनजितोबलिः।१४

जातरूपी हिरण्मय तेज का समुत्सृजन करके उसे धारण करने के लिए अशक्त होकर उस समय में नीचे की ओर प्रवेश कर गया था। उस समय में भगवान् के तेज से वह क्षिति पीड्यमाना हो गई थी। भगवान् मधुसूदन ने अधोभाग में प्रवेश करती हुई उस पृथ्वी को देखा था और फिर उस पृथ्वी के हित की कामना से उसके उद्धार करने के लिए उन्होंने विचार किया था।७-१०। श्री भगवान ने कहा—यह तपस्विनी वसुधा मेरे तेज को प्राप्त करके दुर्बल गौ पङ्क में जिस तरह

विषण्ण होती है उसी भाँति यह मेदिनी रसातलमें प्रवेश करती है।११ पृथिवी ने कहा—हे देवेश्वर! त्रिविक्रम से आयामित विक्रम वाले सुरों में उत्तम—श्री शार्ङ्ग, चक्र, असि और गदाके धारण करने वाले महा-वराह के लिए नमस्कार है आप प्रसन्न होइये।१२। आपके ही देह से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है और पुष्कर द्वीप उत्थित हुआ है। यहाँ पर ब्रह्मा को लोकों का और भूतों का शाश्वत जानना चाहिए। हे देव! यह आपका ही प्रसाद है कि इन्द्र देव दिवलोक का उपभोग किया करते हैं। आपके ही क्रोध से भगवान जनार्दन के द्वारा यह महा बलवान् बलि जीत लिया गया है।१३-१४।

धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनोघनः।१५
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवो जलम्।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञा यज्ञस्य च क्रियाः।१६
विद्यावेद्यञ्च सत्वञ्च ह्रीः श्रीः कीर्तिर्धृतिः क्षमा।
पुराणं वेदवेदाङ्गः सांख्ययोगौ भवाभवौ।१७
जङ्गम स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवञ्च यत्।
भवन्तञ्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितन्तव।१८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः।
सर्वलोकमनः कान्तः सर्वसत्वमनोहरः।१९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः।
दिव्यलोकमहास्कन्धसत्यलोकप्रशाखवान्।२०
सागराकरनिर्यासो रसातलजलाश्रयः।
नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः।२१

हे भगवन्! आपके अन्दर धाता-विधाता और संहार करने वाला, इन तीनों कर्मों के करने की शक्ति विद्यमान है। मनु अधिपति कृतान्त अग्नि, पवन, घन, चारों वर्ण, चारों ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके धर्म, सागर

तरु, जल, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ यज्ञ की क्रियायें---विद्या, वेद सत्व ह्रीं, श्री, कीर्त्ति, धृति, क्षमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग शास्त्र, सांख्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जंगम, भविष्य, भवत् यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ।१५-१८। देवों के उदार फल के दाता--स्वर्गीय स्त्रियों के चारु पल्लव-सब लोकों के मन के कान्त-सब सत्वों के मनोहर--विमानों के अनेक विटप---मेघों के जल का मधु स्राव-दिव्यलोक के महा स्कन्ध-सत्यलोक के प्रशाखा वाले---सागर के आकार का निर्यास--रसातल के जल का आश्रय---नागेन्द्र पादपों से समुपेत--जन्तु और पक्षिगण से निषेवित आप ही हैं ! ।१६-२१।

शीलाचारार्थगन्धस्त्वं सर्वलोकमयोद्रुमः ।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ।२२
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः ।
सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः ।२३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगरुषाकुलः ।
पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ।२४
धीश्रीह्रीकान्तिभिः नित्यं नदीभिरुपशोभितः ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ।२५
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः ।
कालोभूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ।२६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ।२७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे ।
महाभारावताराय देव ! त्वं हि युगे युगे ।२८

आप ही शीलाचार के आर्यगन्ध हैं । सर्व लोक मय आप द्रुम हैं। द्वादश सूर्यों से परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रोंके पत्तन, अष्ट वसुओं के बल से संयुक्त, त्रिभुवनों के जलके महा समुद्र, सिद्ध और साध्योंकी ऊर्मियों

से कलिल, सुपर्णानिल से सेवित, दैत्यों के लोकों के महान् ग्राह, राक्षस और उरगोंके रोषसे समाकुल, पितामह के महान् धैर्य, स्वर्ग की स्त्रियों रूपी रत्नों से भूषित, धी ह्री, और कान्ति इनसे तथा नित्य ही नदियों से उपशोभित, कालयोग महान् पर्व के प्रयाग की गति और वेग वाले आप अपने योग के महान वीर्य तथा नारायण महार्णव हैं। आप काल होकर परम प्रसन्न जलों से पुनः आह्लादित किया करते हैं। आपने ही इन तीनों लोकोंका सृजन कियाहै और आपने ही इनका प्रति संहार भी किया है। सब योगीजन प्रतियोजित होकर आपमें ही प्रवेश किया करते हैं। हे देव ! आप ही युग-युग में युगोंके अन्त करने वाली अग्नि हैं—युग-युग में आप ही काल मेघ हैं और इस महाभार के अवतारण करने के लिए आप ही युग-युग में हुआ करते हैं।२२-२८।

त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः।
द्वापरे रक्तसंकाशः कृष्णः कलियुगे भवान्।२९
त्रैवर्ण्यमभिधत्से त्वां प्राप्तेषु युगसन्धिषु।
त्रैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित्।३०
भासि वासिप्रतपसि त्वञ्च पासि विचेष्टसे।
क्रुध्यसि क्षान्तिमायासि त्वं दीपयसि वर्षसि।३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये।३२
शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः।
युगान्ताग्नावलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन।३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु।३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्संकीर्त्यसेऽच्युतः।
ब्रह्माणमिन्द्रञ्च यमं रुद्रं वरुणमेव च।३५

हे देव ! कृतयुग में आप ही शुक्ल वर्ण वाले होते हैं—त्रेता में

सुवर्ण के समान प्रभा वाले भी आप ही हैं। द्वापरमें रक्त के सदृश और कलियुग में आप ही कृष्ण होते हैं।२९। आप जब युगों की सन्धियाँ होती हैं तो उस समय में विवर्णता धारण किया करते हैं। वेदोंके वेत्ता आप समस्त धर्मों के वैवर्ण्य का उत्पादन किया करते हैं। आपही दीप्त होते हैं, निवास करते हैं, प्रताप दिया करते हैं, पालन करते हैं, विशेष चेष्टा किया करते हैं, कोप भी आपही करते हैं, शान्ति को प्राप्त होते हैं, आपही दीपित होते हैं और वर्षा किया करते हैं। आपही स्वयंहास करते हैं, निर्यासित होते हैं, निर्वाप करते हैं, जाग्रत होते हैं, निःशेषित होते हैं, अर्थात् समस्त भूतोंको निःशेष किया करते हैं और युगोंके क्षय में आप ही काल का स्वरूप धारण किया करते हैं।३०-३२। आप ही अपने आपको शेष देखकर फिर उसे विशेषित किया करते हैं जब सब भूतों में युगान्त अवलीढ हो जाते हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता है इसी लिए आपको शेष इस नामसे कीर्त्तित किया गया है। च्यवनोत्पत्ति से युक्त ब्रह्मा इन्द्र, वरुण आदिके होने पर क्योंकि स्थान से च्यवन नहीं होता है इसीलिए अच्युत नाम से कीर्त्तित हुए हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और ब्रह्मा वरुण इनका निग्रह करके हरण करते हैं।३३-३५।

निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे।
सम्मानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया।३६
परेण वपुषा देव ! तस्माच्चासि सनातनः।
यस्माद्ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः।३७
न तेऽन्तं त्वधिगच्छति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे।
न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि।३८
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे।
विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।३९
जगद्विष्टम्भना चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे।
विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम्।४०

यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् ।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्य सचराचरम् ।४१
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।४२
अयनन्तस्यताः पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः ।
युगेप्रनष्टङ्गां विष्णो ! विन्दसितत्त्वतः ।४३

हे भगवन् ! ब्रह्मादि सबका निग्रह करके आप इनका हरण किया करते हैं इसी कारणसे आपको 'हरि'—इस नामसे कहा जाता है । आप समस्त भूतों का वपु से, यश से, श्री से सम्मान किया करतेहैं । हे देव! आप पर वपुसे सम्मान किया करते हैं इसी कारण से सनातन हैं । क्यों कि ब्रह्मादि देवगण और उग्र तेज वाले मुनि वृन्द सब आपके अन्त को प्राप्त नहीं करते हैं इसीलिए आप अनन्त इस नाम से कहे जाते हैं और सैंकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी आप न तो क्षरित होते हैं और न क्षीण ही हुआ करते हैं । इसी अक्षर होने के हेतुसे आप अक्षर हैं और विष्णु इसी नाम से कीत्तित किये जाते हैं । आपने इस स्थावर, जंगम् जगत् सबको विष्टब्ध कर दिया है ।३६-३९। इस सम्पूर्ण जगत् के विष्टम्भनं होने से आपका नाम "विष्णु'—यह कीर्त्तित किया जाता है क्योंकि इस त्रिलोकी को विष्टब्ध करके जिसमें सभी चर एवं अचर विद्यमान हैं नित्य स्थित रहा करते हैं ।४०-४१। इसीलिए स्वयं भगवान् स्वयम्भू ने विष्णु यह नाम कहा है । नारा, इससे जल कहे जाया करते हैं जिस को तत्वदर्शी ऋषियोंने कहा है । वे ही जल पहिले उनके अयन निवास स्थान हुए थे इसीलिए आपका नारायण यह नाम कहा गया है । हे विष्णो ! आप तो युग-युग में प्रनष्ट अङ्गों का तात्विक रूप से प्राप्त किया करते हैं ।४२-४३।

गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसेभिस्तथा ।
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्वज्ञानविशारदाः ।४४

ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यते ।
वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ।४५
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे ।
सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ।४६
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्वज्ञानविशारदैः ।
प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः ।४७
प्रविद्यु: सर्व धर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे ।
निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ।४८
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः ।
यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत् ।४९

क्योंकि आप प्रनष्ट अङ्गों का लाभ करते हैं इसीलिए आपको 'गोविन्द'—इस नाम से पुकारा जाया करता है और ऋषिगण गोविन्द कहा करते है । हृषीक विषयेन्द्रियों को कहा जाता है जिनको कि तत्व ज्ञानके विशारद कहतेहैं । आप इनके ईशिता हैं इसी कारण से आपको हृषीकेश नाम से कहा जाया करता है । युग के क्षय में ब्रह्मा आदि समस्त भूत आप ही मे निवास किया करते हैं अथवा आप सब भूतों में निवास किया करते है इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाया करता है । बारम्बार आप कल्प में भूतों का संकर्षण किया करते हैं अतएव तत्व-ज्ञान के विशारदों के द्वारा आपको संकर्षण कहा गया है । समस्त देव असुर और राक्षस प्रतिग्रह से स्थित रहते हैं और सब धर्मों के प्रविद्यु है अतएव आपको प्रद्युम्न, इस शुभ नाम से कहा जाया करता है । आपका भूतों में क्योंकि कोई भी निरोद्धा नहीं है इसीलिए पहिले ही महर्षियों ने आपका नाम अनिरुद्ध कहा गया है । हे भगवन् ! आपके द्वारा इस विश्व को धारण किया जाता है और आपके ही द्वारा इस जगत् का संहार किया जाता है ।४४-४९।

त्वं धारयसि भूतानि भवनं त्वं बिभर्षि च ।
यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजस च बलेन च ।५०

मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया ।
न हि तद्विद्यते भूत त्वया यन्नात्र धार्यते ।५१

त्वमेव कुरुषे देव ! नारायण युगे युगे ।
महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ।५२

तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलङ्गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ ! त्वामेव शरणंगताम् ।५३

दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ।५४

तावन्मेस्ति भयं देव ! यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ।५५

उपमानं न ते शक्ताः कर्त्तुं सेन्द्रा दिवौकसः ।
तत्वं त्वमेव यद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम् ।५६

हे भगवन् ! आप समस्त भूतों को धारण किया करते हैं और आप भवन का भरण किया करते हैं और आपके द्वारा तेज और बलके द्वारा जो कुछ भी धारण किया जाता है इसके पीछे मेरे द्वारा धारण किया जाता है और जो आपके द्वारा अधृत हैं उसे मैं धारण करतीहूं । ऐसा कोई भी भूत विद्यमान नहीं है जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो । हे देव ! हे नारायण ! इस जगत् के हितकी कामना से युग युग में आप ही इस महान् भार का अवतरण किया करते हैं । हे सुर-श्रेष्ठ! आपके ही तेज से आक्रान्त, रसातल में गई हुई और आपकी ही शरणागति में गई हुई मेरा परित्राण कीजिए । मैं दुरात्मा दानवों तथा राक्षसोंके द्वारा पीड्यमाना मैं आपही नित्य एवं सनातन प्रभु की शरण में आती हूं । हे देव ! मुझे तब तक ही भय होता है जब तक ककुद्मी आपकी शरण में मन से नहीं जाती हूं । मैं सैकड़ों का उपलक्षित करती हूं किन्तु आपकी समानता इन्द्र आदि देवगण करने में समर्थ नहीं

होते हैं। इसके तत्व को आपही जानते हैं और इससे पर निरुत्तर है ।५०-५६।

तत: प्रीत: स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्ग चक्रधृक् ।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरि: ।५७
अब्रवीच्च महादेवि ! माधवीय स्तवोत्तमम् ।
धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभव: ।५८
लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान् प्रतिपत्स्यते ।
एतदाश्चर्य सर्वं स्वं माधवीयं स्तवोत्तमम् ।५९
अधीतवेद: पुरुषो मुनि: प्रीतमना भवेत् ।६०
मा भैर्धरणि ! कल्याणि ! शान्ति व्रज ममाग्रत: ।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम् ।६१
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ।
किन्तु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम् ।६२
जलक्रीड़ारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थित: ।
अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म संस्थितम् ।६३

महर्षि शौनक जी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् शार्ङ्ग और चक्र के धारण करने वाले उस पृथिवी देवी पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन हरि भगवान ने इसकी कामना को यथोप्सित रूप से पूरित कर दिया था ।५७। और भगवान ने उससे कहा था—हे महादेवि ! आपके द्वारा कहा गया जो यह माधवीय स्तव है वह अतीव उत्तम है। जो मनुष्य इस स्तव को धारण करेगा उसका कभी भी पराभव नहीं होता है।५८। यह आश्चर्यो का सर्वस्व माधवीय उत्तम स्तव है। इसके धारण करने वाला कल्मषों से रहित वैष्णव लोकों की प्राप्ति किया करता है ।५९। वेदों के अध्ययन करने वाला पुरुष प्रीति से युक्त मन वाला मुनि हो जाता है ।६०। श्री भगवान ने कहा—हे धरणि ! हे कल्याणि ! डरो मत। मेरे आगे शान्ति को धारण करो। मैं तुमको

मनीषित समुचित स्थान पर प्राप्त करा देता हूँ।६१। शौनकजी ने कहा इसके उपरान्त महान आत्मा वाले प्रभु ने मन से दिव्य रूप का चिन्तन किया था कि मैं क्या करूँ ।६२। जल में क्रीड़ा करने की रुचि थी इसी कारण से वराहा के वपु में समस्थित हो गये थे । वह स्वरूप समस्त भूतों का अदृश्य एवं वाङ्मय संस्थित ब्रह्म था ।६३।

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः ।
नीलजीमूतसंकाशं मेघस्तनितनिस्वनम् ।६४
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।६५
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितोहरिः ।६६
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम् ।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ।६७
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।६८
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनोमहान् ।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्क्रमः ।६९
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मुखाकृतिः ।
उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः ।७०

वह वाराह का स्वरूप सौ योजन के विस्तार युक्त, दुगुना इससे उच्छ्रित नीलमेघ के समान तथा मेघों के स्तनित से निस्वन था गिरिके तुल्य सहनन वाला, भीम, श्वेत एवं तीक्ष्ण आगेकी दंष्ट्रा वाला, विद्युत् की अग्नि के तुल्य, सूर्यके सदृश तेजसे युक्त, कटि देश में पीलोन्नत एव वृष लक्षण से पूजित विपुल वराह के रूप में समास्थित श्री अजित हरि हो गये थे ।६४-६६। वेदों के चरणों वाले, यूपों के दंष्ट्राओं से संयुक्त क्रतुओं के दाँतों से समन्वित चितीमुख वाराह प्रभु ने इस पृथिवी

के उद्धार करने के लिए रसातल में प्रवेश किया था ।६७। अग्नि की जिह्वा वाले—दर्भों के लोमों से संयुक्त—ब्रह्म के शीर्ष वाले—महान् तप से युक्त—अहोरात्र के नेत्रों को धारण करने वाले—वेदाङ्ग एवं श्रुति के भूषण से भूषित—आज्यकी नासिका वाले—स्रुवा के तुण्ड से युक्त—साम वेद के महान् घोष वाले—सत्य और धर्म से परिपूर्ण—कर्म और विक्रम के सत्कर्म वाले—श्रीमान्—प्रायश्चित के घोर नखों से युक्त—पशुजानु तथा मखकी आकृति वाले—उद्‌गाथा होम के लिंग से संयुक्त बीज और ओषधि के महान् फल वाले वह वाराह भगवान थे ।७०।

वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ।७१
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।७२
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ।
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।७३
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्ग इवोच्छ्रितः ।
रसातलतले मग्नां रसातलतलङ्गताम् ।७४
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् ।
ततः स्वस्थानमानीय वराः पृथिवीधरः ।७५
मुमोच पूर्वं मनसा धारिताञ्च वसुन्धराम् ।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ।७६
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे ।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।७७
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा ।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवी जगतः स्थापनेच्छया ।
पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।७८

रसाङ्गतामवनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक् ।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ।७९

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संतुत—सोम के शोणित से समन्वित—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वंश की काया से युक्त—द्युतिमान्—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिणा हृदय—महासत्रमय महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण—नाना छन्दोगति पथ—गुह्योपनिषदासन—उच्छ्रित मणिशृङ्ग की भाँति छाया पत्नीसहाय प्रभुने रसातल के तलमें मग्न और रसातल के तलमें गई हुई उस भूमि का लोकों के हितके लिए दंष्ट्राके अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथिवीके धारण करने वाले बराह भगवान ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन में धारित वसुन्धरा को छोड़ दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उस शम्भु देव को नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतोंके हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल में गयी हुई पृथिवी देवी को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के अविभाग करने के लिए मन में विचार किया था।७१-७८। अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरोंमें श्रेष्ठ प्रवर बराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान्ने जो वृषा कपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरिणी को बलपूर्वक एक दाढ़ से समुद्धृत किया था।७९।

रसाङ्गतामत्रनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक् ।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ।७६

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संतुत—सोम के शोणित से समन्वित—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वंश की काया से युक्त—द्युतिमान—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिणा हृदय—महासत्रमय महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण—नाना छन्दोगति पथ—गुह्योपनिषदासन—उच्छ्रित मणिश्रृङ्ग की भाँति छाया पत्नीसहाय प्रभुने रसातल के तलमें मग्न और रसातल के तलमें गई हुई उस भूमि का लोकों के हितके लिए दंष्ट्राके अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथिवीके धारण करने वाले वराह भगवान ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन से धारित वसुन्धरा को छोड़ दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उस शम्भु देव को नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतोंके हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल में गयी हुई पृथिवी देवी को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के अविभाग करने के लिए मन में विचार किया था।७१-७८। अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरोंमें श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान्ने जो वृषा कपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरिणी को बलपूर्वक एक दाढ़ से समुद्धृत किया था।७६।

११२–क्षीरोद मन्थन वर्णन (१)

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ।१
कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः ।
तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा ।२
यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् ।
तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ।३
पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः ।
पुनः सञ्जीविनीं विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ।४
जीवापयति दैत्येन्द्रान् तथा सुप्तोत्थितानिव ।
तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना ।५
मृतसञ्जीविनी नाम विद्याया तु महाप्रभा ।
तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ।६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुहुः सर्वदानवाः ।
ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! भगवान् नारायण के यथाक्रम माहात्म्य का श्रवण करके हमारी तृप्ति नहीं होती है अतएव पुनः आप वर्णन कीजिए ।१।विचक्षण देव किस प्रकार से पहले अमरत्व को प्राप्त हुए थे । किसी तप के द्वारा अथवा कर्म से या किसी के प्रसाद से या तेज के द्वारा देवों को अमरता प्राप्त हुई थी ? श्री सूतजी ने कहा-जहाँ पर देव नारायण और शूल को धारण करने वाले महादेव विद्यमान थे वे दोनों उन सबके अमरत्व के प्रतिपादन करने में सहायक कहे गये हैं ।२-३। प्राचीन समय में देवासुर युद्ध में सुरों के द्वारा सैकड़ों दैत्येन्द्र निहत कर दिये गये थे । फिर भृगुनन्दन ने अपनी सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग करके सोकर उठे हुओं की भाँति जीवित कर दिया

था । महात्मा देव शंकर ने परम सन्तुष्ट होकर महान् प्रभाव एवं प्रभा वाली सञ्जीवनी विद्या उसको प्रदान कर दी थी । महेश्वर के मुख से समुद्गत उस माहेश्वरी विद्या को भार्गव महर्षि में संस्थित देखकर समस्त दानव मोह को प्राप्त हो गये थे । इसके अनन्तर धीमान् शुक्रने दैत्यों का अमरत्व कर दिया ।४-७।

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् ।
न नागानामृषीणाञ्च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ।८
तां लब्ध्वा शंकराच्छुक्रः परां निर्वृत्तिमागतः ।
ततो दैवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत् ।९
तत्र देवैर्हतान् दैत्यान् शुक्रो विद्याबलेन च ।
उत्थापयति दैत्येन्द्रान् लीलयैव विचक्षणः ।१०
एवम्विधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः ।
हन्यमानस्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ।११
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः ।
ततस्तेषु विषण्णेसु भगवान् कमलोद्भवः ।
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः ।१२
देवाः शृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम् ।
क्रियतां दानवैः सार्द्धं सख्यमत्रवर्ततास् ।१३
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः ।
सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम् ।१४

जो विद्या समस्त लोकों के पास नहीं थी तथा देवों और राक्षसों के समीप में भी विद्यमान नहीं थी एवं नाग, ऋषिगण और ब्रह्मा,इन्द्र तथा विष्णुके पास भी नहीं रही उस महान् प्रभाव वाली इस विद्याको भगवान् शङ्कर से प्राप्त करके शुक्राचार्य परम निवृत्ति को प्राप्त हुए थे । इसके पश्चात् सुमहान देवासुर घोर समर हुआ था ।८-९। वहाँ पर देवों के द्वारा मारे हुए दैत्योंको शुक्राचार्य ने विद्या के बल के द्वारा

लीला ही से विचक्षण ने उठा दिया था। इस प्रकार से इन्द्र और उदार बुद्धि वाले बृहस्पति तथा हन्यमान सैकड़ों और सहस्रों देवगण सबके सब विषाद युक्त मुखों वाले विकलेन्द्रिय हो गये थे। इसके पश्चात् उनके विषण्ण होने पर भगवान् कमलोद्भव जगत् के स्वामी ने मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग यह सुरेन्द्रों से कहा था।१०-१२। ब्रह्माजी ने कहा हे देवगणो ! मेरा यह वाक्य सुनो और उसे वैसे ही करो। दानवों के साथ यहाँ पर सन्धय भाव कर डालो। अमृत की प्राप्ति का उद्योग करो तथा क्षीर-सागर का मन्थन करो। वरुण को सहायक बनाकर भगवान् चक्रपाणि को प्रबुद्ध करना चाहिए।१३-१४।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रोबलिस्वामीस्तोककालं निवेश्यताम्।१५
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः।
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलः मन्थकार्यप्रवर्त्यताम्।१६
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम्।
अलं विरोधे वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना।१७
क्रियताममृतोद्योगो क्रियतां शेषनेत्रकम्।
त्वया चोत्पादिते दैत्य ! अमृतेऽमृतमन्थने।१८
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः।
एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः।१९
यथा वदत हे देवास्तथाकार्यं मयाऽधुना।
शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम्।२०
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना।
सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः।२१
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति।
पालयिष्यामि वः सर्वानधुनास्नेहमास्थितः।२२

मन्दराचल पर्वत को मन्थान बनाकर उसे शेषनाग के नेत्र से

(नेती से) वेष्टित करो। दानवों के इन्द्र स्वामी बलि को थोड़े समय तक निवेशित करो। पाताल में अविनाशी भगवान् विष्णु जो कूर्मरूप वाले हैं उनकी प्रार्थना करो। शैलराज मन्दराचल की भी प्रार्थना करो और फिर मन्थन का कार्य प्रवृत्त कर दो। इस वचन को देवों ने श्रवण किया था और फिर वे सब दानवों के मन्दिरमें गये थे। हे बले ! अब आप विरोध मत करो हम सब आपके भृत्य हैं। अब तो सब मिलकर अमृत की उपलब्धि का प्रयोग करो और मन्थन कार्य का नेत्र शेषनाग को बना डालो। हे दैत्य ! आपके द्वारा इस अमृत मन्थन में अमृत के समुत्पादित होने पर, सब अमर हो जायेंगे और यह आपके ही प्रसाद से सुसम्पन्न होगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इस तरह से उन देवों के द्वारा कहे जाने वाला यह दानव बहुत परितुष्ट हो गया था। हे देवगण ! आप लोग जैसा भी कहते हैं हम भी सब वैसा ही मुझसे भी इस समय में करना ही है। यहाँ पर मैं अकेला ही इस क्षीर वारिधि को मन्थन करने में समर्थ हूँ और अब मैं आपको दिव्य अमृतत्व के लिए लाकर दे दूँगा। सुदूर से आश्रय को प्राप्त होने वाले वैरियों का जो भक्ति-भाव से पूजन नहीं किया है वह वहाँ पर मरकर विनिष्ट हो जाया करता है। अब मैं स्नेह में समास्थित होकर आप सब लोगों का पालन करूँगा।१५-२२।

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा।
मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम्।२३
सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने।
सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं जगत्।२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम।
यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामिमथिष्येवरुणालयम्।२५
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद्वेष्टने मम।
ततस्तु निर्गतौ देवौ कर्मशेषौ महाबलौ।२६

विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ ।
ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनं शेषकच्छपौ ।२७
त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते ।
किमु मन्दारकात् क्षुद्रात् घुटिकासन्निभादिह ।२८

उसी समय में वह दैत्यराज इस प्रकार से देवगण के साथ चला गया था । धराधर मन्दर की सहायता करने के लिए प्रार्थना की थी । उसने कहा था—हे पर्वतवर ! इस समय में आप हमारे इस अमृत के मन्थन में सखा हो जाइए ! इस जगत् में सब सुर और असुरों का यह एक बहुत बड़ा कार्य है । ऐसा ही हो जायगा—यदि मेरा कोई आधार हो जायगा जिस पर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और सागर का मन्थन करूँगा ।२३-२५। नेत्र बनने के कार्य में जो भी समर्थ हो और मेरा वेष्टन कर सके उसकी कल्पना करिये । इसके पश्चात् महा बलवान् कूर्म और शेष निर्गत हो गये थे । भगवान् विष्णु के भाग धरणी के चतुर्थ अंश से धारण करने में स्थित हो गए थे । शेष और कच्छप गर्व से समन्वित वचन कहने लगे । इस त्रिलोकी के धारण करने में भी मुझको कोई ग्लानि नहीं होती है कि एक घुटिका के सदृश यहाँ पर इस क्षुद्र मन्दर स्थल से क्या ग्लानि अर्थात् थकान हो सकती है ।२६-२८।

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा ।
न मे ग्लानिर्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने ।२९
तत उत्पाट्यतं शैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे ।
चिक्षेप लील नागः कूर्मश्चाधः स्थितस्तदा ।३०
निराधारं यदा शैलं न शेकुर्देवदानवाः ।
मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ।३१
नारायणनिवासन्ते जग्मुर्बलिसमन्विताः ।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ।३२

तत्रापश्यन्त तन्देवं सितपद्मप्रभं शुभम् ।
योगनिद्रामुनिरतं पीतवाससमच्युतम् ।३३
हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यंकसंस्थितम् ।
पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम् ।३४
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानङ्गरुत्मता ।
स्तूयमानं समन्ताच्च सिद्धचारणकिन्नरैः ।३५

भगवान् शेष ने कहा—इस पूरे ब्रह्माण्ड के वेष्टन से भी तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड के मन्थन मे भी मुझे कोई ग्लानि नहीं होती है फिर इस मन्दर के वेष्टन से क्या मुझे हानि हो सकती है ।२६। इसके अनन्तर उसी क्षण में उस मन्दर शैल को उत्पादित करके क्षीर सागर में उस समय में लीला ही से डाल दिया था और कूर्म तथा नाग नीचे स्थित हो गये ।३०। जिस समय महादेव और दानव क्षीरोद के मन्थन में निराधार शैल को मन्थन करने में समर्थ न हो सके थे तो वे सब बलि के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे वहाँ पर देवों के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे, वहाँ पर देवों के भी देवेश्वर भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान थे ।३१-३२। वहाँ पर उन सबने श्वेत पद्म के समान प्रभा वाले—योग निद्रा में निरत—पीताम्बरधारी अच्युत देव का दर्शन किया था । वह प्रभु हार और केयूर से नद्ध अंग वाले और शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले—पद्मा के पाद पद्म से नाभि मण्डल का स्पर्श करते हुए विराजमान थे । गरुड़ उस समय में अपने पक्षों से उनका व्यंजन कर रहे थे और सिद्धचारण तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तवन किये जा रहे थे ।३३-३५।

आम्नायैर्मूर्त्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः ।
सव्यबाहूपधानं तन्तुष्टुवुर्देवदानवाः ।३६
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।
नमो लोकत्रयाध्यक्ष ! तेजसामितभास्कर ! ।३७
नमो विष्णो ! नमो विष्णो ! नमस्ते कैटभार्दन ।

नमः सर्गे क्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः ।३८
रुद्ररूपाय शर्व्वाय नमः संहारकारिणे ।
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने ।३९
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ।
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महानल ! ।४०
नमो नाभिहृदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल ! ।
पद्मभूत ! महाभूत ! कर्त्रे हर्त्रे जगत्प्रिय ।४१
जनिता सर्वलोकेश । क्रियाकारणकारिणे ।
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने ।४२

उन नारायण प्रभु के चारों ओर मूर्त्तिमान् आम्नाय स्थित होकर स्तुति कर रहेथे । मध्यबाहु उपधान वाले उन प्रभु नारायण का समस्त देवों और दानवों ने वहाँ पर स्तवन किया था ।३६। सभी दिशाओं में वे सब अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर तथा प्रणतहोते उपस्थित हो गयेथे । देव दानवों ने कहा—हे तीनों लोकोंके स्वामिन । आपकी सेवामें हमारा नमस्कार समर्पित है । आप तो अपने तेज के द्वारा अमित भास्कर के समान हैं । हे विष्णो ! हे विष्णो ! हे कैटभ दैत्यके मर्दन करने वाले ! आपको हम सबका बारम्बार नमस्कार है । समस्त क्रियाओं के करने वाले और इस जगती तल के परिपालन करने वाले आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ।३७-३८। संहार के करने वाले रुद्र रूप धारी भगवान् शर्व के लिए हमारा नमस्कार है । हे शूल के अपने आयुध से नधर्षण करने योग्य । दानवों के घात करने वाले आपको नमस्कार है ।३९। हे क्रम के भय से आक्रान्त ! हे प्रचण्ड दैत्येन्द्रों के कुल के लिए काल । हे महानल । त्रैलोक्य स्वरूप और अभव आपकी सेवा में बारम्बार प्रणाम समर्पित है । आपतो अपनी नाभिरूपी ह्रदसे उत्पन्न पद्म के गर्भसे महान् अचल हैं । हे पद्मभूत ! हे महाभूत हे जगत् के परम प्रिय ! सबके कर्त्ता और हर्त्ता आपके लिए नमस्कार हैं ।४०-४१। हे

सर्व लोको के ईश ! आप ही सबके जनन करने वाले हैं। देवों के शत्रुओं के विनाश करने वाले और महा समरशाला तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम उपस्थित है ।४२।

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप । नमः कीर्तिनिवासिने ।
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् ।४३
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ।
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना ।४४
मथ्यताममृतं देव । स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्वं वचस्तदा ।
विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ।४५
स्वागतं विबुधाः । सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ।४६
नारायणेनैव मुक्ताः प्रोचुस्तत्रदिवौकसः ।
अमरत्वाय देवेश ! मथ्यमाने महोदधौ ।४७
यथाऽमृतत्वं देवेश ! तथा नः कुरु माधव ! ।
त्वया विना नच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन ! ।४८
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ! ततोऽग्रे भव नो विभो ।
इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ।४९

हे लक्ष्मी के मुखरूपी कमल के रसास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्त्ति निवासी आपके लिए नमस्कार है । हम सबके अमरतत्व प्राप्तिके लिए आप इस समस्त शैलों में अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त बल सम्पन्न बाहुओं से अवष्टब्ध करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और इसे धारण करिए ।४३-४४। हे देव ! स्वधा, स्वधाहा की कामना करने वालों के अमृत का मन्थन कीजिए । इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया

था। उसी समय में मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान ने कहा—सब देवगणो ! आपका स्वागत है। हमको आप यह बतलाइए कि यहाँ पर इस समय में आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इसमें में आप लोग यहाँ प्राप्त हुए हैं उसको अब मेरे सामने बिल्कुल दुःख रहित होकर बतलाये ।४५-४६। भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वहाँ पर देवगणने कहा--हे देवेश ! अमरता के लिए मध्यमान महोदधिमें जिस प्रकार से हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव! आप करिए। हे कैटभार्दन। आपके बिना हम लोगों के द्वारा यह नहीं किया जा सकता है।४७-४८। हे नाथ। उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो। आप हमारे सबके आगे हो जाइए। इस तरह से कहे गये अरियों के मर्दन करने वाले और अप्रधृष्य विष्णु उनके साथ चल दिए थे।४९।

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः ।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ।५०
विषभीतास्ततोदेवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः ।
मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ।५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना ।
दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा ।५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ।५३
ततो देवासुरैः सर्वैं र्जयशब्दपुरःसरम् ।
दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः ।५४
ततः श्रान्तास्तास्तु ते सर्वे देवा दैत्यपुरःसरा ।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाम्बुशीकरान् ।५५

ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः ।
भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः ।५६

भगवान् विष्णु उन सब देवों के सहित वहाँ पर चले गये थे जहाँ पर यह मन्दराचल विद्यमान था । वह मन्दराचल भोगी शेष के भोग के द्वारा वेष्टितथा और अमरों तथा दानवों के द्वारा धृत हो रहा था । ।५०। क्योंकि देवगण विष से भयभीत होकर शेष नाग की पूँछ की ओर स्थित हो रहे थे तथा संहिकेय जिनके आगे था ऐसे दैत्यों के संघ शेष के मुख की ओर समवस्थित थे । सहस्र मुखों वाले इसके शिर को बलि ने सव्य दक्षिण हाथसे आकर्षित किया था।५१-५२। उन भगवान् नारायण ने अपनी दोनों भुजाओं से सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल को अमृत का मन्थान धारण किया था।५३। इसके अनन्तर समस्तदेवों और असुरों ने जय शब्दके उच्चारण पूर्वक दिव्य डेढ़ सौ वर्ष तक उस क्षीर सागर का मन्थन किया था ।५४। इसके पश्चात् वे सब दैत्य पुरस्सर देवगण अत्यन्त श्रान्त हो गये थे । उन सबके थकित होने पर देवेन्द्र ने मेघ होकर उन अमृत के समान जल के सीकरों की वर्षा की थी । तथा शीतल वायु वहने लगा था । जब देवगण भग्न प्रायः होकर प्राप्त हो गये थे तो उस समय पर कमलासन प्रभु ने उनको प्रोत्साहित दिया था जिससे मन्थन कार्य बराबर चलता रहे ।५५-५६।

मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः ।
अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा ।५७

ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम् ।
भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे ।५८

निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः ।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफला द्रुमाः ।५९
ततः फलानां वीर्य्येण पुष्पौषधिरसेन च ।
क्षीरसङ्घर्षणाच्चापि दधिरूपमजायत ।६०

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः ।
तदम्बु मेदसोत्सर्गाद्वारुणो समपद्यत ।६१
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः ।
तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन् ।६२
ततोऽतिवेगाज्जगृहुर्नगेन्द्रं सर्वतोऽसुराः ।
मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ।६३

कमलासन प्रभु ने सिन्धु का मन्थन करो मन्थन करो--यह बार-२ कहा था । जो उद्योग में परायण हुआ करते हैं उनको सदा ही अपार श्री प्राप्त हुआ करती है । इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा प्रोत्साहित हुए देवोंने पुनः अम्बुधि का मन्थन किया था । फिर दश हजार योजन के शिखर वाले शैल के भ्राम्यमाण होने पर हस्तियों के यूथ, वराह, शुरभ आदि सहस्रों एवं लाखों श्वापद, पुष्प तथा फलोवाले वृक्ष, फलो के वीर्य से तथा पुष्पों और औषधियों के रस से एवं क्षीर के संघर्षण से भी वह सागर दधिके रूप वाला होगया था।५७-६०। इसके पश्चात् सहस्रों समस्त जीवों के चूर्णित होने पर उस अम्बु मेद के सोत्सर्ग से वारुणी समुत्पन्न हुई थी ।६१। उस वारुणी की गन्ध को सूँघकर सब देव और दानव बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे । उसके आस्वाद से देव गण और दैत्य आदिक सब बली हो गये थे।६२। इसके उपरान्त असुरों ने सभी ओर वेग के साथ उस नागेन्द्र को ग्रहण किया था और वह मन्थान तथा मन्थयष्टि मेरु वहाँ पर अचल हो गया था ।६३।

अभवच्चाग्रतोविष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः ।
स वासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत ।६४
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः ।
ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ।६५
भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम् ।
ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ।६६

पुरतो विप्रचत्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ ।
द्विमूर्द्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ।६७
एते चान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिता: ।
ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिता: ।६८
बभूवात्र महाघोषो महामघरवोपम: ।
उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ।६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मु: शतशोऽथ सहस्रश: ।७०

आगे की ओर भुजमन्दर बन्धन वाले विष्णु थे और वह वासुकि के फणों में संलग्न हाथ वाले कृष्ण शोभा दे रहे थे ।६४। उस समय में जिस प्रकार से नीलोत्पलों से युक्त अति विस्तार वाला ब्रह्मदण्ड हो । उस समय में सहस्रों मेघों की ध्वनि उस सागरसे उठकर सुनाई दे रही थी ।६५। द्वितीय भाग में भगवान् और उसके आगे आदित्य थे । इसके पश्चात् रुद्रगण और महान् उत्साह वाले वसुगण तथा गुह्यक आदि थे। आगे की ओर विप्रचित्ति, नमुचि तथा वृत्र और शम्बर थे द्विमूर्धा,वज्र दंष्ट्र, सैंहिकेय तथा बलि थे ।६६-६७। ये सब तथा अन्य बहुत-से मुख भाग की ओर उपस्थित थे । उन सबने बल एवं तेज से विभूषित होते हुए दृप्त होकर अम्बुधि का मन्थन किया था ।६८।सुरों असुरों के द्वारा मन्दराचल से मथ्यमान सागर का महान् मेघ की ध्वनि के तुल्य महान् घोष हुआ था। उस महाद्रि से वहाँ पर अनेक जलचर विनिर्धूत हो गये थे और सैकड़ों तथा सहस्रों तो विलय को प्राप्त हो गये थे ।६९-७०।

वारुणानि च भूतानि विविधानि महेश्वर: ।
पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ।७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् ।
न्यपतन् पतंगोपेता: पर्वताग्रान्महाद्रुमा: ।७२

तेषां सङ्घर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः ।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ।७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् ।
विगतासूनि सर्वाणि सत्वानि विविधानि च ।७४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ।७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ।७६
तेषाममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः ।७७

महेश्वर भगवान् ने पाताल तल के निवास करने वाले विविध वारुण भूतों को विलय को प्राप्त कर दिया था । उस पर्वत के भ्राम्यमाण होने पर परस्पर में संघर्ष को प्राप्त हुए पर्वत के अग्रभाग से पक्षियों से संयुत महान् द्रुम नीचे गिर गये थे ।७१-७२। उनके संघर्ष होने से अग्नि अर्चियों के द्वारा बारम्बार जलती ने विद्युतों के द्वारा नील अभ्र की भाँति उस मन्दराचल को समावृत कर लिया था । निकले हुए कुञ्जरों को तथा सिंहों को—विगत प्राणों वाले सब अनेक सत्वों को दग्ध कर दिया था । अमरों में श्रेष्ठ ने इधर-उधर जलती हुई उस अग्नि को इन्द्रदेव ने सभी ओर मेघ से समुत्पन्न जल के द्वारा शान्त कर दिया था ।७३-७५। इसके अनन्तर वहाँ पर सागर के जल में नाना प्रकार के रसों का स्राव होने लगा था । उसमें महान् वृक्षों के निर्यास थे और बहुत सी औषधियों के रस थे । उन अमृत वीर्य वाले रसों के पय से ही सुरगण काञ्चन छवि के सदृश होते हुए अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे ।७६-७७।

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः ।
रसान्तरैर्विमिश्रिच्च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ।७८

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् ।
श्रान्ताःस्मः सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतञ्च तत् ।७९
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा ।
चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु मन्थनम् ।८०
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वैषां बलं विष्णो ! भवानेव परायणम् ।८१
बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः ।
क्षुभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ।८२

इसके अनन्तर उस समुद्र का जो जल था वह पय हो गया था और वह रसान्तरों से विमिश्रित हो गया था। इसके पश्चात् क्षीर से वह घृत हो गया था ।७८। इसके उपरान्त वहाँ पर समासीन ब्रह्माजी से देवगण ने यह वचन कहा था—हे ब्रह्मन् ! हम लोग अत्यधिक श्रान्त हो गये हैं और वह अमृत उत्पन्न नहीं हो रहा है। भगवान् नारायणके बिना समस्त दैत्य और सब देवोत्तम गण ने इस सागर के मन्थन को करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत किया था।इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देव नारायण से यह वचन कहा—हे विष्णो ! आप इनको बल का प्रदान करें। आप ही परायण हैं। भगवान् विष्णु ने कहा--जो इस कर्म के करने में समास्थित हैं उन सबको मैं बल का प्रदान करताहूँ। सबको क्रम से इसमें क्षोभ करना चाहिए और मन्दराचल को घुमाना चाहिए ।७९-८२।

=×=

११३-क्षीरोद मन्थन वर्णन

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधिम् ।
तत्पयः संहिता भूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ।१

तत: शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् ।
प्रसन्नाभ: समुत्पन्न: सोम: शीतांशुरुज्ज्वल: ।२
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
सुरादेवीसमुत्पन्ना तुरंग: पाण्डुरस्तथा ।३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भव: ।
मरीचिविकच: श्रीमान् नारायण उरोगत: ।४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तबकाञ्चित: ।
अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम् ।५
आपूरितदिशाम्भाग दु:सहं सर्वदेहिनाम् ।
तमाघ्राय सुरा: सर्वे मूर्च्छिता परिलङ्घिता: ।६
उपाविशन्नब्धितटे शिर: संगृह्य पाणिना ।
तत: क्रमेण दुर्वार: सोऽनल: प्रत्यदृश्यत ।७

महर्षि सूतजी ने कहा—भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करके वे बलवान् सब संहित होकर उस महोदधि के पय को अत्यन्त ही अधिक उन्होंने आकुलकर दिया था। इसके पश्चात् उस सागर से एक शत सहस्रांशु के ही समान प्रसन्न आभा वाला उज्ज्वल शीतांशु सोम, समुत्पन्न हुआ था इसके अनन्तर घृत से पाण्डुर वासिनी श्री समुत्पन्न हुई थी फिर सुरा देवी समुत्पन्न हुई तथा पाण्डुर तुरंग उत्पन्न हुआ था।१-३। फिर अमृत से सम्भव होने वाली परम दिव्य कौस्तुभ मणि समुत्पन्न हुई थी जो मरीचियों से विक एवं श्री सम्पन्न श्री और नारायण के उर:स्थल में प्राप्त हो गई थी।४। पारिजात की समुत्पत्ति हुई थी जो विकसित कुसुमों के स्तवकों से अञ्चित था। इसके अनन्तर उन सबने अम्बर के सदृश धूम को देखा था।५। सब दिशाओं के भागों को समापूरित सब देहधारियों को दु:सह ऐसे उस धूम को समाघ्रात करके सभी सुरगण मूर्च्छित और परिलंघित हो गये थे।६। सबके सब उस समय में अपने हाथ से शिर पकड़ कर सागर के तट पर बैठ गये थे

और इसके उपरान्त वह अनल अत्यन्त ही क्रम से दुर्वार होकर दिखाई देने लगा था ।७।

ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा ।
तेनाग्निना परिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ।८
दग्धाश्चाप्यर्द्ध दग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः ।
प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना ।९
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्मात् डुण्डुभजातयः ।
कृष्णाः सर्पामहादंष्ट्रारक्ताश्च पवनाशनाः ।१०
श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोमसजातयः ।
मशकाभ्रमरादंशाः मक्षिकाः शलभास्तथा ।११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रास्तथा हि विषजातयः ।१२
शार्ङ्ग हालाहलामुस्तावत्सकं गुरुभस्मगाः ।
नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ।
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ।१३

ज्वालाओं की माला से समाकुल आकार वाला और अर्चि से सभी ओर महान् भीषण वाले उस अग्नि से प्रायः सभी सुर और असुर परिक्षिप्त हो गये थे । वे कुछ दग्ध और कुछ आधे दग्ध होकर सभी दिशाओं में भ्रमण करने लगे थे । प्रधान देव और दैत्य उस वीह्न के द्वारा भीषित होगये थे । इसके अनन्तर उससे दुन्दुभ जातियाँ समद्भूत हो गयी थीं । कृष्ण सर्प, महान् दाढ़ों वाले—रक्त, पवन का अशन करने वाले—श्वेत-रीत तथा अन्य गोमस जाति वाले—मशक, भ्रमरदंश मक्षिका, शलभ, कर्णशल्य, कृकलास ऐसे अनेक वहाँ पर भ्रमण कर रहे थे और वे ऐसे सभी प्राणी थे जो दाढ़ोंसे सम्पन्न—रौद्र और विषयुक्त जातियों वाले थे । शार्ङ्ग हालाहल मुस्त वत्सक, गुरुभस्मग और अन्य नील पत्र आदि सैकड़ों बहुत से भेद से युक्त थे । जिनकी गन्ध ही ऐसी

प्रबल थी कि जिससे गिरियों के शिखर भी बहुत ही शीघ्र दग्ध हो जाते थे।८-१३।

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम्।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः।१४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम्।
नीलोत्पलाभैः कुसुमैः कृतार्धं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम्।१५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहि भयाश्रयन्तम्।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे।१६
केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्तथाप्ता विषमामवस्थाम्।१७
श्वासेन तस्य निर्दग्धा ततो विष्णिवन्द्रदानवाः।
दग्धाङ्गारनिभा जाता ये भूता दिव्यरूपिणः।
ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम्।१८
को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च।
किं कृत्वा ते प्रियं जायेदेवमाचक्ष्व मेऽखिलम्।१९
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः।
उवाच कालकूटस्तु भिन्नं दुन्दुभिनिस्वनः।२०

इसके अनन्तर नील रस के ओघ से भिन्न भृंग एवं अञ्जन की आभा वाला, विषम श्वास लेता हुआ, लोकान्तर पूरक काया से युक्त जलती हुए अग्नि के तुल्य केशों से संयुक्त—सुवर्ण और मुक्ता फलों से विभूषित अङ्गों वाला, किरीट धारी, पीतवर्ण के वस्त्र से वेष्टित, नीलोत्पलके समान आभा वाला, पुष्पोके कृत अर्थ वाला, अम्भोधर के तुल्य भीम वेग वाला, गर्जन से समन्वित, विग्रहधारी देही भय का समाश्रय था समुद्र के मध्य में संस्थित सबने देखा था। ऐसे उस भीषण, उग्र नेत्रों से सम्पन्न को देखकर समस्त भूत वित्रस्त हो गये थे। कुछ तो उसे देखर के साथही अभावको प्राप्त हो गयेथे और कुछ दूसरे बेहोशी

को प्राप्त हो गये थे। अन्य लोग अपने मुखों से फेनों का वमन कर रहे थे और कुछ तो विषम दशा को ही प्राप्त हो गये थे। उसके श्वास से ही बहुत से निर्दग्ध होगये थे। उसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र और दानव सबके सब दग्ध अङ्गार के तुल्य हो गये थे जो भूत परम भव्य दिव्य रूप वाले थे। इसके अनन्तर भगवान् विष्णु सुरात्मक उससे बड़े ही सम्भ्रम से बोले--श्री भगवान् ने कहा---आप एक अन्तक की प्रख्या वाले कौन हैं ? हम सबको आपका परमप्रिय क्या कर्म करना चाहिए। जिससे देव को प्रसन्न करें। यह समस्त आप हमको बतलाइए। वह कालाग्नि को सदृश भगवान विष्णु के इस वचन का श्रवण करके वह कालकूट विष जो मूर्तिमान् था भिन्न दुन्दुभि के समान ध्वनि वाला यह बोला।१४-२०।

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः।
यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः।२१
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान्।२२
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः।
मा मां ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम्।२३
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः।
ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम्।२४
निवेदितास्ततो द्वाःस्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः।
अनुज्ञाताः शिवेनाथविविशुर्गिरिशान्तिकम्।२५
मन्दरस्य गुहांहैमीं मुक्तामालाविभूषिताम्।
सुस्वच्छमणिसोपानांवैदूर्यस्तम्भमण्डिताम्।२६
तत्र देवासुरैः सर्वै जानुभिर्धरणीगतैः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम्।२७

कालकूट ने कहा--मैं कालकूट नाम वाला अम्बुधिसे समुत्पन्न होने

वाला विष हूँ जिस समय में तीव्रतर अमर्ष वालों और परस्पर में वध करने की इच्छा से युक्त सुरों असुरों के द्वारा इस अद्भुत दुग्धाम्भोधि का विमथन किया गया तो मैं उसी समयमें इन समस्त दानवोंके सहित देवों का हनन करने के लिये ही समुत्पन्न हुआ हूँ। अब मैं क्षणभर में यहाँ पर सब देह धारियों को मार डालूँगा। सब लोग मुझको ग्रसित मत करो अथवा भगवान गिरीश के समीप में चले जाओ ।२१-२३। उसके इस वचनको सुनकर सब सुर और असुर भयभीत होगये थे और ब्रह्मा तथा विष्णु को अपना नेता बनाकर वे सब भगवान् शङ्कर के समीप में जाकर प्राप्त हुए थे। वहां पर द्वार पर स्थित गणेशों के द्वारा उन सुरासुरों का आगमन निवेदित किया गयाथा। इस पर शिव के द्वारा वे आज्ञा को प्राप्त करके फिर भगवान शिवके समीप में पहुँच गये थे। वहाँ पर मन्दराचल की एक गुहा थी जो सुवर्ण मयीथी और मोतियों की मालाओं से विभूषित थी तथा उसमें अतीव निर्मल मणियों के सोपान बने हुए थे एवं वैदूर्य मणियों के स्तम्भों से वह गुहा मंडित थी। वहाँ पर सभी देव और असुर अपने घुटने भूमि पर टेककर बैठ गये थे। उन्होंने अपने आगे ब्रह्माजी को संस्थित करके इस स्तोत्र का कथन करना आरम्भ कर दिया था ।२४-२७।

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ।२८

नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे ।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ।२९
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे ।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ।३०

ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे ।
साङ्ख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ।३१
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्कर ।

रंहसे देवदेवानां नमस्ते च सुरोत्तम ! ।३२
एकवीराय शर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने ।
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने ।३३

शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे ।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ।३४

ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।
अग्र्यचैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ।३५

देवों तथा दानवों ने कहा—हे विरूपाक्ष देव ! सभी ओर से अनन्त चक्षु वाले आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है । पिनाक को हाथ रखने वाले—वज्रहस्त और धन्वी आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ।२८। त्रिशूल हाथ में रखने वाले--दण्डधारी और धूर्जटि आप को प्रणाम है । त्रैलोक्य के नाथ और भूत ग्रामों के शरीर को धारण करने वाले आपकी सेवा में नमस्कार ।२९। सुरों के शत्रुओं का हनन करने वाले—सोम, अग्नि, अर्क के उत्तम नेत्रों वाले को प्रणाम है । ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु के रूप वाले आपको हमारा नमस्कार है । वेद-रूप ब्रह्मा और देव रूपी आपके लिए नमस्कार है । भूतों के सांख्ययोग के लिए और शम्भु आपके लिए नमस्कार है । कामदेव के अङ्ग का विनाश करने वाले आपको हमारा प्रणाम है । हे काल के क्षय करने वाले ! हे सुर में उत्तम ! देवों के देव ! आपकी सेवा में नमस्कार है । ।३०-३२। एक वीर, शर्व और पिंग कपर्दी आपके लिए प्रणामहै । उमा देवी के भर्त्ता और यज्ञ त्रिपुरके घात करने वाले आपके लिए नमस्कार है ।३३। शुद्ध बोध प्रबोध मुक्त कैवल्य रूपी, तीनों लोकों के विधाता तथा वरुण, इन्द्र और अग्नि के रूप वाले आपकी सेवा में नमस्कार है । ।३४। ऋक् यजु, सामवेद पुरुष, ईश्वर, अग्र्य, उग्र, विप्र और श्रुति के चक्षु वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार समर्पित है ।३५।

रजसे चैव तत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ।

अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ।३६
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ।
भक्तानामार्तिनाशाय नारायणप्रियाय च ।३७
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च ।
ऋतुमन्वतरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ।३८
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने ।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ।३९
धन्विने रथिने यतये ब्रह्मचारिणे ।
इत्येवमादिचरितैः स्तुतं तुभ्यं नमोनमः ।४०
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः ।
उवाच वाक्यंभीतानांस्मितान्वितशुभाक्षरम् ।४१

स्तिमित आत्मा वाले—रजगुण और सत्व के लिए नमस्कार है। अनित्य नित्यभाव और नित्य चरात्मा के लिये नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त को प्रणाम है। भक्तों की आर्त्ति के नाश करने वाले और नारायण प्रभु के प्रिय, उमाके परम प्रिय, शर्व, नान्दि वक्त्राञ्जित ऋतु मन्वन्तर कल्प, पक्ष मास दिन स्वरूप वाले, नानारूप मुण्ड, वरुण पृथु दण्डी कमलहस्त, दिवा, शिखण्डी, धन्वी, रथी, यति, ब्रह्मचारी, इत्येवमादि चरितों से स्तुत आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। इस प्रकार से सुर और असुरों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् स्थाणु परम तोष को प्राप्त हुए थे। भीतों के स्मित से समन्वित शुभ अक्षरों वाला वाक्य उन्होंने कहा था—।३६-४१।

किमर्थमगता ब्रूत त्रासग्लानमुखाम्बुजाः ! ।
किं वाऽभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ।
इत्युक्तास्ते तु देवेशं प्रोचुस्त ससुरासुराः ।४२
अमृतार्थे महादेव ! मथ्यमाने महोदधौ ।
विषद्भूतं भुद्भूतंलोकसंक्षयकारकम् ।४३

स उवाचाथ सर्वेषां देवानां भयकारकः ।
सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मां पिबस्तथा ।४४
तमशक्तावयं ग्रस्तुं सोऽस्मान् शक्तोबलोत्कटः ।
एवनिश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः ।४५
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेन यमश्च विषमात्मवान् ।
मूच्छिताः पतिताश्चान्येविप्रणाशङ्कताः परे ।४६
अर्थाऽनर्थक्रियांयाति दुर्भगानां यथा विभो ! ।
दुर्वलानाञ्च सङ्कल्पो यथाभवति चापदि ।४७
विषमेतत्समुद्भूतं तस्माद्वामृतकांक्षया ।
अस्माद्भयान्मोचयत्वं गतिस्त्वञ्च परायणम् ।४८
भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः ।
यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्यः सोमः स्मरान्तकृत् ।४९

भगवान् श्री शङ्कर ने कहा—त्रास से म्लान मुख कमल वालों ! आप लोग यहाँ किस प्रयोजन के लिए समागत हुए हैं? आज मैं आपका क्या अभीष्ट प्रदान करूँ ? आप स्वेच्छया शीघ्र बतलाइए और इसके बताने में बिलम्ब न करिए । इस तरह से जब महादेव के द्वारा उनसे कहा गया था तो वे सब सुर और असुर उनसे कहने लगे थे ।४२। सुर और असुरों ने कहा—हे महादेव ! हम लोग अमृत के लिए इस महोदधि का मन्थन कर रहे थे उस मध्यमान सागर से अद्भुत और लोकों के सक्षय को करने वाला विष समुत्पन्न हुआ था । वह हम सब देवों का भय करने वाला बोला था कि मैं आप सबको भक्षण कर जाऊँगा अथवा मेरापान करो।४३-४४। उसकाग्रसन करनेके लिए हम सर्वअशक्त है प्रत्युत बल से उत्कट वही हमको ग्रसने में समर्थ है । यह केवल विश्वास मात्र मे ही ग्रस्त कर सकताहै वह शतपर्व की द्युति के समान द्युति वाला है । उसने विष्णु को कृष्ण कर दिया था और आत्मवान् उसने यम को विष कर दिया था । कुछ लोग उसने मूच्छित कर दिए

थे, अन्य गिरा दिये थे, तथा दूसरों को प्रनष्टकर दिया था । हे विभो! जैसे भाग्य वालों का हुआ करता है वैसेही सब अर्थ अनर्थ क्रिया प्राप्त हुआ करते हैं जिस तरह से आपत्ति काल में दुर्बलों का संकल्प हुआ करता है । यह विष उससे सद्भूत हुआ है शायद यह अमृतकी अकांक्षा से ही हुआ है । अब आप इस भय से हमारा मोचन करिये । आप ही हमारी अब गति हैं और आप ही परायण हैं । आप अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, भावोंके ज्ञाता, भुवनादीश्वर, विभु है तथा यज्ञों में सबसे आगे भोग करने वाले, सर्व हवि, सोम, सौम्य और आप काम देव के अन्त कर देने वाले हैं ।४५-४६।

त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत् ।
रक्षास्मान् भक्षसंकल्पाद्विरूपाक्ष ! विषज्वरात् ।५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद्भवः ।
भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् ।५१
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्र साध्यं सुरासुराः ! ।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ।५२
इत्युक्त्वा हृष्टरोमाणो बाष्पगद्गदकण्ठितः ।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथा इव मेनिरे ।
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ।५३
ततोऽव्रजद्द्रुतगतिनाककुद्मिनाहरोऽम्बरेपवनगतिजगत्पतिः।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनैर्विगृहीतशुभ्रचामरैः ।
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः ।
शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ।५४
आसाद्य दुग्धसिन्धुं तं कालकूटं विषं यतः ।
ततो देवो महदेवो विलोक्य विषमं विषम् ।५५
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामपाणिना ।
पीयमानेविषे तस्मिंस्ततोदेवाः महासुराः ।५६

हे देव ! आप ही एक हमारी गति हैं और देवों के समुदाय के कल्याण करने वाले हैं। हे विरूपाक्ष ! भक्षण करने के संकल्प वाले इस महाविष के ज्वर से हमारी आप रक्षा कीजिए।५०। यह श्रवण करके भग के नेत्रों के अन्त कर देने वाले भव प्रभु ने कहा—मैं इस घोर महाविष कालकूट का भक्षण कर जाऊँगा। हे सुरासुरों ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो कृच्छ्रसाध्य कृत्य होगा उसको भी साध्य कर दूँगा। आप लोग सब विगत ज्वर होकर स्थित रहिए।५१-५२। इतना कहकर वह शान्त हो गये। किन्तु देवगण प्रहृष्ट रोमों वाले, बाष्प से गद्गद कंठों वाले आनन्द के अश्रुओं से परीत नेत्रों वाले सबने अपने आपको सनाथ की तरह से मान लिया था। ब्रह्मा आदि समस्त देवगण सुमानस एवं समाश्वस्त हुए थे। इसके उपरान्त में पवन के समान गति जगत् के स्वामी हर आकाश में द्रुत गति वाले ककुदमी के द्वारा चले गये थे। ग्रहण कियेहैं शुभ्र चामर जिन्होंने ऐसे वाहनोंसे समन्वित और प्रभावित असुर और सुरेन्द्रनायकों को आगे करके वह शिखी के समान कपिश और ऊर्ध्व जूट वाले वशी भगवान् शिव इन शुभ आश्रमों वालों के सहित परम सुन्दर शोभा को प्राप्त हुए थे।५३-५७।

जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।
चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ।५७

स्तुवन्तश्चैव देवेश प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा ।
कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विषेदेवमथाब्रुवन् ।५८
विरिञ्चप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः ।
शोभते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ।५९
भृङ्गमालोनिभंकण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव ।
इत्युक्तः शंकरोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ।६०

पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्तं ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः।६१

उस समय में इन्द्र आदि जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवगण तथा हिरण्याक्ष प्रभृति दानवगण सभी गान करने लगे थे एवं नृत्य कर रहेथे और पुष्कल सिंहके समान नाद करते थे। देवेश्वर का स्तवन करते हुए वे सब उस अवसर पर परम प्रसन्न हो गए थे। जब वह महा कालकूट विष उनके कण्ठ देश में प्राप्त होगया था तो वे सब इसके अनन्तर देव से कहने लगे थे। ब्रह्मा हैं प्रधान जिनमें ऐसे सब सुरगण और बलि जिनमें प्रमुख थे वे सब असुरगण महादेव जी से बोले—हे देव ! कुन्द के पुष्प के तुल्य परम स्वच्छ श्वेत प्रभा वाले आपके गात्र में आपका यह कण्ठ भाग शोभा युक्त हो रहा है। भौंरों की माला के तुल्य यह महा-विष आपके इस कण्ठ में ही यहीं पर स्थित रहे। इस तरह से उनके द्वारा कहे हुए देव त्रिपुरके विनाशक शंकर ने उनसे कहा था और विष के पान कर लेने पर भगवान् हर उन देवगणों को छोड़कर मन्दर शैल के ही समीपमें चले गए थे। उनके वहाँ पर पहुँच जानेपर उन देवगणों ने फिर अनेक प्रकारों से उस सागर का मन्थन करना शुरू कर दिया था।५५-६१।

==

११३—क्षीरोद मन्थन वर्णन (३)

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत ।
धन्वन्तरिः स भगवान् आयुर्वेदप्रजापतिः ।१
मदिरा चायताक्षी सा लोकाच्चित्तप्रमाथिनी ।
ततोऽमृतञ्च सुरभिः सर्वभूतभयापहा ।२
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभञ्च महामणिम् ।
गजेन्द्रञ्च सहस्राक्षो हयरत्नञ्च भास्करः ।३
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ।
छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः ।४

पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा ।
धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदतिष्ठत ।५
श्वेतकमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।
एतदत्यद्‌भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थित: ।६
अमृतार्थे महानांदो ममेदमिति जल्पताम् ।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभु: ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—पुन: उस जलधि के मध्यमान होने पर वह भगवान आयुर्वेद के प्रजापति श्री धन्वन्तरि दिखलाई दिए थे । समस्त लोकों के चित्तों को प्रमथन करने वाली और आयत नेत्रोंसे समन्वित वह मूर्त्तिमती मदिरा दिखलाई दी थी और इसके अनन्तर अमृत तथा सब लोकों को भय का अपहरण करने वाली सुरभि तथा कमला प्रकट हुई । भगवान् विष्णुने उस कमलाको और कौस्तुभ मणि ग्रहण कर लिया था । सहस्राक्ष ने गजेन्द्र को और भास्कर देव ने हय-रत्न को ग्रहण किया था एवं लोकों के आरोग्य के प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि का भी ग्रहण किया था । छत्र को वरुण ने और शची के स्वामी ने कुण्डलों का ग्रहण किया कर लिया था । पारिजात नामवाले तरु को वायु देवने ग्रहण किया था और वह परम मुदित हुए थे । फिर देव वपुष्मान् धन्वन्तरि उत्थित हुए थे । उनके हाथ में एक श्वेत वर्ण का कमण्डलु था जिसमें अमृत स्थित था । इस परम अद्‌भुत दृश्य को देखकर दानवों का महान् नाद समुत्थित हो गया था । उस अमृत के लिए वह मेरा है—ऐसा ही सब कह रहे थे । इसके उपरान्त नारायण प्रभु मोहिनी माया में आस्थित हुए थे ।१-७।

स्त्रीरूपमतुलंकृत्वा दानवानभिसंसृत: ।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतना: ।
स्त्रियै दानवदैतेया: सर्वे तद्‌गतमानसा: ।८
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च ।

प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहिता दैत्यदानवाः ।६
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहारदानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ।१०
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
विष्णोः सकाशात् संप्राप्य संग्रामे तुमुले सति ।११
ततः पिबत्स तत्कालंदेवेष्वमतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत्तदा ।१२
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ।१३
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ।१४

श्री नारायण प्रभु ने अनुपम स्त्री का स्वरूप धारण किया था और फिर वे उन दानवों के समुख में समागत हुए थे। इसके अनन्तर उन मूढ़ बुद्धि वाले दानवोंने वह अमृत का कलश उस मोहिनी को समर्पित कर दिया था।८। दानव और देवगण सभी उस स्त्री में समासक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि उस मोहिनी का रूप लावण्य ही अद्भुत आकर्षण करने वाला था। इसके उपरान्त में सब दैत्य और दानव एकत्रित होकर अनेक अस्त्र तथा मुख्य महान प्रहरणों को ग्रहणकरके सबके सब देवगणों पर आक्रमणकारी हो गये थे। इसके पश्चात् वीर्यवान् विष्णु ने उस अमृत को लेकर नर के सहित प्रभुने दानवों से हरण कर लिया था। इसके उपरान्त उसी समय में उन देवगणों ने उस अमृत का पान कर डाला था। उस समय में तुमुल संग्राम उपस्थित हो गया था तो भी देवगण ने विष्णु से उस अमृत को प्राप्त कर लिया था।६-११। उस अमृत का देवों के द्वारा पान करने पर जोकि उनका परम अभीष्ट था, उन देवगणो में राहु दैत्य भी देवता का स्वरूप बनाकर बैठ गया था और उस समयमें उसने भी उस अमृतको पी लिया था। उस दानव

के कण्ठ देश में ही वह अमृत प्राप्त हुआ था उसी समय में चन्द्र सूर्योंने देवों के हित की कामना से इस तथ्यको बतला दिया था कि यह दानव कपट वेश में यहाँ पर अमृत पान कर रहा है । इसके पश्चात् भगवान् ने उसके अलंकृत शिर को सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला था जिस समय में वह अमृत का पान ओज से ही कर रहा था ।१२-१४।

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरोमहत् ।
चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयन् वसुधातलम् ।१५
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै ।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते ।१६
विहायभगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः ।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत् ।१७
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ।
ते सुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।१८
असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ।
भिन्नानिपट्टिशश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः ।१९
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशन्तदा ।
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ।२०
अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ।
ततो हलाहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः ।२१

उस दानव का वह शैल के शिखर के समान महान् शिर चक्र के द्वारा उत्कृत्त होकर वसुधातल को चालित करते हुए गिर गया था । ।१५। इसके पश्चात् राहुके मुखके द्वारा वैरी का विनिर्बन्ध किया गया था और वह चन्द्र एवं सूर्य के साथ शाश्वत है जो कि बल पूर्वक आज भी बाधा दिया करता ।१६। हरि भगवान् ने भी उस मोहिनी स्त्री के अतुल रूप का त्याग करके बड़े भयानक अनेक प्रहरणों के द्वारा दानव गणों को कम्पित कर दिया था।१७। प्रास, सुविपुल, तीक्ष्ण और सहस्रों

की संख्यामें गिर रहे थे। वे असुर गण भगवान्‌के चक्रके द्वारा निर्भिन्न होकर बहुत से रुधिर का वमन कर रहे थे।१८। असि, शक्ति और गदा से भिन्न होकर वे धारणी तल में निपतित हो गये थे। युद्ध स्थल में दारुण प्रहरणों के द्वारा भिन्न हुए शिर और पट्टिश भी भूमि पर गिर रहे थे।१९। उस समय में निरन्तर तप्त सुवर्ण का माल्य धरणी तल में गिर गई थीं। महासुर रुधिर से अवलिप्त अङ्ग वाले निहत हो गये थे जो कि पर्वतों के भाँति धातुओं में रक्त होकर भूमि पर सो रहे थे। इसके पश्चात् सभी ओर से हलहला शब्द सम्भूत हो गयाथा। ।२०-२१।

अन्योऽन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्यो लोहितायति।
परिघैश्चायसैः पीतैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः।२२
निघ्नतां समरेऽन्योऽन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत्।
छिन्धिभिन्धि प्रधावेति पातयेभिसरेतिव।२३
विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः।
एवं सुतुमुले युद्धे वर्त्तमाने महाभये।२४
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम्।
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि।
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसत्तमान्।२५

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यमुत्तमम्।२६
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः।
महाप्रभंदनुकुलदैत्यदारुणंतथोज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम्।२७
मुमोच वै तपनमुदप्रवेगवान् महाप्रभं रिपुनगरावदारणम्।
सम्वर्त्तकज्वलन समानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा।२८

इसके पश्चात् परस्पर में छेदन करने वालों के शास्त्रों से आदित्य के लोहित हो जाने आयत परिधों से पीत सन्निकर्षों से—मुष्टियों से

समर में अन्योऽन्य का निहनन करने वालोंका शब्द दिवलोक को मानो स्पर्श कर रहा था। काटो, भेदन करदो, दौड़ो, गिरादो,दौड़कर धावा कर घेरलो, इत्यादि शब्द जो कि महान् घोर थे वहाँ पर सभी ओर सुनाई दे रहे थे। इस तरह से महान् भय देने वाले तुमुल युद्ध के वर्तमान होने पर नर और नारायण दोनों देव उस समर स्थल में समागत हो गये थे। वहाँ पर भगवान् ने भी नर के दिव्य धनुष को देखकर भगवान् विष्णु ने दानव श्रेष्ठों के हनन करने के लिए चक्र का चिन्तन किया था। उसी समय में जैसे ही चक्र का चिन्तन किया था अम्बर तलसे वह सुदर्शन चक्र आ गयाथा जो महती प्रभा से युक्त और शत्रुओं के नाश करने वाला था। उस चक्र की दीप्ति सूर्य के तुल्य थी--उसका मण्डल कुण्ठा रहित था--वह सुन्दर दर्शन वाला-भीम-असह्य और उत्तम था।२२-२६। उस समागत हुए, जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले भयंकर, महाप्रभा से युक्त, दनुकुल के दैत्यों का दारण करने वाले तथा जलती हुई अग्नि के समान विग्रह वाले उस चक्रको करिके करके सदृश बाहु वाले अच्युत प्रभु ने छोड़ दिया था। उस समय में अति प्रवेगवान् तपन महाप्रभा से युक्त, शत्रुओं के नगरों का अवदारण करने वाला, सम्वर्त्तक (प्रलय कालीन अग्नि) वह्नि के तुल्य वर्चस वाला और वेग युक्त वह चक्र बारम्बार गिरा करता था।२७-२८।

व्यदारयद्दितितनयान् सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे।
दहत् क्वचिज्ज्वलनइवानिलेरितं प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत।२९
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमयः पिशाचवत्।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तथा।३०
महाचला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः।
अथान्तराभरजनना: प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः।३१
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य भास्वराः।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना महीध्रा पवनहताःसमन्ततः।३२

परस्परं भृशमभिगर्जितं मुहू रणाजिरे भृशमभि सम्प्रवर्त्तते ।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैर्महेषुभिः पवनपथं समावृणोत् ।३३
विदारन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो मही लवणजलञ्च सागरं महासुराःप्रविविशुरर्दिताःसुरैः।३४
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य च ।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ।३५
निनदयन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोगताः सलिलधरा यथा गतम्।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम्।
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितुकिरीटिने बलिभिरथमारैःसह।३६

उस संयुग मे पुरुष श्रेष्ठ के हाथों से ईरित उस चक्र ने सहस्रों की संख्या में दिति के पुत्रो को विदीर्ण कर दिया था ।२९। स्थान पर अग्नि की भाँति जो कि वायु से सम्प्रेरित होता है बल पूर्वक उन असुर गणों को दग्ध करता हुआ काट रहा था । आकाश में प्रदेरित, पुनः क्षिति मे उस समय में रुधिर मय पिशाच की भाँति रण स्थल में रक्त का वह चक्र पान कर रहा था । असुरगण अदीन मन वाले होकर पर्वतो से पुनः सुरगणो को अर्दित कर रहे थे ।३०। सहस्रो की संख्यामें स्थित महान् अचल विगलित मेघोंके वर्चस वाले गगन से महान् प्रपात करते हुए, पादपों के सहित बहुत प्रकार के मेघोंके स्वरूप वाले अन्तरा भरजनन वाले हो गये थे ।३१। आगे शिखरों के प्रविगलित हो जाने वाले महान् पर्वत परस्पर मे शीघ्र ही अभिपतित होकर भास्वर हो रहे रहे थे । इसके अनन्तर मही जिसमे आद्र और कानन चलायमान हो रहे थे ऐसी हो गयीथी और सभी ओर महीधर पवन के द्वारा आहतहो रहे थे ।३२। उस रण के आँगन में आपस में अत्यन्त अधिक अभिगर्जित बारम्बार अधिकाधिक रूपमे सम्प्रवृत्त हो रहा था । इसके अनन्तर नर ने श्रेष्ठ कनक के अग्रभूषणों वाले महान् बाणों से उस पवन के मार्गको समावृत्त कर दिया था ।३३। उस समयमें महान् भयानक उस सुरगणों

के युद्ध में पत्रियों के द्वारा पर्वतों के शिखरों को विदीर्ण करते हुए सुरों के द्वारा अर्दित हुए महासुर मही—लवण जल वाले सागर में प्रवेशकर गये थे ।३४। आकाश में गये हुए जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले परिकुपित सुदर्शन का श्रवण कराकर सुरगणों के द्वारा विजय प्राप्त करके वह मन्दराचल सुपूजित होता हुआ अपने ही देश को भेज दिया गया था ।३५। अपनी दिशा में प्राप्त होकर निनाद करता हुआ वह चला गया था । इसके अनन्तर सलिलधर सभी ओर वहाँ से जैसे समागत हुए थे वैसेही चले गये थे । इसके उपरान्त सुरों ने अत्यधिक परम आनन्द की प्राप्ति कर उस अमृत को सुनिहित ही कर दिया था । फिर बलशाली अमरों के सहित उस अमृत की निधि की रक्षा करने के लिए उस किरीट धारी प्रभु को दे दिया था ।३६।

११५–प्रासाद - भवन आदि निर्माण

प्राह्लादभवनादीनां निवेशं विस्तराद्वद ।
कुर्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृत: ।१

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर: ।२
ब्रह्मकुमारौ नन्दीश: शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ।३
अष्टादशंते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका: ।
सङ्क्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्यरूपिणा ।४
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् ।
पुरान्धकवधेघोरे घोररूपस्य शूलिन: ।५
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम् ।

करालवदनं तस्मात् भूतमुद्भूतमुल्बणम् ।६

ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।

ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवान् ! अब कृपा करके आप प्रासाद-भवन आदि के निवेश को विस्तार पूर्वक बतलाइए । किस विधान से इसे करना चाहिए और कौनसी वस्तु वास्तु, इस नामसे कही जाती है? ।१। श्री सूतजी ने कहा भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित् विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति ये अठारह वास्तु शस्त्र के उपदेशक विख्यात हुए हैं । मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले भगवन् ने भी मनु के लिए सक्षेप से उसका उपदेश दिया है ।२-४। सो अब मैं इस वास्तु के उत्तम शास्त्र का वर्णन करूँगा । प्राचीन समय में घोर रूप वाले भगवान् शूली के घोर अन्धक के वध होने पर शिव के ललाट से भीषण स्वेद का सलिल भूमि पर गिर गया था । उससे कराल वदन वाला एक अत्यन्त उल्वण भूत अद्भुत हुआ था ।५-६। वह आकाश का ग्रसन हुआ था और सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को ग्रसित-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । इस भूमि पर अन्धकों का जो भी जितना रुधिर पतित होता था उसको वह तुरन्त ही पी जाया करता था ।७।

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले ।

तथापि तृप्तिमगमन्न तदभूत यदा तदा ।८

जाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम् ।

क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ।९

ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे ।

वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदभीष्टन्तवानघ ! ।१०

तमुवाच ततोभूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् ।

भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तञ्च शूलिना ।११
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः ।
स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धान प्रपतद्भुवि ।१२
भीतभीतैस्ततोदेवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना ।
दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः ।१३
येन यत्रैव चाक्रान्तं स तत्रैवावसत्पुनः ।
निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ।१४

उसने उस युद्ध में महीतल पर जो भी जितना रुधिर पतित हुआ था उस सबका पान कर लिया था । तो भी वह भूत जब तक तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ था । वह भगवान शिव के आगे बड़ा ही दारुण तप किया करता था और क्षुधा से आविष्ट वह भूत इस जगती त्रयका आहरण करने को समुद्यत हो रहा था । कुछ समयमें उसकी उस महा दारुण तपस्या से उस युद्ध में भैरव उससे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये थे । भैरव ने उससे कहा—हे अनघ ! तुमको जो भी अभीष्ट हो वह वर मुझ से माँग लो तेरा कल्याण हो । इसके अनन्तर उस भूतने भैरव से कहा—हे देव देवेश ! मैं इस त्रैलोक्य के ग्रसन करने की सामर्थ्य वाला हो जाऊँ । इस पर शूली ने 'ऐसा ही होगा'—यह कह दिया था ।८-११। इसके उपरान्त वह सम्पूर्ण त्रिदिव समग्र भूमण्डल और अपने देह से रुन्धान अन्तरिक्ष भूमि पर गिर पड़ा था।१२। इसके पश्चात् डरे-डराये हुए देवों, ब्रह्मा, शूली और दानव, असुर तथा राक्षसों के द्वारा सभी ओर अवष्टब्ध हो गया।१३। जिसके द्वारा जहाँ पर ही आक्रमण किया गया था वह फिर वहीं पर निवास करने लगा था । समस्त देवों के निवास से 'वास्तु'—इस नाम से कहा जाता है ।१४।

अवष्टब्धाश्च तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः ।
प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः ।१५
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः ।

ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः ।१६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति ।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ।१७
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारोभविष्यति ।१८
एवमुक्तस्ततो हृष्टः सवास्तुरभूत्तदा ।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्मात्ततः प्रभृतिशान्तये १६

उसके द्वारा अवष्टब्ध सब देवगण विज्ञप्त हो गए थे कि हे समस्त सुरगणो ! आप प्रसन्न हो जाइये आपने मुझे निश्चयीभूत बना दिया हैं । अब मैं नीचे की ओर मुख वाला अवष्टब्ध हुआ किस आकार वाला होकर स्थित रहूँगा ? इसका उत्तर ब्रह्मादि सबने यही दिया था कि वास्तुके मध्यमें जो बलि है इसमें निश्चय ही वैश्वदेवान्त में आहार हो जावगा ।१५-१७। जो यज्ञ अज्ञान से किया गया है वह भी तेरा आहार होगा । यज्ञोत्सव आदि में जो बलि है वह तेरा आहार होगा । इस प्रकार से कहे जाने पर वह परम प्रसन्न होकर उस समय में वास्तु हो गया था । इसी कारण से तभी से लेकर शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ यह कहा गया है ।१८-१६।

११६–गृह निर्माण कला वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम् ।
यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ।१
चैत्रेव्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।
वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठेमृत्युं तथैव च ।२
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् ।

श्रावणे भृत्यलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ।३
पत्नीनाशोऽश्विने विद्यात्कार्तिके धनधान्यकम् ।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ।४
लाभञ्च बहुशो विन्द्यात् अग्निं माघे विनिर्दिशेत् ।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ।५
अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ।६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः ।
वर्ज्यंव्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः ।७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गृहकाल का विशेष निर्णय मैं बतलाता हूँ । जिस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा भवन के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए ।१। जो मनुष्य चैत्र मास में गृह निर्माण कराता है तो व्याधि को प्राप्ति किया करता है । वैशाख मास में धेनु और रत्नों का लाभ होता है तथा ज्येष्ठ मासमें गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कराने से मृत्यु हो जाया करती है । आषाढ़ मास में भृत्य और रत्न तथा पशु वर्ग का लाभ होता है । श्रावण मास में भृत्यों का लाभ होता है तथा भाद्रपद मास में गृह निर्माण कराने से हानि हुआ करती है । आश्विन मास में पत्नी का विनाश जानना चाहिए । कार्त्तिक के महीने में गृह के निर्माण कराने से धन-धान्य का लाभ होता है । मार्गशीर्ष में भक्तका लाभ तथा पौष में तस्करों से भय उत्पन्न होता है एवं बहुत सा लाभ भी होता है । माघ में अग्नि का भय होता है । फाल्गुन मास में काञ्चन और पुत्रों की प्राप्ति होती है यह काल का बल बता दिया गया है ।२-५। अब नक्षत्रों के विषय में विचार प्रकट किया जाता है—अश्विनी, रोहिणी, मूल तीनों उत्तरा, ऐन्दव स्वाति, हस्त, अनुराधा ये नक्षत्र गृह निर्माण के कार्य में परम प्रशस्त माने गये हैं । आदित्य, भौम इन दो वारों को वर्जित करके गृह

निर्माण में अन्य सभी बार शुभावह हुआ करतेहैं । व्याघृत, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड ये वर्जित करने के योग्य होते हैं ।६-७।

विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु कारयेत् ।
श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ।८
तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत् ।
चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत् ।६
स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमन्यन्तु परिवर्जयेत् ।
प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपबापीषु चैव हि ।१०
पूर्वं भूमिं परीक्षेत् पश्चाद्वास्तु प्रकल्पयेत् ।
श्वेता रक्ता तथापीता कृष्णा चैवानुपूर्वंश: ।११
विप्रादे: शस्यते भूमिरत: कार्य्यं परीक्षणम् ।
विप्राणां मधुरास्वादाकटुकाक्षत्रियस्य तु ।१२
तिक्ताकषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते ।
अरत्निमात्रे वैगर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वश: ।१३
धृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम् ।
ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम् ।१४

निष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र ये योग श्रेष्ठ होते हैं—इनमें गृह का निर्माण करना चाहिए। श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित् रौहण, वैराज, सावित्र—इन मुहूर्तों में गृह के निर्माण का आरम्भ कराना चाहिए। चन्द्र और सूर्य के बल को प्राप्त कर शुभ लग्न को भी देख लेना चाहिए। अन्य स्तम्भोच्छ्राय आदि कर्त्तव्यको परिवर्जित कर देना चाहिए। जो प्रासादों का निर्माण किराया जावे उनमें इसी प्रकार से विचार करना नितान्त आवश्यक है तथा कूआ और बावड़ी आदि के विषयमें भी यही विचार करे। सबसे पहिले भूमि की परीक्षा करनी चाहिए इसके पश्चात् वस्तु की प्रकल्पना करे। कृष्णा, रक्ता, श्वेता-तथा पीता अर्थात् सफेद, लाल, पीला, काला इनकी आनुपूर्वी से

कल्पना करे। विप्रों आदि की भूमि प्रशस्त कही जाती है। अतएव परीक्षण करना ही चाहिए। विप्रों का मधुर आस्वाद-क्षत्रिय का कटु और वैश्य तथा शूद्रों में तिक्त एवं कषाय आस्वाद प्रशस्त होता है। एक अरत्नि मात्र गर्त में जो कि सभी ओर से भली भाँति लिप्त कर दिया गया हो, उसमें एक कच्चे सकोरा में घृत भर कर चार बत्तियाँ उसमें डाले और उनको जलाकर उस पूर्ण दीपक को सभी दिशाओं की ओर मुख करके भूमि की परीक्षा के लिए रखना चाहिये।८-१४।

दीप्तौ पूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः।
वास्तुः सामूहिकोनाम दीप्यते सर्वतस्तु यः।१५
शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च।
अरत्निमात्रमधोगर्ते परीक्ष्यं खातपूरणे।१६
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम्।
फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत्।१७
त्रिपञ्च सप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि।
ज्येष्ठोतमाकनिष्ठाभूर्वर्णनीयतरा सदा।१८
पञ्चगव्यौषधिजलः परीक्षित्वा च सेचयेत्।
एकाशीति पदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन च।१९
पश्चात्पिष्टेन चालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः।
दशपूर्वायतालेखा दशचैवोत्तरायताः।२०
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव।
एकाशीति पदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु।२१

उसकी दीप्ति में पूर्वादि की आनुपूर्वशः वर्णों का ग्रहण करना चाहिए वास्तु—यह सामूहिक नाम है जो सभी ओर दीप्त होता है।१५। यह प्रासादों में और गृहों में सब वर्णों का शुभ देने वाला होता है। अरत्नि मात्र खातपूरण नीचे के गर्त में परीक्षण करने के योग्य है।१६। अधिक

होने पर श्री की प्राप्ति करता है और न्यून होने पर हानि करता है तथा सम होने पर सम ही फल देता है। हल की फाल के द्वारा जुते हुए अथवा देश में सब बीजोंका वपन कराना चाहिए। तीन-पाँच और और सात रात्रि में वे बीज जहाँ पर अंकुरित होते हैं वह भूमि ज्येष्ठ-उत्तम और कनिष्ठ होती है तथा वर्णनीयतरा हुआ करती है।१७-१८। पञ्चगव्य और औषधि के जलों के द्वारा परीक्षा करके सवन करे। इक्यासी रेखाओं से और कनक से पद करके फिर पिष्ट के द्वारा अनु-लेपन करे और सब ओर सूत्र से आलोकन करे। दश तो पूर्व की ओर आयत लेखा हों और दश ही उत्तरायण होवें। सब वास्तु विभागों में नवकानव जाननी चाहिए वास्तु के वेत्ता पुरुष को सब वास्तुओं में इक्यासी पद करना आवश्यक है।१९-२१।

पदस्थान् पूजयेद्देवां स्त्रिंशत्पञ्चदशैव तु।
द्वात्रिंशद्वा ह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदशः।२२
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत।
ईशानकोणादिषु तान् पूजयेद्धविषा नरः।२३
शिखी चैवाथपर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्य्यसत्यौ भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च।२४
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा।२५
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः।
असुरः शोषपापौ चरोगहिमुख्यएव च।२६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा।
बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु।२७
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद्बुधः।
आपश्चैवाथसावित्रो जयोरुद्रस्तथैव च।२८

पदोंमें स्थित देवोंका अभ्यर्चन करे जो तीस और पञ्चदश होवें।

बत्तीस बाह्य भाग में पूजने चाहिए और अन्दर में तेरह की पूजा करनी चाहिए ।२२। अब हम नामों का उल्लेख करके उनको बतलायेंगे उनके स्थानों को जानलो । उस मनुष्य को चाहिए कि ईशान आदि चारों ही करना चाहिए।२३। शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्या, सत्य भृश, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग पितृगण, दौवारिक सुग्रीव, पुष्पदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, चरोग, आदि मुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति, बाहिर ये बत्तीस होते हैं । उसके अन्त में जो होते हैं उनका श्रवण करो । ईशान आदि चतुष्कोणों में संस्थितों का बुध पुरुष को पूजन करना चाहिए । आप–सवित्र-जय-रुद्र ।२४-२८।

मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौचसमीपगान् ।
साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामत: शृणु: ।२९
अर्य्यमासविताचैवविवस्वान्विबुधाधिप: ।
मित्रोऽथराजयक्ष्माचतथापृथ्वीधर: स्मृत: ।३०
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मण: स्मृत: ।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्य्यंग्नोऽग्निर्दितिस्तथा ।३१
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेव कोणेष्वशेषत: ।
तन्मध्ये तु बहिर्विंश द्विपदास्ते तु सर्वश: ।३२
अर्य्यमा च विवस्वांश्च मित्र: पृथ्वीधरस्तथा ।
ब्रह्मण: परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वश: ।३३
वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक् ।
वायुं यावत्तथारोगात् पितृभ्य: शिखिनं पुन: ।३४
मुख्यात्भृशं तथा शोषाद्वितथं यावदेव तु ।
सुग्रीवाददितिं यावन् मृगात् पर्जन्यमेव च ।३५

मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके आठ समीप में गमन करने वाले-—एक के अन्तर से युक्त साध्यों को जान लो अब पूर्वाद्यों के नामों का श्रवण करो।२६। अर्यमा, सविता, विवस्वान्, वसुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर, आठवाँ, आठवाँ आपवत्स, परित ब्राह्मण, आप, अपवत्सपर्यन्त, अग्निदिति—-इस प्रकार से यह पदिकों का यह वर्ग है इसी तरह से कोणों में पूर्ण रूप मे हैं। उसके मध्य में सब ओर वे बाहिर बीस द्विपद हैं।३०-३२। अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर, दिशाओं, में वे सब ओर ब्रह्मा के दोनों ओर त्रिपदा है।३३। अब मैं मरलों को भी पृथक-२ बतलाऊँगा। तथा रोग से जहाँ तक वायु को फिर पितृगण से शिखि को बतलाता हूँ।३४। मुख्य मे भृश तथा शोष से वितथ पर्यन्त—सुग्रीव से जहाँ तक अदिति है और मृग से पर्जन्य पर्यन्त हैं।।३५।

एते वंशा: समाख्याता: क्वचिच्च जयमेव तु।
एतेषां यस्तु सम्पात: पदं मध्यं समं तथा।३६
मर्मचैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणञ्च यत्।
स्तम्भां न्यासेयुर्वर्ज्यानितुलाविधित्रिषुसर्वदा।३७
कीलोच्छिष्टोपघानादि वर्जयेद् तत्वतो जन:।
सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टो पितृवैश्वानरायत:।३८
मूर्द्धन्यग्नि: समादिष्टो मुखे चाप: समाश्रित:।
पृथ्वीधरोऽर्यमाचैवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ।३९
वक्षस्थले चापवत्स: पूजनीय: सदा बुधै:।
नेत्रयोदितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तको।४०
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नत:।
सूर्यसोमादयस्तद्वत् बाह्वो: पञ्च च पञ्च च।४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ।
सावित्र: सविता तद्वदधस्तं दक्षिणमास्थितौ।४२

ये वंश समाख्यात किये गये हैं और कहीं पर तो जय ही है। इन का जो सम्पात है मध्य पद तथा सम है। यह सम कह दिया जाता है जो त्रिशूल कोण गत है। सब ओर न्यासों में स्तम्भ है और तुला विधियों में वर्ज्य हैं। मनुष्य को कीलोच्छिष्ट उपघात आदि को यत्न से वर्जित कर देना चाहिए। सब जगह पर वास्तुका पितृवैश्वनानरायत निर्दिष्ट है। मूर्द्धा में अग्नि का निर्देश किया गया है—मुख में चाप समाश्रित है। पृथ्वीधर और अर्यमा ये दोनों स्तनों में अधिष्ठित हैं। वक्ष:स्थल में आपवत्स का बुद्ध पुरुषों को सदा पूजन करना चाहिए। नेत्रों में दिति और पर्जन्य, श्रोत्र में अदिति जयन्तक, दो सर्पेन्द्र अंस में संस्थिति प्रयत्नपूर्वक पूजन करनेके योग्य होतेहैं। उसी तरह से बाहुओं में पाँच-पाँच सूर्य सोमादिक पूजनीय हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा वामहस्त में दोनों समास्थित हैं। इसी प्रकार से सावित्र-सविता दक्षिण हाथ में आस्थित हैं।३६-४२।

विवस्वानथ मित्रश्च जठरे सुव्यवस्थितौ।
पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने।४३
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वंसमाश्रितौ।
पार्श्वेतु दक्षिणे तद्वत् वितथ: सगृहक्षत:।४४
ऊर्वोर्यमांबुपौ ज्ञेयौ जान्वौर्गन्धचतुष्पकौ।
जङ्घयो भृंगसुग्रीवौस्फिक्स्थौ दौवारिको मृग:।४५
जयशक्रौ तथामेढ्रे पादयो: पितरस्तथा।
मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते।४६
चतु: षष्टि पदो वास्तु: प्रासादे ब्रह्मणास्मृत:।
ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा।४७
बहि: कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिता:।
विंशति द्विपदाश्चैव चतु:षष्टि पदे स्मृता:।४८
गृहारम्भेषु कण्डूति: स्वाम्यङ्गे यत्र जायते।

शल्यं त्वपयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ।४९

सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम् ।

हीनाधिकां गतवास्तोसर्वथा तु विवर्जयेत् ।५०

नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत् ।

चतु: शालं त्रिशालञ्च द्विशालं चैकशालकम् ।

नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः ।५१

इसके अनन्तर विवस्वान् और मित्र जठरमें भली भाँति व्यवस्थित हैं। पूषा और पापयक्ष्मा हाथों के मणिबन्ध में हैं। उसी प्रकार से असुर और शेष वाम पार्श्व में समाश्रित है। दक्षिण पार्श्व में उसी भाँति वितथ और सगृहक्षत हैं। दोनों ऊरुओं में यम और अम्बुप जान लेने के योग्यहैं। दोनों जानुओंमें गन्धर्व और पुष्पक हैं। दोनों जंघाओं में भृग और सुग्रीव समवस्थित है और स्फिक भागों में दौवारिक और मृग स्थित होते हैं।४३-४५। जय और शक्र मेढ़ में संस्थित हैं और दोनों पादों में पितर समवस्थित रहा करते हैं। मध्य नव पद में ब्रह्मा है और वह हृदय में पूजित होते हैं। ब्रह्माजी के द्वारा यह वास्तु चौंसठ पद वाला कहा गया है। वहाँ ब्रह्मा चतुष्पद हैं तथा कोणों में अर्ध पद हैं। बाहिर कोणों में वास्तु में साध उभय संस्थित होते हैं। बीस द्विपद हैं और चौंसठ पद में बताये गये हैं।४६-४८। गृहों के आरम्भ कालों में स्वामी के अङ्गों में जहाँ पर कण्डुति होती है वहाँ पर प्रासाद तथा भवन में शल्य का अपनयन करना चाहिए। शल्य के सहित भयप्रद हुआ करता है और अशल्य शुभदायक होता है। हीनाधिक को गत वास्तु के सर्वथा विवर्जित कर देवे। चतु:शाल, त्रिशाल, द्विशाल और एक शाल हे द्विजोत्तमो! नाम निर्देशपूर्वक उनको बतलायेंगे और स्वरूप के द्वारा भी कहेंगे।४९-५१।

१३७--भवन निर्माण वर्णन

चतुः शालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा ।
चतुः शालञ्चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम् ।१
नाम्ना तत् सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये ।
पश्चिमद्वारहीनञ्च नन्द्यावर्तः प्रचक्षते ।२
दक्षिणद्वारहीनन्तु वर्द्धमानमुपाहृतम् ।
पूर्वद्वारविहीनं तत्स्वस्तिकं नाम विश्रुतम् ।३
रुचकंचोत्तरद्वारविहीनं तत्प्रचक्षते ।
सौम्यशालाविहीनं यत्त्रिशालं धान्यकञ्च तत् ।४
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम् ।
शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ।५
धन्यं यशस्यमायुष्य शोकमोहं विनाशम् ।
शालया याम्यया हीनं यद्विशालं तु शालया ।६
कुलक्षयकरं नृणां सर्वव्याधिविनाशनम् ।
हीनं पश्चिमया यत्तु पक्षघ्नं नाम तत्पुनः ।७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा---अब मैं चतुःशाला का नाम और स्वरूप से वर्णन करता हूँ । चतुःशाला चार द्वारों और सर्वतोमुख अलिन्दों से युक्त हुआ करता है।१। देव और नृप के आलय में वह नाम से सर्वतोभद्र परम शुभ होता है । पश्चिम द्वार से हीन नन्द्यावर्त्त कहा जाता है ।२। जो दक्षिण द्वार से हीन होता है वह वर्द्धमान उपाहृत होता है । पूर्व द्वार से रहित वह स्वस्तिक इस नाम से प्रसिद्ध है ।३। उत्तर द्वार से जो विहीन होता है वह रुचक नाम वाला होता है । जो सौम्यशाला से रहित होता है वह त्रिशाल और धान्यक होता है ।४। यह मनुष्यों को बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के फल को प्रदान करने वाला तथा क्षेम और वृद्धि के करने वाला होता है । पूर्व शाला से हीन

'सुक्षेत्रम' इस नाम से विश्रुत होता है ।५। यह परम धन्य, आयुष्य (आयुकी वृद्धि करने वाला)—शोक और मोह का विनाश करने वाला होता है । याम्य (दक्षिणा) शाला से हीन और शाला से विशाल होता है वह मनुष्यों के कुल का क्षय करने वाला और समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला हुआ करता है । जो पश्चिम दिशा के होने वाले द्वार से रहित होता है उसका नाम 'पक्षध्न'—हुआ करता है ।६-७।

मित्रबन्धून् सुतान् हन्त तथा सर्वभयापहम् ।
याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम् ।८
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथापुत्रफलप्रदम् ।
यमं सूर्यञ्च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालिकम् ।६
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत् ।
उदक्पूर्वे तु शालेह दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ।१०
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम् ।
धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद्विशालकम् ।११
तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम् ।
चूल्लीपूर्वा पराभ्यां तु साभवेन्मृत्युसूचनी ।१२
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम् ।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम् ।१३
सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि विशालानि सदाबुधैः ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि भवनं पृथिवीपतेः ।१४

याम्या पर शालाओं से मित्र-बन्धु-और सुतों की प्राप्ति होती है तथा सर्वप्रकार के भयोंका अपहरण एवं धन और धान्यके फलका प्रदान करने वाला पक्षध्न हुआ करताहै । पश्चिमोत्तर शालिक मनुष्योंके क्षेम एवं वृद्धि का करने वाला है और पुत्र की प्राप्ति का फल प्रदान करने वाला है । इसका नाम यम सूर्य जानना चाहिए ।८-९। उत्तर और पूर्व

की शालायें जहाँ पर होती हैं उनका नाम दण्ड होता है । यह मनुष्यों को राजा, अग्नि और मृत्यु का भय देने वाली है तथा कुल का क्षय करने वाली है ।१०। पूर्व और याम्य शालाओं से जो विशालक होता है उसका नाम धन है । यह अकाल मृत्यु और भय का प्रदान करने वाला तथा परचक्र के भय देने वाला होता है । पराओं से जो चूल्ली पूर्वा शाला होती है वह मृत्युकी सूचना देने वाली हुआ करती है ।११-१२। स्त्रियों को वैधव्यके देने वाला अनेक भयों का करने वाला होता है । उत्तर और याम्य की शाला से मनुष्यों को भय दान होता है । अतएव बुध पुरुषों को सदा सिद्धार्थ वज्र वर्ज्य विशाल ही करनी चाहिए । इसके अनन्तर अब मैं पृथिवी पति के भवन का वर्णन ।१३-१४।

पञ्चप्रकारं तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदित: ।
अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तरश्चोत्तमो मत: ।१५
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयते चाष्टभि: करै: ।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।१६
युवराजस्य वक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम् ।
षड्भि: षड्भिस्तथाशीतिहीयतेतत्रविस्तरात् ।१७
त्र्यंशेन चाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।
सेनापते: प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।१८
चतु: षष्टिस्तुविस्तारात्षड्भि: षड्भिस्तु हीयते ।
पञ्चस्वेतेषुदैर्घ्यञ्चषड्भागेनाधिक भवेत् ।१९
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।
चतुश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करषष्टि: प्रविस्तरे ।२०
अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।
सामन्तामात्तलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ।२१

यह नृप का भवन उत्तम आदि भेदों से पाँच प्रकार का बताया गयाहै । जो एकसौ आठ हाथके विस्तार वाला होता है वह ही उत्त म

माना गया है।१५। अन्य जो चार प्रकार के भवन कहे गये हैं उनमें जो विस्तार होता है वह आठ हाथों का कमही हुआ करता है। इन पाँचों में लम्बाई से चतुर्थांश से अधिक दीर्घता बताई गयी है। अब मैं युवराज के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में कहता हूँ वहाँ पर अस्सी के विस्तार से छै-छै हाथ कम होता जाया करता है। इन पाँचों में भी तीन अंश से अधिक दीर्घता कही जाती है। अब सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में वर्णन किया जाता है।१६-१८। ये भवन चौंसठ के विस्तार से छै-छै हाथ प्रत्येकमें कम होता जाया करता है। इन पाँचों में चौडाई षड्भाग से अधिक ही हुआ करती है।१६। अब राजा के मन्त्रियों के भी भवन पाँच प्रकार के ही हुआ करते हैं उनका वर्णन किया जाता है। इनका विस्तार साठ हाथ का होता है और ये भी क्रम से चार-चार हाथ कम होते हैं।२०। इन पाँचों में भी आठ अंश से अधिक दीर्घता हुआ करती है। अब इसके उपरान्त राजा के सामन्त–अमात्य और लोकों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन यहाँ पर किया जाता है।२१।

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषु शस्यते।२२
शिल्पिनां कञ्चुकीनाञ्च वेश्यानां गृहपञ्चकम्।
अष्टाविंशत् कराणान्तु विहीनं विस्तरे क्रमात्।२३
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत्।
दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्।२४
चतुर्थांशाधिकंदैर्घ्यं विस्ताराद्विदशैव तु।
अर्धाधिकरहानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात्।२५
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम्।
तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवन पञ्चकम्।२६
चत्वारिंशत्तु विस्तारा चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।

पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकं भवेत् ।२७
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम् ।
द्वात्रिंशतिकराणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।२८

ये भवन चालीस और आठ अड़तालीस हाथ के विस्तार वाले हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार हाथ न्यून हो जाया करते हैं। इनमें भी चौथाई अंश से अधिक दीर्घता (चौड़ाई) इन पाँचोमें प्रशस्त हुआ करती है।२२। नृप के यहाँ पर जो शिल्पी-कञ्चुकी और वेश्यायें होते हैं उनके भी भवन पाँच तरहके उत्तम आदि भेदों वाले हुआ करते हैं। अट्ठाईस हाथके विस्तार वाले होते हैं और क्रमसे प्रत्येकमें हीनता भी होती चली जाया करती है।२३। दुगुनी दीर्घता भी बताई गयी है। इसी प्रकार से माध्यमों में भी होती है। अब दूतीकर्म करने वाले और अन्तिकादि के पाँच भवनों को बतलाते हैं। चतुर्थांश से अधिक दीर्घता होती है और विस्तार बारह का हुआ करता है। आधे-आधे हाथ की न्यूनता विस्तार के क्रम से पाँचों में हो जाती है ।२४-२५। राजा के यहाँ रहने वाले देवज्ञ ज्योतिषी---गुरु, वैद्य, सभास्तार, पुरोहित, इनके भी पाँच-पाँच प्रकार के उत्तमादि भेद से भवन हुआ करते हैं। उनको बतलाते हैं---चालीस हाथ के विस्तार से युक्त्ये होते हैं और चार-चार हाथ क्रम से हीन होते हैं। इन पाँचोंमें दीर्घता षड्भाग से अधिक हुआ करती है। अब ब्राह्मणादि चार वर्णों के सामान्य पाँचों गृहों के विषय में कहते हैं। ये बत्तीस हाथ के विस्तार से संयुत हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार की हीनता हुआ करती है।२६-२८।

आषोडशादितिपरं नूनमन्तेवसायिनाम् ।
दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेनाथ पादिकम् ।२९
अधिकदैर्घ्यं मित्याहुर्ब्राह्मणादेः प्रशस्यते ।
सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु ।३०
नृपवासगृहंकार्य्यं भाण्डागारस्तथैव च ।

सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ।
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ।३१

अन्तरप्रभवानाञ्च स्वपितुर्गृहमिष्यते ।
तथा हस्तशतादर्द्धं गदितं वनवासिनाम् ।३२

सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते ।
चतुर्दशहृते व्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः ।३३

पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः ।
तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता ।३४

विप्रस्य महती शाला न दैर्घ्यं परतो भवेत् ।
दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य न विद्यते ।३५

षोडश से लेकर हति पर निश्चय ही अन्तेव क्षत्रियों का भवन होता है । दशांश से—अष्ट भाग से और त्रिभाग से पादिक होता है । ब्राह्मणादि की दीर्घता अधिक प्रशस्त होती है—ऐसा कहते हैं । सेनापति और नृप के भी गृहों में अन्तर होता है ।२९-३०। नृप के निवास का गृह तथा भाण्डागार दोनों का निर्माण करना चाहिए सेनापति का गृह और चारों वर्णों वालोंका गृह अन्तरमें ही होना आवश्यक है । निवास के लिए सर्वदा राज पूज्यों में गृह करना चाहिए ।३१। जिनका अन्तर में प्रभव हो उनको अपने पिता का ही गृह अभीष्ट होना चाहिए । वन वासियों का गृह सौ हाथ का आधा भाग कहा गया है ।३२। सेनापति का भी जो कि राजाका होता है, सप्तति (सत्तर)के सहित एवं अन्वित तथा चतुर्दश व्यास के हृत होने पर शाला को कीर्त्तित किया गया है । उसके पञ्च त्रिंशान्वित होने पर यह अलिन्द कहा गया है तथा छत्तीस हाथ वाली और सात अंगुलों से समन्वित विप्र की महती शाला होनी है । पर से उसकी दीर्घता नहीं होनी चाहिए । उसी भाँति दश अंगुल से अधिक क्षत्रिय की नहीं होनी है ।३३-३५।

पञ्चविंशत्करा वैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश ।
तावत्करैव शूद्रस्य युता पञ्चदशाङ्गुलैः ।३६
शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत् ।
सोष्णीषं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत् ।३७

पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते ।
समन्ताद्वीथिका यत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ।३८
शुभदं सर्वमेतत्स्याच्चातुर्वर्ण्यं चतुर्विधम् ।
विस्तरात् षोडशो भागस्तथाहस्तचतुष्टयम् ।३९
प्रथमो भूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात्प्रहीयते ।
द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ।४०
पक्वेष्टकाभवेद्भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात् ।
दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृण्मयभित्तिका ।४१

गर्भमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते ।
गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ।४२
संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयोभवेत् ।
द्वारशाखा सुबाहुल्यमुच्छ्रायकरसम्मितैः ।४३
अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां पृथुत्वं शस्यते बुधैः ।
उदुम्बरोत्तमांगञ्च मदर्धार्धं प्रविस्तरात् ।४४

वैश्य की शाला पच्चीस कर विस्तृत तथा त्रयोदश अंगुल होनी चाहिए । उतने ही हाथों के विस्तार से युक्त पन्द्रह-अंगुल सहित शूद्र की शाला होना चाहिए ।३६। शाला के विभाग से जिसके आगे एक वीथिका का होना आवश्यक है । जिसका पीछा उच्छ्रय वाला हो वह श्रेय और सोष्णीय नाम वाला वास्तु होता है । जिसके पार्श्वों में वीथिका हो उसका नाम सावष्टम्भ कहा जाता है । जिसके सब ओर वीथिका हो उसका नाम यहाँ पर स्थित कहा जाया करता है । चातुर्वर्णों में यह चारों प्रकार का सब शुभ देने वाला होता है । विस्तार से

यह षोडश भाग होता है तथा चार हाथ हुआ करता है ।३७ ३९।
प्रथम भूमिकोच्छ्राय ऊपर से हीन होता है । द्वादश अंश से सब भूमिकाओं में उसी प्रकार का उच्छ्रय होता है।४०। षोडश अंश से विस्तार युक्त पकी हुई ईंटों का भित्ति होनी चाहिए । दारव अर्थात् काष्ठों से भी निर्मित्त हों या मृण्मय भित्ति होवे ।४१। गर्भमास से मान सब वास्तुओं में प्रशस्त होता है । उस गृह मास पचास और अष्टादश अंगुलों से संयुत द्वार विष्कम्भ होता है और द्विगुण उच्छ्राय होता है । द्वारशाखा मुबाहुल्यकर सम्मित से उच्छ्राय होना है । सब वास्तुओं का अंगुलों से पृथकृत्व बुधों के द्वारा प्रशस्त माना जाता है । उदुम्बरोत्तम और आम उसके अर्ध का अर्ध का अर्ध विस्तार में होना है ।४२-४४।

=×=

१३८—स्तम्भमान निर्णय

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भमानविनिर्णयम् ।
कृत्वा स्वभुवनोच्छ्रायं सदासप्तगुणंबुधैः ।१
अशीत्यंशः पृथुत्वं स्यादग्रेणावगुणैः सह ।
रुचकश्चतुरः स्यात्तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ।२
द्विवज्रः षोडशास्रस्तु द्वात्रिंशास्रः प्रलीनकः ।
मध्यप्रदेशे यस्स्तम्भो वृत्तोवृत्तइति स्मृतः ।३
एते पञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु ।
पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ।४
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु ।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ।५
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः ।
हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु ।६

वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशे दक्षिणेन तु ।
द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अब स्तम्भों के मान का विशेष निर्णय किया जाता है । अपने भुवनका उच्छ्राय करके बुधों के द्वारा सद सप्त गुण होना चाहिए ।१। अस्सी अंश स्तम्भ का पृथुत्व होना चाहिए । अग्रभाग से अवगुणों के साथ चार वाला रुचक होता है । आठ अस्त्रों वाला वज्र—इस नाम से कहा जाया करता है । षोडश अस्त्र वाला द्विवज्र और बत्तीस से संयुक्त प्रलीनक कहा जाताहै मध्य भाग में जो स्तम्भ हुआ करता है उसको वृत्तोवृत्तत्त इस नाम से पुकारा जाया करता है ।२ ३। इस तरह से रुचका—वज्र—द्विवज्र–प्रलीनक और वृत्तोवृत्त ये पाँच महान् स्तम्भ सर्व वस्तुओंमें परमप्रशस्त कहे जाते हैं । पद्मवत् लीलना कुम्भ पत्र दर्पण से रूपित हुआ करते हैं ।४। स्तम्भ का नवम अंश जो हो उसी से पद्म कुम्भ के अन्तर होते हैं । स्तम्भ के तुल्य ही तुला कही गयी है और जो हानि होती है वह उप तुला होती है ।५। यहाँ पर सभी जगह त्रिभाग से अथवा चतुर्भाग से उसी भाँति सर्व भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन-हीन होती है, सबके निवास करने योग्य गेहों में दक्षिण भागमे प्रवेश करने में जो द्वार हुआ करते हैं जो कि परम प्रशस्त होते हैं उन्हीं के विषय में अब मैं वर्णन करता हूँ ।६-७।

पूर्वेणेन्द्रजयन्तञ्च द्वारं सर्वत्रशस्यते ।
याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ।८

पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणञ्च प्रशस्यते ।
उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभदम्भवेत् ।९
तथावास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत् ।
द्वारे तु रथ्यया विद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः ।१०

तरुणाद्द्वेषबाहुल्य शोक: पङ्केन जायते ।
अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ।११
व्यथाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्निभयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्वीकृतं भवेत् ।१२
गृहभर्तुर्विनाश: स्यात् गृहेण च गृहे कृते ।
अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत् ।१३
तथा शस्त्रभयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु ।
उच्छ्राया द्विगुणां भूमि त्यक्त्वा वेधो न जायते ।१४

पूर्व दिशा मे होने वाले इन्द्र और जयन्त द्वार सर्वत्र बहुत ही प्रशस्त होते हैं बुध लोग जो दक्षिण भाग में द्वार आता है उसे याम्य और वितथ कहा करते हैं ।८। पश्चिम दिशामें होने वाले द्वार को पुष्प दन्त और वारुण कहा जाता है जो कि प्रशस्त होता हैं । उत्तर में होने वाला द्वार भल्लाट और सौम्य कहलाता है यह भी शुभके प्रदान करने वाला होता है ।६। उसी प्रकार से सभी जगह पर द्वार का वेध वर्जित होना चाहिए । रथ्या मे जो विद्ध द्वार होता हैं उसमें तो सम्पूर्ण कुल का क्षय हो जाया करता है अर्थात् ऐसा द्वार तो कभी भी कराना ही नहीं चाहिए ।१०। तरुण से वेष का बाहुल्य होता है और पंक से शोक हुआ करता है । सर्वदा कूप वेधसे निश्चय रूपसे अपस्मार हुआ करता है ।११। प्रस्रवण मे व्यथा होती है और कील से अग्नि का भय हुआ करता है । देवता से विद्ध द्वार में विनाश होता है । स्तम्भ के द्वारा विद्ध द्वारके होनेपर गृहिणी बन्धकी हो जाया करतीहै । किसी अन्त्यज के गृह के द्वारा वेध होने पर शास्त्रमय जानना चाहिए या प्राप्त करे । उच्छ्राय मे द्विगुणित भूमि का त्याग करके वेध नहीं हुआ करता है । ।१३-१४।

स्वयमुत्पाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् ।
स्वयं वापिहितेविद्यात् कुलनाशंविचक्षणः ।१५
मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत् ।
द्वारोपरि च यद्द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम् ।१६
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः ।
वज्रन्तु सङ्कटं मध्ये मद्योभर्तु विनाशनम् ।१७
तथान्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत् ।
मूलद्वारन्तथान्यत्तु नाधिकशोभनं भवेत् ।१८
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभिःमूलद्वारन्तु शोभयेत् ।
पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिनाचाक्षतोदकैः ।१९
भवनस्य वटः पूर्वो दिग्भागे सर्वकामिकः ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ।२०

स्वयं द्वार के उत्पाटित होने पर जो गृह में निवास करने वाले होते हैं उनको उन्माद हो जाया करता है । अथवा स्वयंही पिहित करने पर विचक्षण पुरुष को अपने कुल का नाश समझ लेना चाहिए ।१५। यदि द्वार जो भी उसका मान स्वीकृत किया गयाहै उससे अधिक होतो राजसे होने वाला भय होता है और यदि अभीप्सित मानसे न्यून होतो तस्करों से भय रहा करता है । द्वार के ऊपर जो द्वार होता है उसको अन्तक मुख नाम वाला कहा गया है ।१६। मध्य देशमें जिसका अधिक विस्तार हो वह अध्वन कहलाता है । मध्य में संकट वज्र होता है और वह तुरन्त ही स्वामीका विनाश करने वाला हुआ करताहै । तथा अन्य से पीड़ित द्वार बहुत-से दोषों के करने वाला होता है । जो मूल द्वार होता है उससे अन्य द्वार अधिक शोभन नहीं हुआ करता ।१७-१८। कुम्भा श्रीपर्णि और वल्लियों के द्वार मूल-द्वार को शोभित करना चाहिए । उस द्वार की नित्यही पूजा करे तथा अक्षतोदक से अर्चन एवं बलिदान करना चाहिए । भवन के पूर्व दिशा के भाव में सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले वट वृक्ष का समारोपण करना चाहिए—दक्षिण दिशा

के भाग में उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष और वारुणी दिशा में परम शुभ पीपल का वृक्ष समारोपित करना चाहिए ।१९-२०।

प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये ।
कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसन: सफलो द्रुम: ।२१
भार्य्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा ।
न छिन्द्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ।२२
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाड़िमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान् ।२३
जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभि:।
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभिर्युक्तंतदत्रभवनंश्रियमाप्नोति।२४

भवन के उत्तर दिग्भाग में प्लक्ष (पाखर) के वृक्ष का समारोपण करे । इस तरह से गृह की इन चारों दिशाओं में उपर्युक्त चार प्रकार के वृक्षों का समारोपण सिद्धि दायक हुआ करता है । इनके विपरीत आरोपण से असिद्धि होतीहै । काँटेदार क्षीर देने वाला वृक्ष और आसन सफल द्रुम होता है । उस समय में क्रम से भार्या की हानि और प्रजा की हानि हुआ करती है । यदि उनको दूसरों के अन्तर में शुभ वृक्षोंको स्थापित करे तो फिर इनका छेदन कभी भी नहीं करना चाहिए ।२१-२२। पुन्नाग, अशोक, बकुल, शमी, तिलक, चम्पक, दाड़िम, पिप्पली, द्राक्षा, कुसुम मण्डप, जम्बीर, पूग, पनसद्रुम, केतकी, जाती, सरोज, शत पत्रक—मल्लिका, नालिकेर, कदली दल, पाटल इन समस्त वृक्षों के समारोहण से समन्वित होता है वह श्री का विस्तार किया करता है ।२३-२४।

———

११६—भवन निर्माण वर्णन

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरे तथा ।
परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्य्यात्स्तम्भोच्छ्रायविचक्षणः ।१
न देवधूर्तसचिवचत्वराणां समन्ततः ।
कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः ।२
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः ।
पृष्ठः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्तः प्रशस्यते ।३
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा ।
सर्वकामफलो नृणां सम्पूर्णो नाम वामतः ।४
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् ।
अथ सांवत्सरे प्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ।५
रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम् ।६
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगैः ।
स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ।७
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम् ।
ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।८

महर्षिवर श्री सूत जी ने कहा—विचक्षण पुरुष को चाहिए कि उदगादि प्लव तथा समान शिखर वाले वास्तुकी परीक्षा करके पूर्व की भाँति स्तम्भों की ऊँचाई करनी चाहिए ।१। प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपने भवन के चारों ओर देव, धूर्त्त, सचिव और चत्वरों का भवन नहीं बनवाना चाहिए क्योंकि इससे फिर दुःख और शोक तथा भय होता है ।२। उसके चार प्रदेश होता है तथा आगे की ओर उत्सर्ग परम शुभ हुआ करता है । पीछे की ओर उसका पृष्ठ भाग सव्यावर्त्त प्रसस्त होता है ।३। जो अपसव्य होता है वह विनाश के लिए ही हुआ

करता है। दक्षिण में शीर्षक मनुष्यों के सब कामनाओं के फल वाला हुआ करता है और वाम भागमें सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रदेशका समावलोकन करके ही यत्नपूर्वक गृह निर्माणका आरम्भ करना चाहिए और वह भी साम्वत्सर प्रोक्त किसी शुभ लक्षणों वाले मुहूर्त्त में करे। ।४-५। समस्त बीजो मे संयुत शिला को रत्नों के ऊपर करके चार ब्राह्मणों के द्वारा भलीभाँति अर्चित स्तम्भ का निर्माण करावे ।६। वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा शिल्पियों के सहित शुल्क अम्बरों के धारी को स्थापित करके विन्यस्त करना चाहिए। उसी के समान सर्वौषधियों से समन्वित नाना अक्षतों मे समुपेत---वस्त्र एवं आभूषणों से युक्त करके ही विन्यास करना चाहिए। ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) वाद्य और गीत एवं माङ्गलिक ध्वनियों के द्वारा विन्यस्त करे ।७-८।

पायसं भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसर्पिषा ।
वास्तोष्पतेप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ।९
सूत्रपाते तथा कार्य्यमेवं स्तम्भोदये पुनः ।
द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ।१०
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा ।
ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ।११
प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम् ।
तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ।१२
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम् ।
सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेखने ।१३
न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः ।
न श्रृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ।१४

फिर विप्रों को पायस का भोजन करावे और मधु और घृत के द्वारा होम करे। सर्वदा वास्तोष्पति से इस मन्त्रके द्वारा प्रतिज्ञा करे।

उस प्रकार से सूत्रपातमें करे और पुन: स्तम्भोदय के समयमें भी करना चाहिए। द्वार वंश के उच्छ्रय में तथा उसी भाँति से प्रवेश के समय में करना चाहिए। उसी तरह से वास्तु के उपशामन के अवसर पर उसी तरह से वास्तु यज्ञ पाँच प्रकार का होता है। ईशान में सूत्रपात होता है—आग्नेय में स्तम्भ का रोपण होता है और वास्तुके हृदविलेखन का प्रदक्षिण करना चाहिए। तर्जनी, मध्यमा तथा दक्षिणमें अंगुष्ठ रक्खे। प्रवाल, रत्न, करक फल (धतूरे का फल) को जल के साथ पीसकर सम्पूर्ण वास्तु के विभागों में पदविलेखन करे। पद विलेखन करने में यह परम प्रशस्त कहा गया है। वास्तु का विलेखन कहीं पर भी भस्म अङ्गार और काष्ठ से भी नहीं करे तथा सींग, अस्थि और कपालों के द्वारा भी पद विलेखन नहीं करे।९-१४।

एभिर्विलिखितं कुर्य्याद्दु:खशोकभयादिकम्।
यदा गृहप्रवेश: स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत्।१५

स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम्।
आदित्याभिमुखं रौति शकुनि: पुरुषं यदि।१६

तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मन:।
वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नशल्यं भयप्रदम्।१७
अङ्गनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत्।
तदङ्गसम्भवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षण:।१८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुविलङ्घिते।
तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देति भैरवे।१९

यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायस:।
धनं तत्र विजनीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते।२०
सूत्रच्छेभवेन्मृत्युर्व्याधि: कीलेत्यधोमुखे।
अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम्।२१

यदि उपर्युक्त साधनों में से किसी भी एक के द्वारा पदविलेखन किया जाता है तो इसका परिणाम बुरा हुआ करता है। और दुःख-शोक और भय आदि हुआ करते हैं। जिस समयमें गृह प्रवेश होवे वहाँ पर भी शिल्पी को लक्षित करना चाहिए।१५। स्तम्भ सूत्रादिक भी उसी भाँति शुभ और अशुभ फल के प्रदान करने वाले होवे हैं। यदि शकुनि सूर्य के सम्मुख पुरुष के प्रति ध्वनि करता है और तुल्यकाल ही में गृह के स्वामी के अङ्ग का स्पर्श करता है और अपने अङ्ग को छूता है तो उसको भय प्रदान करने वाला नरशल्य जान लेना चाहिए।१६-१७। अङ्कन के अनन्तर जिसमें हस्ती-अश्व और श्वापद होवे तो उसको वहाँ पर विचक्षण पुरुष अङ्ग में होने वाला शल्य समझ लेवे।१८। सूत्र के फैलाये जाने पर वह श्वान और गोमायु के द्वारा विलंघित हो जावे तो उसको भी शल्य ही जान लेना चाहिए तथा भैरव में खर शब्द हो उसको भी शल्य समझ लेवे।१९। जो ईशान कोण के दिग्भाग में वायस (कौआ) मधुर ध्वनि करता हो तो वहाँ पर उस भाग में धन का होना समझ लेना चाहिए अथवा स्वामी के द्वारा अधिष्ठित भाग धन जानलो।२०। सूत्र का जो कि प्रसादित किया गया है किसी भी तरह से छेदन हो जावे तो मृत्यु जान लेवे तथा कील के नीचे की ओर मुख वाली हो जाने पर व्याधि होने का ज्ञान कर लेवे। अङ्गारों के होने पर उन्माद और कपालोंके हो जाने पर सम्भ्रम होना समझ लेना चाहिए।२१।

कम्बुशल्येषु जानीयात् पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित् ।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे ।२२
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत् ।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ।२३
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः ।
करसङ्ख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः ।२४

बीजौषधिविहोनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत् ।
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यसेत्स्तम्भान्विचक्षणः ।२५
यस्माद्भयंकरं नृणां योजिताह्यप्रदक्षिणम् ।
रक्षांकुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ।२६
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् ।
प्रागुदक्प्रवणं कुर्य्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत् ।२७
स्तम्भं वा भवनंवापिद्वारं वासगृहं तथा ।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यान्नच स वर्द्धयेद् गृहम् ।२८

कम्बुशल्यों में वास्तु के वेत्ता को स्त्रियों के विषय में गोश्चल्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । शिल्पी के सम्भ्रम हो जाने पर गृह के स्वामी का और गृह का भी विनाश हो जाता है । स्तम्भ में कुम्भ के स्कन्ध से च्युत हो जाने पर शिरोरोग का होना जान लेवे । कुम्भ का यदि अपहरण ही हो जावे तो समक्ष लेना चाहिए कि सम्पूर्णही कुलका क्षय हो जावेगा ।२२-२३। कुम्भ के निर्दिष्ट स्थान से च्युत हो जाने पर मृत्यु की सूचना होती है—ऐसा जान लेवे । यदि कुम्भका भंग हो जावे तो बुध लोग उसको बन्धक का सूचक बतालाया करते हैं । करों की सख्या के विनाश हो जाने पर गृहप का नाश कहा करते हैं । बीजों और औषधियों के विहीन होने पर भूतों से भय प्राप्त होने की सूचना हुआ करती है । इसीलिए विचक्षण पुरुष का कर्त्तव्य है कि उससे प्रदक्षिण में अन्य स्तम्भों का न्यास करे । जिससे मनुष्यों को भय करने वाला कुछ हो उसे अप्रदक्षिण में योजित करे स्तम्भों को होने वाले जो उपद्रव होवें उनके विनाश करने वाली की प्रबल प्रयत्नों के साथ रक्षा करनी चाहिए ।२४-२६। उसी प्रकार से फलों से युक्त एक शाखा को स्तम्भ के ऊपर निवेशित कर देना चाहिए । उसे पूर्व और उत्तर की ओर मुख वाली ही विनिवेशित करनी चाहिए तथा दिक् संमूढ़ उसे नहीं कराना चाहिए ।२७। स्तम्भ हो या भवन हो तथा द्वार हो

अथवा निवास करने का गृह हो इसमें दिङ् मूढ़ता कभी भूलकर भी नहीं करे क्योंकि दिङ्मूढ़ होने पर कुल का नाश ही हो जाया करता है और गृह को फिर वह कभी भी संबर्द्धित नहीं किया करता है ।२८।

यदि संवर्द्धयेद्गेहं सर्वदिक्षु विवर्द्धयेत् ।
पूर्वेण वर्द्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ।२६
दक्षिणे वर्द्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः ।
पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारकम् ।३०
वर्द्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम् ।
आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत् ।३१
वर्द्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत् ।
वर्द्धापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ।३२
ईशान्यां अन्नहानिः स्यात् वास्तौ संवर्द्धिते सदा ।
ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहंभवेत् ।३३
महानसन्तथाग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम् ।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थापयेद्बुधः ।३४
बधस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च ।
धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो बहिः ।
एवं वास्तु विशेषः स्यात् गृहभर्तुः शुभावहः ।३५

यह गृह को संवर्द्धित करे तो सभी दिशाओं में उसे विवर्द्धित करना चाहिए । पूर्व दिशामें यदि वास्तु वर्द्धित होवे तो सर्वदा बैरोंको किया करता है ।२६। दक्षिण दिशा में वास्तु का वर्द्धन होवे तो वह निस्सन्देह मृत्यु के ही लिए हुआ करता है । पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर वास्तु विवर्द्धित होवे तो वह अर्थ के क्षय करने वाला होता है । सौम्य दिशामें वर्द्धित वास्तु बहुत अधिक सन्तापका कारक हुआ करता है । जहाँ पर आग्नेय कोण में इसकी वृद्धि होती हो तो वह अग्नि से

होने वाले भय को प्रदान करने वाला हुआ करता है। राक्षस कोण में वर्द्धित वास्तु शिशुओं के क्षय का करने वाला हुआ करता है। वायव्य कोण की दिशा में तन्तुको बद्ध करके भी वातजन्य व्याधि के प्रकोपको करने वाला हुआ करता है ईशान दिशा में अन्न की हानि सदा होती है जब कि उस ओर वास्तु संवर्द्धित होता है। ईशान में देवता का आभार तथा शान्ति गृह होना चाहिए।३०-३३। आग्नेय कोण में जल के रहने का स्थान और बुध पुरुष को नैऋत्य कोण में गृह के सभी उपस्कर स्थापित करने चाहिए अर्थात् भण्डार गृह बनाना चाहिए। बाहिरी भाग में वध का स्थान बनाना चाहिए तथा स्नान मण्डप भी बाहिर ही बनाना चाहिए। वायव्य कोणमें धन-धान्य का स्थान बनावे और इससे आगे बाहिर कर्मशाला का निर्माण कराना उचित है। इस प्रकार से विशेष रूप वाला वास्तु गृह के स्वामी के लिए परम शुभ के प्रदान करने वाला हुआ करता है।३४-३५।

१२०—दार्वाहरण वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम्।
धनिष्ठापञ्चके मुक्त्वा विष्ट्यादिकमतः परम्।१
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वनं बुधः।
प्रथमं बलिपूजाञ्च कुर्य्याद्वृक्षस्य सर्वदा।२
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते।
अन्यथा न शुभं विन्द्यात् याम्योपरि निपातनम्।३
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत्।
कृताधिवासं विहंगैरनिलानलपीडितम्।४

गजावरुग्णञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम् ।
अर्द्ध शुष्कं तथा दारुभग्नशुष्कं तथैव च ।५
चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजन्तथा ।
श्मशानकूपनिलयं तड़ागादिसमुद्भवम् ।६
वर्जयेत्सर्वथादारुयदीच्छेद्विपुलांश्रियम् ।
तथा कण्टकिनोवृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान् ।७
श्लेष्मातकानाम्रतरून् वर्जयेद् गृहकर्मणि ।
आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ।८
चन्दनं पनसन्धन्यं सुरदारुहरिद्रवः ।
द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वाभवनं शुभम् ।९

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम दार्वाहरण के विषय में कहता हूँ । धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों को छोड़कर और इसके आगे विष्ट्यादि (भद्रा) को त्याग करके बुध पुरुषको सांम्वत्सर से इष्ट दिन में वन में गमन करना चाहिए । सर्वदा प्रथम वृक्ष को बलि पूजा करनी चाहिए ।१-२। पूर्वोत्तर दिशा में पतित गृह का दारु (काष्ठ) प्रशस्त होता है । अन्यथा याम्य दिशा में ऊपर नियातन शुभ का लाभ नहीं किया करता है । क्षीर वृक्षसे समुत्पन्न होने वाला काष्ठ कभी भी गृह में बिनिवेशित न करावे । पक्षियों के द्वारा अधिवास किया हुआ-अनिल और अनल से पीड़ित—गज से अवरुग्ण-विद्युत के निर्घात से पीड़ित—अर्द्ध शुष्क—दारु के भग्न होने से शुष्क—चैत्य और देवालय में समुत्पन्न—नदियों के सङ्गम में उपजने वाला—श्मशान और कूपके निलय वाला-तड़ाग आदि में समुद्भूत होने वाला ऐसे काष्ठको सर्वथा वर्जित करदेना चाहिए । यदि विपुल श्री के प्राप्त करनेकी इच्छा हृदय में होवे । काँटे वाले वृक्षों को-नीप, निम्ब, विभीतको को, श्लेष्मातकों ओ, आम्र तरुओं को गृह के निर्माण के क्रम में वर्जित करना चाहिए । आसन-अशोक-मधुक और सर्जशाल ये सब शुभावह होते हैं । चन्दन-

पनस परम धन्य हैं। सुरदारु और हरिद्रव इन दोनों में से एक के द्वारा अथवा तीनों के द्वारा शुभ भवन का निर्माण करना चाहिए।३-९।

बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्।
एकैव शिशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा।१०
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः।
स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः।११
एते नान्य समायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।
तरुच्छेदे महापीतेगोधा विन्द्याद्विचक्षणः।१२
माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरठं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत्।१३
कपिले मूषकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत्।
एवं विधं सगर्भन्तु वर्जयेद्वास्तु कर्मणि।१४

क्योंकि बहुतों के द्वारा जो कराया जाता है वह अनेक भयों के प्रदान करने वाला होता है। एकही शिशपा का वृक्ष परम धन्य होताहै और श्रीपर्णी तथा तिन्दुगी भी उसी प्रकार से परम धन्य है।१०। ये अन्य से समायुक्त न होकर किसी भी समय में शुभ कारक होते हैं। उसी तरह से स्यन्दन,पनस, सरल, अर्जुन और पद्मक भी है। ये अन्य से समायुक्त न होते हुए वास्तु कार्य के फल के प्रदान करने वाले हैं। विचक्षण पुरुष महापीत तरु के छेदन होने पर गोधा की प्राप्ति करे। मंजिष्ठा के वर्ण में भेक होवे तथा नील में सर्पादि का विनिर्देश करना चाहिए। अरुण वर्ण में सरठको जानना चाहिए। मुक्ता की आभावाले में शुक का समादेश करे।११-१३। कपिल वर्ण में मूषकों को जानना चाहिए। खड्ग की आभा वाले में जल समादेश करे। इस प्रकार के सगर्भ को वास्तु कर्म्म में वर्जित कर देना चाहिए।१४।

पूर्वच्छिन्नस्तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः ।
व्यासेन गुणिते दैर्घ्यं अष्टाभिर्वैहृते तथा ।१५
तच्छेषमायतं विद्यादष्टभेदं वदामि वः ।
ध्वजो धूमश्च सिंहश्च वृषभः खर एव च ।१६
हस्तीध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषाभवन्त्यमी ।
ध्वजः सर्वमुखोधन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः ।१७
उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः ।१८
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः ।
पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तोविकोणस्थाश्चवर्जयेत् ।१९
तमेवाष्टगुणं कृत्वा करराशि विचक्षणः ।
सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः ।२०

शुभ निमित्त शकुनों के द्वारा पूर्वाच्छिन्न को ग्रहण करना चाहिए। व्यास के द्वारा गुणिम होने पर आठों से वैहृत होने पर दीर्घता होती है। उससे जो शेष है—वह आयत जानना चाहिए। मैं आपको आठ भेद बतलाता हूँ--ध्वज, धूम, सिंह, वृषभ, खर, हस्ती और ध्वांक्ष ये पूर्वाद्या कर शेष होते हैं। ध्वज सर्वमुख धन्य होता है और विशेष रूप से प्रत्यग् द्वार होता है।१५-१७। उत्तर की ओर मुख वाला सिंह होता है और पूर्व की ओर मुख से युक्त वृषभ होता है। दक्षिण दिशा के अभिमुख होने वाला हस्तीहै तथा इसी प्रकार से यह सात प्रकार वाला उदाहृत किया गया है।१८। एक के द्वारा ध्वज कहा गया है—तीन के द्वारा सिंह कीर्त्तित किया गया है—पाँचों से वृषभ उक्त हुआ है। जो त्रिकोण में स्थित होते हैं वे सब वर्जित माने गएहैं अतः उनको निषिद्ध मानना चाहिए। विचक्षण पुरुष को चाहिए उसी कर राशिको अठगुना करके अर्थात् आठ से गुणा करके सत्ताईस से भाग समाहृत करे और उसी ऋक्ष (नक्षत्र) को जान लेना चाहिए।१९-२०।

अष्टभिर्भाजिते ऋक्षे यः शेषः सव्ययो मतः ।
व्यायधिकं न कुर्वीत यतो दोषकरम्भवेत् ।
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ।२१
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं,
दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्योः,
मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु ।२२
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्-
प्रासादवास्तुशमने च विधिर्यं उक्तः ।
सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः,
शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सधूपम् ।२३

आठ से भाजित करने पर जो जो नक्षत्र शेष होता है वह समय माना गया है । व्यय से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दोषकर होता है । भगवान् श्री हरि ने यही कहा है कि आयाधिक में शान्ति होती है ।२१। इस अनन्तर द्विज श्रेष्ठों को आगे करके दधि, अक्षत, आम्रदल, पुष्प, फल इससे उपशोभित पूर्ण कुम्भ को करके द्विज गणों के लिए गृह में प्रवेश करना चाहिए । फिर गृह्य में वर्णित होम का विधि के साथ बलि कर्म करना चाहिए । यही प्रासाद के वास्तु का शयन करने में विधान बतलाया गया । इसके उपरान्त भक्ष्य भोज्यों के द्वारा श्रेष्ठ द्विज गणों को संतृप्त करना चाहिए और स्वयं शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाला धूप के दान के सहित अपने भवन में प्रवेश करे ।२२-२३।

१२१—प्रतिमा निर्माण वर्णन

क्रियायोगः कथं सिद्ध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगंसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ।१
क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यत् लोकेषु विद्यते ।२
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवानार्चानुकीर्तनम् ।
देवयज्ञोत्सवञ्चापि बन्धनाद्ये न मुच्यते ।३
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते ।
शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तगदाधरं ।४
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम् ।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ।५
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् ।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ।६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत ।
खड्गोगदाशरः पद्मं दिव्यं दक्षिणतो हरेः ।७

ऋषि वृन्द ने कहा—गृहस्थ आदि में क्रिया का योग किस प्रकार से सर्वदा सिद्ध होता है यह कृपया बतलाइए क्योंकि सहस्रों ज्ञान योग से कर्मयोग विशिष्ट हुआ करता है ।१। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा मैं अब उस क्रिया योग को बतलाता हूँ जिसमें देवगण के अर्चना का अनुकीर्त्तन किया जाताहै क्योंकि उससे अन्य लोकोंमें भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला कोईभी नहीं होता है।२। सुरगणों की प्रतिष्ठायें देवताओं के अभ्यर्चन का अनुकीर्त्तन और देवयज्ञों का उत्सव भी होता है । जो ऐसा नहीं करते हैं वे बन्धन से मुक्त नहीं होते हैं । भगवान् विष्णु के विषय में मैं वर्णन करता हूँ जैसा कि उनका रूप प्रशस्त कहा जाया करता है । शंख-चक्र और गदाके धारण करने वाला-परम प्रशांत

हाथ में पद्म तथा गदाको धारण किए हुए-उनका शिर छत्र के आकार से संयुत है—कम्बु के समान ग्रीवा वाला—शुभ नेत्रों से युक्त—तुङ्ग (ऊँची) नासिका से सम्पन्न—शुक्ति के तुल्य कानों वाला—परम प्रशान्त ऊरुयुग और भुजाओं के क्रमसे समन्वित-कहीं पर आठ भुजाओं से युक्त और दूसरा चार भुजाओंसे युक्त एवं दो भुजाओंमें भी सम्पन्न उनका स्वरूप होता है। भवनों में पुरोहित के द्वारा ऐसा ही उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित उनका स्वरूप करना चाहिए। अष्ट भुजाधारी इस देव को यथास्थान समझ लेना चाहिए। खड्ग, गदा, शर, दिव्य, पद्म —ये सब आयुध भगवान् विष्णु के दक्षिण भाग में होने चाहिए।३-७।

धनुश्च खेटकञ्चैव शङ्खचक्रं च वामतः ।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः ।८
दक्षिणेन गदापद्मं वासुदेवस्य कारयेत् ।
वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ।९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते ।
यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ।१०
अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः ।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तं निवेशयेत् ।११
वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना ।
गरुत्मानग्रतोवापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ।१२
श्रीश्चपुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते ।
तोरणञ्चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ।१३
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् ।
पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ।१४

धनुष खेटक-शंख-चक्र ये चार आयुध उनके वाम भाग में रहने चाहिए। यह आठ भुजाओं के आयुओं के धारण करने का क्रम होता

है। चतुर्भुज भगवान् विष्णु के आयुधों को धारण करने के क्रम एवं संस्थिति का वर्णन किया जाता है ! भगवान् वासुदेव के दक्षिण भागसे गदा और पद्म इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। वामभाग में जो मूर्तिके प्राप्त करने की इच्छा रखता है उस भक्त को चाहिए कि वाम भागमें शंख और चक्र इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कृष्णावतार में गदा बाँये हाथ में ही प्रशस्त मानी गयी है। अपनी इच्छा के अनुसार ही ऊपर से शंख तथा चक्र इन दो आयुधोंकी कल्पना करनी चाहिए। उनके नीचे की ओर पाद के मध्य भाग में पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए और दक्षिण भाग में उसी प्रकार से प्रणति करते हुए गरुड़ का निवेश करना चाहिए।८-११। भगवान् के वाम भाग में पद्म हाथों में धारण करने वाली तथा परम शुभ मुख वाली लक्ष्मी देवी विराजमान होनी चाहिए। विभूति की इच्छा रखने पुरुष को चाहिए कि भगवान् के आगे गरुड़ की भी संस्थापन करनी चाहिए। दोनों पार्श्व भागों में पद्मोंसे संयुत श्री और वृष्टि इन दोनों की संस्थापना करे। विद्याधर से संयुत ऊपर के भाग में तोरण बनावे।१२-१३। देवों की दुन्दुभि नाम वाले वाद्य से युक्त गन्धर्वों के जोड़े से समन्वित—पत्रवल्ली समोपेत—सिंह और व्याघ्र से युक्त भगवान् की स्थापना वहाँ पर करनी चाहिए।१४।

तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः।
एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेनास्य पीठिकाः।१५
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः।१६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजःस्फुटम्।
त्रसरेणुः स विज्ञेयो बालाग्रन्तै रथाष्टभिः।१७
तदष्टकेन लिक्षा तु यूकालिक्षाष्टकैर्मता।
यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदंगुलम्।१८

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम् ।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वात्रियवकल्पना ।१९
सौवर्णीराजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा ।
शैली दारुमयी चापि लोहसंघमयी तथा ।२०
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा ।
शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते ।२१

कल्पलता से संयुक्त तथा देवगणो के द्वारा स्तुति किये जाने वाले भगवान विष्णु को स्थापित करे । इन विष्णु की तीन भाग से वहाँपर पीठिका होना चाहिए।१५। वह पीठिका जो है उसके समीप में नवताल प्रमाण वाले देव गन्धर्व और किन्नर स्थापित करे । अब इसके आगे विशेष रूप से मानोन्मान के विषय में वर्णन करता हूँ ।१६। जाल के अन्तर में प्रविष्ट भानु की किरणों के द्वारा जो स्फुट रूपसे रज के कण दिखलाई दिया करतेहैं उनको त्रसरेणु जानना चाहिए । वे बालके अग्र भाग के समान होते हैं । उन आठों की एक शिक्षा होती है । आठ शिक्षाओं की एक यूका मानी गयीहै । आठ यूकाओं का एक यव होता है और आठ यवोंका एक अंगुल हुआ करता है।१७-१८। अपने अंगुल के मान से द्वादश अंगुलों का मुख होता है । इस मुख के मान के द्वारा ही समस्त अवयों की कल्पना करनी चाहिए ।१९। भगवान् की प्रतिमायें सुवर्ण से—रजत (चाँदी)से निर्मित होती हैं तथा ताम्र और रत्नों के द्वारा निर्मित की हुई हुआ करती है । शैली अर्थात पाषाण से-दारुमयी अर्थात् विशुद्ध काष्ठसे भी निर्माण की हुई प्रतिमायें होती हैं और लोहे के संघ से पूर्ण होती हैं । रीति का अथवा धातुसे युक्त–ताम्र और कांस्य के मिश्रण से निर्मित या शुभ काष्ठ के निग्रह वाले देवता की प्रतिमा की अर्चा प्रशस्त होती है ।२०-२१।

अंगुष्ठपर्वादारभ्य: वितस्तिर्यावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ।२२

आपोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः ।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ।२३
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टन्तु यद्भवेत् ।२४
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः ।
पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता ।२५
प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत् ।
चतुरगुला भवेद्ग्रीवाभागेन हृदयंपुनः ।२६
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना ।
निम्नत्वेविस्तरत्वे च अंगुलंपरिकीर्तितम् ।२७
नाभेरधस्तथामेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत् ।
द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरंगुले ।२८

अपने अंगूठे के पर्व से आरम्भ करके एक वितस्ति (बिलाँद या बलिश्त) पर्यन्त लम्बी और बड़ी देव प्रतिमा निर्मित करानी चाहिए। बुध पुरुष के द्वारा इस प्रमाणों से अधिक बड़ी प्रतिमा को प्रशस्त नहीं बतलाया गया है ।२२। जो प्रासाद हों इसमें षोडश से अधिक बड़ी प्रतिमा कभी नहीं करानी चाहिए। अपने वित्तके अनुसार उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ प्रतिमा का निर्माण कराना आवश्यक है ।२३। द्वार के उच्छ्राय का जो मान है उसका आठ भाग करे। उनमेंसे एक भाग का त्याग करके जो परिशिष्ट होवे ।२४। उनमें से दो भागों के प्रमाण से प्रतिमा की रचना करानी चाहिए। फिर उसके तीन भाग करके भाग से पीठिका की रचना करे। पीठिका न तो अत्यन्त नीची होनी चाहिए और न अधिक उच्छ्रित ही होनी चाहिए ।२५। प्रतिमा के मुख मान से नौ भागों की प्रकल्पना करनी चाहिए। चार अंगुल वाली ग्रीवा होवे और फिर भाग के द्वारा हृदय की रचना होनी चाहिए ।२६। उसके अर्थात् उरःस्थल के नीचे एक भाग से परम शोभन नाभि का निर्माण

करावे। उस नाभि की भिन्नता और विस्तार में अंगुल ही कीर्त्तित किया गया है। नाभि के नीचे एक भाग से मेढ़ की रचना की कल्पना करे और दो भागों के द्वारा आयत ऊरुओं एव चार अंगुल के प्रमाण वाले जानुओं की रचना करानी चाहिए।२७-२८।

जङ्घे द्विभागेविख्यातेपादौ च चतरंगुलौ।
चतुर्दशांगुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः।२९
ऊर्द्ध्वंमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वञ्चनिबोधत।
सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः।३०
चतुरंगुलं याटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च।
द्वयंगुलन्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठः स्वांगुलसम्मितः।३१
अष्टांगुले ललाटे च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता।३२
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते।
अक्षिणी द्वयंगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे।३३
उन्नतोदरमध्ये तु रक्ता ते शुभलक्षणे।
तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्जचभागिका।३४
द्वयंगुलन्तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथांगुलम्।
नासाग्रबिस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम्।३५

दो भागों वाले जघन विख्यात हैं और दोनों पाद चार अंगुल के मान वाले होने चाहिए। उसी भाँति चौदह अंगुल का उस प्रतिमा का मौलि कीर्त्तित किया है। यह इसका ऊर्ध्व मान बताया गया है अब उसके पृथुत्व को भी समझ लेना चाहिए। हे द्विजगणो! समस्त अवयवों के मानों में जो भी विस्तार होता है उसका भी श्रवण करलो।।२९-३०। चार अँगुल का ललाट होता है उसी भाँति से ऊर्ध्व भागमें नासिका हुआ करती है। दो अँगुल का हनु (ठोडी) जाननी चाहिए और ओष्ठ अपने अंगुल के सम्मित होते हैं? आठ अंगुल के ललाट में

उतनी मात्रा वाली भौंहें मानी गयी हैं। भ्रूओं की लेखा आधे अंगुल की होती हैं जो भ्रूओं मध्य में धनुष की भाँति आनत हुआ करती है। पार्श्व भाग में वह उन्नत अग्र भाग वाली होती है तथा श्लक्ष्ण और तीक्ष्ण प्रशस्त कही जाया करती है। दो अंगुल की याम वाली दो अक्षियां होनी चाहिए और विस्तार में इससे आधी होवें।३१-३३। उन्नत उदर के मध्य भाग वाली और अन्त में रक्त वर्ण से युक्त आँखें शुभ लक्षण से सम्पन्न हुआ करती है। तारक के धर्म विभाग से दृष्टि पाँच भाग वाली होती है।२४। भौंहों के मध्य में दो अंगुल के प्रमाण वाला नासिका का मूल होता है और एक अंगुल नासिका के अग्रभाग का विस्तार हुआ करता है। इसी भाँति म आनन नासिका के दो पुट हुआ करते हैं।३५।

नासापुटविलंतद्वदर्धांगुलमुदाहृतम्।
कपोले द्वयंगुले तद्वत् कर्णमूलाद्विनिर्गते।३६
हन्वमंगुलं तद्वद्वितारो द्वयंगुलो भवेत्।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोराजी प्रणालसदृशी समा।३७
अर्द्धांगुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे।
निष्पावसदृशन्तद्वन्नासापुटदलं भवेत्।३८
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडंगुले।
कर्णौ तु भ्रू समौ ज्ञेयौ ऊर्द्ध्वन्तु चतुरंगुलौ।३९
द्वयंगुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकान्तु विस्तृतौ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशांगुलम्।४०
ललाटात्पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशांगुलम्।
षट्त्रिंशाङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः।४१
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः।
केशान्ताद्दनुका तद्वदंगुलानि तं षोडश।४२

नासिका के पुट का बिल उसी भाँति से आधे अंगुल का कहा गया है। दो अंगुल के प्रमाण से युक्त दोनों कपोल होने चाहिए जो कर्णमूल से विनिर्गत हुआ करते हैं।३६। हनु के अग्रभाग का विस्तार दो अंगुल और वह एक अंगुल होताहै। भ्रूओकी राजी आधी अंगुल वाली होती है जो प्रणाल के सदृश एवं सम हुआ करती है।३७। विस्तारमें उसीकी भाँति उत्तरोष्ठ अर्द्ध अंगुलके समान होना चाहिए। उसी तरह से निष्पाव के समान नासापुटों का दल होता है।३८। कर्णों के मूल से छै अंगुल परिमाण वाली ज्योति के तुल्य सृक्किणीं होनी चाहिए। और दोनों कान भ्रूहोंके समान जानने चाहिए जो ऊर्ध्वभाग में चार अंगुल प्रमाण वाले हों।३९। कणो के पार्श्व भाग दोनों दो अंगुल के होने चाहिए और एक मात्र विस्तृत होवें। दोनों कानों के ऊपर मस्तक बारह अंगुल का होना चाहिए। ललाट से पृष्ठ भाग में इसके आधे भागसे युक्त कहा गयाहै जो अटारह अंगुल होना चाहिए। इसके शिर में होने वाला परिणाह छत्तीस अंगुल का होता है। जिसके केशोंके निश्चयके साथ परिमाण बयालीस अंगुलका होता है। केशान्त उसी भाँति हनु का सोलह अंगुल की होती है।४०-४२।

ग्रीवा मध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकांगुलः।
अष्टांगुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते।४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा।
स्तनयोरन्तर तद्वद् द्वादशांगुलमिष्यते।४४
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद्द्वयङ्गुलं परिकीर्तितम्।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ।४५
द्वितालञ्चापि विस्तराद्वक्षःस्थलमुदाहृतम्।
कक्षे षडंगुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तरान्तरे।४६
चतुर्दशांगुलौ पादावङ्गुष्ठौ तु त्र्यंगुलौ।
पञ्चांगुलपरीणहमङ्गुष्ठाय तथोन्नतम्।४७

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी।
तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमांगुली ।४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते।
पर्वत्रयेणचांगुल्या गुल्फौ द्व्यंगुलकौ मतौ ।४९

ग्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अंगुल का होना चाहिए। आठ अंगुल की ग्रावा जो होती है पृथुत्व से प्रशस्त मानी गयी हैं।४३ स्वयम्भू ने स्तनो और ग्रीवाका अन्तर एक ताल कहा है। दोनों स्तनों का अन्तर उसी भाँति से बारह अंगुलका होना चाहिए जो कि अभीष्ट है।४४। स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अंगुल का परिकीत्तित किया गया है। स्तनोंके चूचुक (घुण्ड) उस मण्डल के अन्दर दोनों यव मात्र होनी चाहिये----ऐसा कहा गया है।४५। विस्तार से वक्षःस्थल भी द्वितल बताया गया है। बाहुओं के मूल में स्तनों के बीच में दोनों कक्षों का परिमाण छै अंगुल का कहा गया है।४६। चौदह अंगुल के दोनों पैर और तीन अंगुल के परिमाण से युक्त दोनों अंगुष्ठ होते हैं। पाँच अंगुल के परिणाह से युक्त एवं उन्नत अंगुष्ठ का अग्रभाग होता है। अंगुष्ठ के ही समान उसी के समान आयाम वाली प्रदेशिनी होती है। उसके सोलहवें भाग से मध्यांगुलि हीन होती है।४७-४८। अनामिका आठ भाग से और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है। तीन पर्व से अंगुलियाँ और दोनों गुल्फ दो अंगुल के माने गये हैं।४९।

पार्ष्णिर्द्व्यंगुलमात्रस्तु कलयोच्चः प्रकीर्तितः।
द्विपर्वांगुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यंगुलः।५०
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यंगुलः समुदाहृतः।
कन्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः।५१
अंगुलैनोच्छ्रयः कार्यो ह्यंगुष्ठस्य विशेषतः।
तदर्धेन तु शेषाणामंगुलीनान्तथोच्छ्रयः।५२
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अंगुलानि चतुर्दश।

जङ्घामध्ये परोणाहस्तथैवाष्टादशांगुलः ।५३
जानुमध्यै परीणाह एकविंशतिरंगुलः ।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुलः प्रोक्तो मण्डलन्तु त्रिरंगुलम् ।५४
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकांगुलः ।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरंगलौ ।५५
द्वयंगुलश्च तथामेढ्रं परीणाहः षड्गुलम् ।
मणिबन्धादधो विद्यात् केशरेखास्तथैव च ।५६

पार्ष्णि दो अंगुल परिमाण वाला कला मे उच्च कीर्त्तित किया गया है । अंगुष्ठ दो पर्वो वाला कहा गया है और परीणाह भी दो अंगुल वाला होता है । प्रदेशिका का परीणाह तीन अंगुल वाला कहा गया है । हे द्विजगण ! कन्यसा आठ भाग से क्रम से हीन होती है एक अंगुल का उच्छ्रय अंगुष्ठका विशेष रूपसे करना चाहिए । उसके आधे भाग से शेष अंगुलियों का उसी भाँति उच्छ्रय होना चाहिए ।५०-५२। जंघाओं के अग्रभाग में चौदह अंगुलों का परीणाह होता है । जाँघो के मध्य में परीणाह उसी भाँति अठारह अंगुल का होता है।५३। जानुओं के मध्य में जो परीणाह है इक्कीस अंगुल के परिमाण वाला है। जानुओं का उच्छ्रय एक अंगुल कहा गयाहै और मण्डल तीन अंगुलका होता है ।५०। ऊरुओं के मध्य में अट्ठाईस अंगुल के परिमाण से युक्त परीणाह होताहै । और ऊपर इकत्तीस अंगुल का होताहै । दोनों वृषण तीन अंगुल वाले हैं । दो अंगुल का मेढ्र है तथा इसका परीणाह छै अंगुल का होता है । उसी भाँति मणिबन्धसे नीचे केश रेखायें जाननी चाहिए ।५५-५६।

मणिकोशपरीणाहश्चतुरंगुल इष्यते ।
विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशांगुला ।५७
द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशांगुलौ ।
नाभिमध्ये परीणाहो द्विचत्वारिंशदंगुलः ।५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्याचैव तु वेष्टनम् ।
कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडगुलौ ।५९
अष्टांगुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिर्दिशेत् ।
परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ।६०
आयामो भुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशदंगुल: ।
कार्यन्तु बाहुशिखरं प्रमाणे षोडशांगुलम् ।६१
ऊद्ध्र्वं यद्बाहुपर्यन्तं विन्द्यादष्टांगलं शतम् ।
तथैकांगुलहीनन्तु द्वितीयं पर्वं उच्यते ।६२
बाहुमध्ये मध्ये परीणाहो भवेदष्टादशांगुल: ।
षोडशोक्त: प्रबाहुस्तु षट्कोग्रकरोमत: ।६३

मणि कोश का परीणाह चार अंगुल का अभीष्ट होता है । उसी भाँति विस्तार से कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए ।५७। स्त्रियों की कटि बाईस अंगुल की होतीहै और दोनों स्तनों स्तन बारह अंगुल के होते हैं । नाभिके मध्य का परीणाह बयालीस अंगुल वाला अभीष्ट होता है ।५८। पुरुष में पचपन और कटि वेष्टन तथा दोनों कक्षों के ऊपर छै अंगुल के स्कन्ध बताये गये हैं । विस्तार में ग्रीवा को आठ अंगुल की निर्विर्दिष्ट करनी चाहिए और परीणाह में ग्रीवा को बारह कला निर्दिष्ट करना चाहिए।५९-६०। दोनों भुजाओं का आयाम उसी भाँति से बयालीस अंगुल का होता है । बाहुशिखरको प्रमाण में सोलह अंगुल का करना चाहिए ।३१। ऊर्ध्व भाग में बाहुपर्यन्त एक सौ आठ अंगुल का लाभ करना चाहिए । उसी प्रकार से एक अंगुलहीन दूसरा पर्व कहा जाता है । बाहुओं के मध्य में अठारह अंगुल का परीणाह होना चाहिए । प्रबाहु षोडश कहा गयाहै और अग्र कर षट्कला वाला माना गया है ।६२-६३।

सप्तांगुलं करतलं पञ्चमध्यांगुली मता ।
अनामिकामध्यमाया: सप्तभागेन हीयते ।६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ।६५
अंगुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः ।
अंगुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरंगुलः ।६६
शेषाणामंगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमामध्यभागन्तु अंगलद्वयमायतम् ।६७
यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्याः प्रहीयते ।
अंगुष्ठपर्वमध्यन्तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ।६८
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्वं उदाहृतम् ।
पर्वार्द्धे तु नखान्विद्यादंगलीषु समन्ततः ।६९
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः ।
भिन्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ।७०

सात अंगुल का करतल होता है और पाँच मध्यांगुली मानी गयी हैं। अनामिका मध्यमा अंगुलि से सात भाग से हीन हुआ करती है। ।६४। उसके पाँच भाग से हीन कनिष्ठा कही जाया करती है। मध्यमा से हीन तर्जनी पाँच भाग से हुआ करती है। तर्जनी के मूल से नीचे उसी के समान अंगुष्ठ कहा गया है। इस अंगुष्ठ का परीणाह तो चार अंगुल का जानना चाहिए ।६५-६६। शेष अंगुलियों का भाग, भाग से हीन होता है। मध्यमा का मध्य भाग दो अंगुल आयत वाला होता है ।६७। सबका यव, यव से उस-उसका प्रहयित हुआ करता है। अंगुष्ठ के पर्व का मध्य तर्जनी के ही सदृश हुआ करता है। उसी भाँति अग्रपर्व गो यव से अधिक उदाहृत किया गया है। अंगुलियों को भी ओर पूर्वार्द्ध में नखों को जानना चाहिए ।६८-६९। अग्र भाग में थोड़ा रक्त-स्निग्ध और श्लक्ष्ण करना चाहिए। मध्य में भिन्न पृष्ठ और पार्श्व में कला से उच्छ्रित होना चाहिए ।७०।

तत्रैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्गः स्तनोरुजङ्घनाधिकाः ।७१
चतुर्दशांगुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् ।
नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्श्लक्ष्णभुजास्ततः ।७२
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा ।
नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धं मात्रं त्रिरंगुलम् ।७३
अध्यर्द्धांगुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ।७४
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धांगुलोच्छ्रया ।
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च ।
तव चालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ।७५

यहीं पर केशों की वल्ली स्कन्धों के ऊपर दश अंगुल परिमाण वाली होनी चाहिए। स्त्रियों का विग्रह तनु अर्थात् कृश अंगों वाला करना चाहिए। इनके तो केवल स्तन ऊरु और जंघाएँ ही अधिक परिपुष्ट होने चाहिए ।७१। चौदह अंगुल के आयाम वाला उदर निर्दिष्ट करना चाहिए। नाना आभरणों से सम्पन्न और कुछ श्लक्ष्ण भुजाओंसे युक्त स्त्रियों विग्रह होना चाहिए। कुछ दीर्घ वक्त्र होवें और उस पर उत्तम अलकी होनी चाहिए। नासा-ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल बिस्तार से समन्वित प्रशस्त हुआ करता है। अधिक दोनों नेत्रों का युग्म चतुर्भाग से विनिर्दिष्ट करना चाहिए। अर्द्धाङ्गुल वाली ग्रीवा की की अवली करनी चाहिए। इसी प्रकार से समस्त नारियों में और देवों की सब प्रतिमाओं में रचना करानी चाहिए। आपको यह अत्यधिक लक्षण बतला दिया है। यह पापों का नाश करने वाला है।७२-७५।

=×=

१२२-देवाकार प्रमाण वर्णन (१)

अत: परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषत: ।
दशताल: स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ।१
वराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामन: ।
मत्स्यकूर्मौ निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा ।२
अत: परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम् ।
स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभ: ।३
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटेविभु: ।
जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च स: ।४
बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डल: ।
ऊर्द्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचन: ।५
व्याघ्रचर्मपरीधान: कटिसूत्रत्रयान्वित: ।
हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ।६
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिता: ।
पीनोरुगण्डफलक: कुण्डलाभ्यामलंकृत: ।७

महामहर्षि वर श्री सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं विशेष रूप से देवों के आकार का वर्णन करूँगा । राम दशताल तथा बलि और वैरोचनि कहा गया है ।१। वाराह और नरसिंह और वामन सप्त ताल बताये गये हैं । स्वयम्भू ने मत्स्य और कूर्म इन दोनों को शोभा के अनुसार हीं निर्दिष्ट किया है । इसके आगे रुद्रादि के उत्तम आकार को मैं बतलाऊँगा । यह पीन ऊरु एवं भुजाओं वाले हैं तथा उनका स्कन्ध भी पीन हैं एवं तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य प्रभासे वह सुसम्पन्न हैं ।२-३ शुक्ल वर्ण वाले—अर्क (सूर्य) रश्मियों का संघात—चन्द्र से अङ्कित जटा वाला—विभु—जटा एवं मुकुटके धारण करने वाले और सोलह वर्ष की अवस्था से युक्त पुरुष की आकृति के समान आकृति वाले हैं । हाथी की सूँड की आभा वाली बाहुओं वाले—वृत्त जंघा एवं ऊरुओं

के मण्डल से युक्त-ऊर्ध्व भाग की ओर केशों वाले तथा दीर्घ एवं आयत नेत्रों वाला स्वरूप करना चाहिए। व्याघ्र के चर्म से परीधान करने वाले—कटि में तीन सूत्रों से संयुत हार, केयूर और अन्य सुन्दर आभरणों से सम्पन्न—सर्पों के आभूषणों से शोभित करे। और ऐसे बहुत से अनेक आभरणों से विभूषित विरचित करे। पीन ऊरु गण्ड फलक वाला तथा कुण्डलों से समलंकृत बनावे।४-७।

आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः।
खेटकं वामहस्ते तु शङ्खञ्चैव तु दक्षिणे।८
शक्तिं दण्डत्रिशूलञ्च दक्षिणेषु निवेशयेत्।
कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वांगमेव च।९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।
वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः।१०
नृत्यन्दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।
तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु।११
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गं घण्टातत्राधिकाभवेत्।
तथा धनुः पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा।१२
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः।
तीक्ष्णनासाग्रदशना करालवदना महान्।१३
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः।
न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयङ्करः।१४

जानु पर्यन्त लम्बी बाहुओं से युक्त-सौम्य मूर्ति सुन्दर शोभा से संयुत-वाम हस्त से खेटक धारण करने वाले तथा दाहिने हाथ में शंख को धारण किये हुए एवं पक्षियों में शक्ति–दण्ड और त्रिशूल को निवेशित करना चाहिए। एक हाथ तो वर प्रदान करने वाली मुद्रामें होना चाहिए और दूसरा अक्षों के वलय वाला होवे। वैशाख स्थानक करके नृत्यों के अभिनय करने में संस्थित होना चाहिए। नृत्य करते हुए दश भुजाओं वाला एवं गजके चर्म को धारण करने वाले रुद्रदेव का स्वरूप

निर्मित करे तथा त्रिपुरासुर के दाह करने में सोलहों बाहुयें व्यस्त हों। वहाँ पर शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग हों और अधिका घण्टा होना चाहिए। तथा पिनाक धनु और विष्णुमय शर होना चाहिए। चतुर्भुज अथवा आठ बाहुओं वाला ज्ञान योगके ईश्वर को माना गया है। तीक्ष्ण नासा तथा अग्र दशन वाले—कराल वदनसे युक्त—महान् और प्रत्यायतन में में संस्थित भैरव लोक में परम प्रशस्त कहे गये हैं। मूलायतन में भैरव भगवान् कभी भी भयङ्कर नहीं निर्मित करना चाहिए।८-१४।

नारसिंह वराहो वा तथान्येऽपि भयङ्कराः।
नाधिकांगा न हीनांगा कर्तव्या देवताः क्वचित्।१५
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी।१६
कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी।
वक्रनासा तु दुःखाय सङ्क्षिप्तांगी भयङ्करी।१७
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी।
दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा।१८
हीनांगा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्।
शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत्।१९
पाणिपादविहीनो यो जायते मारको महान्।
जङ्घानु विहीना च शत्रु कल्याणकारिणी।२०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मी प्रदा सदा।२१

नारसिंह अथवा वराह तथा अन्य भी भयंकर होते हैं किन्तु कभी भी और कहीं पर भी देवों की प्रतिमाओं को अधिक अङ्गों वाली नहीं बनाना चाहिए।१५। जो कोई देवमूर्ति न्यून अङ्गों वाली होती है अथवा कराल मुख से युक्त होती है वह स्वामी का घात किया करती है। जो अधिक अङ्गों वाली अथवा कृश होती हैं वह उसके निर्माण

करने वाले शिल्पकार का हनन किया करती हैं और अर्थ का विनाश करने वाली होती है।१६। जो कोई देवता की प्रतिमा कृश उदर से युक्त निर्मित कराई जावे तो वह दुर्भिक्ष करने वाली हुआ करती है तथा मांस से हीन यदि देव प्रतिमा निर्मित कराई जावे तो उसका यह बुरा फल होता है कि यह धन का धन का विनाश किया करती हैं। वक्र नासिका वाली देव प्रतिमा दुःख के ही लिए हुआ करती है। जिस प्रतिमा के अङ्ग संक्षिप्त हों तो वह भय करने वालीं हुआ करती है। जो मूर्त्ति चिपिटा होती है वह दुःख और शोक के लिए ही हुआ करती है। जिसके नेत्र नहीं होते हैं अर्थात् नेत्रों की रचना न की गई हो वह देव प्रतिमा नेत्रोंके विनाश करने वाली हुआ करती है। हीनमुख वाली प्रतिमा की रचनाका यह दुष्परिणाम होताहै कि वह सर्वदा दुःख प्रदान किया करती है तथा हाथ और चरणों मे कृश प्रतिमा हो हीनांगा—हीनजंघा हो या मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद करने वाली हुआ करती है। शुष्क मुख वाली और कटि से हीना जो होती है वह राजा को नष्ट किया करती है। पाणि और पाद से जो विहीन होकर समुत्पन्न होता है वह महान् मारक हुआ करता है। जो जंघा और जानु से विहीन होती है तो वह शत्रुके कल्याण करने वाली होती है। जो हीन वक्षःस्थल वाली होती है वह पुत्र और मित्र के विनाश के लिये हुआ करती है। जो सम्पूर्ण अवयवों से युक्त होती है वह सदा आयु और लक्ष्मी के प्रदान करने वाली होती है।१७-२१।

एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्भवम्।२२
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम्।
प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः।२३
नृत्यद्भृंगारिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः।
सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम्।२४

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरोगुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ।२५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रबालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ।२६

इस प्रकार से लक्षणों की प्राप्ति करके परमेश्वर की प्रतिमा की रचना करनी चाहिए। भगवान भव को इस प्रकार से दर्शित कराना चाहिए कि वह सब ओर से समस्त सुरगणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे हैं ।२२। इन्दु के द्वारा—नन्दी और महाकाल के द्वारा शंकर की स्तुति की जा रही हो। भगवान् के पार्श्व में सब गण नायक और लोकपाल प्रणत हो रहे हों। भगवान् की प्रतिमाको इस प्रकारसे निर्मित कराना चाहिए कि उनके समक्ष में भृङ्गी और रीटि नृत्यकर रहे हों तथा भूतों और वेतालो से संवृत हों। सब परम प्रसन्न होते हुए परमेश्वर की स्तुति करने वाले हों। गन्धर्व–विद्याधर–किन्नर–अप्सरायें—गुह्यक–नायक इनके अनेक सैकड़ों गणों के द्वारा—महेन्द्रों के द्वारा— और मुनि प्रवरों के द्वारा नम्यमान होवे। सैकड़ों अक्ष सूत्रों के धारण करने वाले प्रवाल—पुष्पों के उपहार के प्रचयों के समर्पित करने वालों के द्वारा स्तूयमान–तीन नेत्रों से युक्त देवगण और मनुष्यों के परम पूज्य ईड्य भगवान् की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए ।२३-२६।

==

१२३-देवाकार प्रमाण वर्णन (२)

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् ।
अर्धार्धं देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् ।१
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः ।

उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ ।२
वासुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ।
बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणेकरे ।
त्रिशूलं चापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ।३
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलन्तु विशेषतः ।४
वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ।
उपवीतञ्च कर्तव्यं मणिमुक्तामयन्तथा ।५
स्तनभारं तथार्धे तु वामे पीनं प्रकल्पयेत् ।
परार्घ्यमुज्ज्वलंकुर्य्याच्छ्रोण्यर्धेतु तथैव च ।६
लिङ्गार्द्ध मूर्ध्वगं कुर्य्यात् व्यालाजिनकृताम्बरम् ।
वामेलम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ।७

महामहर्षि प्रवर श्रीसूतजी ने कहा—अब परम अर्ध नारीश्वर भगवान् के विषय में कहते हैं। देवों के देव के अर्ध भाग से सुशोभन नारी का रूप ।१। ईश के अर्ध भाग में जटा का भाग है और बाल-चन्द्र की कला से युक्त है तथा उमादेवी का जो अर्ध भाग है उसमें सीमन्त और तिलक ये दोनों देने के योग्य हैं। भगवान् शिव के दक्षिण कर्ण में वासुकि सर्प शोभित हो रहे हैं और वाम कर्ण में कुण्डल धारण किया हुआ है। ऊपर में बालिका है दक्षिण कर में कपाल धारण किये हुए हैं। देवों के देव भगवान शूली के कर में त्रिशूल धारण कराना चाहिए। वाम भाग में दर्पण और विशेष रूप से उत्पल धारण करावे। ।१-४। वामबाहु को केयूर और वलय से समन्वित करे। तथा मणि मुक्ताओं से परिपूर्ण उपवीत भी धारण कराना चाहिए ।५। वाम अर्ध भाग में पीन स्तन का भार प्रकल्पित करे तथा श्रोण्यर्ध में उसी भाँति उज्ज्वल परार्ध्य को करना चाहिए। व्याल और अजिन से अम्बर कर के ऊर्ध्वङ्ग लिङ्गार्ध करे तथा वाम भाग के कटि सूत्र सूत्र त्रय से सम-न्वित लम्बे परीधान को धारण कराना चाहिए ।६-७।

नानारत्नसमापेतं दक्षिणे भुजंगान्वितम् ।
देवस्य दक्षिणं पादं पद्मोपरि सुसंस्थितम् ।८
कञ्चिदर्धे तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु ।
रत्नैर्विभूषितान् कुर्य्यादंगुलीष्वंगुलीयकान् ।९
सालक्तकं तथापादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा ।
अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ।१०
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुत द्विजाः ।
संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ।११
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ।१२
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामेकुचभरेकरम् ।
द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ।१३
सुप्रतिष्ठं सुवेषञ्च तथार्धेन्दुकृताननम् ।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता ।१४

दक्षिण भाग में अनेक प्रकार के रत्नों से समुपेत एवं भुजंगों से युक्त शोभा को सम्पादित करे और देवों के देव को दक्षिण चरण पद्म के ऊपर संस्थित करे ।८। अर्द्ध भाग में वाम को अर्थात् बाँये चरण को को नूपुर से समलङ्कृत करे रत्नो से विभूषित अंगुलियों में धारण कराना चाहिए ।९। सदा पार्वती देवी के उस पाद को अलक्तक के सहित दर्शित कराना चाहिए । जिसमें अर्ध नारीश्वर प्रभु को यह रूप उदाहृत किया गया होवे ।१०। हे द्विजगण ! अब आप उमा महेश्वर प्रभु के भी स्वरूप एवं लक्षण का श्रवण कीजिए । उनके लीला से ललित विभ्रम वाले संस्थान को मैं सम्यक् प्रकार से वर्णित करूँगा । चार भुजाओं से संयुत अथवा दो बाहु वाले रूप से समन्वित हों—जटा-जूट के भार और चन्द्रमा के भूषण के सहित—तीन लोचन वाले तथा उमाके कन्धे पर एक हाथ रखे हुए भगवान् शिवका वह रूपहै जो एक

ही में उमा महेश्वर दोनों का होता है ।११-१२। दक्षिण कर से उत्पल को ग्रहण करने वाले तथा शूल को लिये हुए और वाम कर से स्तन के भार को सम्हाले हुए—द्वीपी के चर्म का परिधान धारण करने वाले एवं अनेक रत्नों से समुपशोभित—सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त—सुन्दर वेष वाले तथा अर्ध चन्द्र से मुख को करने वाले रूप से युक्त भगवान् भव का स्वरूप है । उनके उनके ऊरु पर वाम भाग में बाहुओं से गृहित उमा देवी विराजमान हैं ।१३-१४।

शिरोभूषणसंयुक्तै रलकैर्ललितानना ।
सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्वला ।१५
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित् ।
हारकेयूरबलबहुला हरवक्त्रावलोकिनी ।१६
वामांसन्देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः ।
दक्षिणन्तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा ।१७
स्कन्धं वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यंगं लजैः क्वचित् ।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ।१८
कटिसूत्रत्रयंचैव नितम्बे स्यात्प्रलम्बकम् ।
जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ ।१९
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान् ।
मालाविद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः ।२०
एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।
शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।२१

वह देवी शिरोभूषणों से समन्वित अलकों के द्वारा अत्यन्त ललित आनन वाली है । बालिका (बाली) से सहित कानों से शोभित ललाट पर तिलक धारण करने से परमोज्जल-मणियों से जटित कुण्डलों वाली —किसी समय में कर्णिका के आभरण से भूषित हार तथा केयूरों के धारण करने से बहुल-भगवान् हर के मुख का अवलोकन करने वाली—

लीला से देवों के भी देव भगवान् शिव के वाम अंश का स्पर्श करने वाली—दक्षिण बाहु को बाहिर करके दक्षिण की ओर से दक्षिण कुक्षि में अंगुलियों से स्कन्ध का स्पर्श करती हुई श्रीउमादेवी विराजमानहैं। इनके वाम हस्त में दर्पण समर्पित करना चाहिए अथवा परम शोभा से सुसम्पन्न उत्पल देना चाहिये।१५-१८। उन देवी के नितम्ब भाग में कटि का सूत्र त्रय होना चाहिए तथा प्रलम्ब का होना भी अत्यावश्यक है। जया और विजया तथा स्वामी कार्तिकेय और विघ्न विनायक ये सब उन महादेवी के दोनों पार्श्व भागों में वहाँ पर तोरण में गणों और गुह्यकों को दिखलावें—इसी प्रकार से माला—विद्याधरों को तथा अप्सराओं के समुदाय को दिखलाके प्रदर्शित करने चाहिये।१९-२०। जो मनुष्य वैभव की इच्छा रखने वाला है उसको चाहिए कि इस तरह का उपरिवर्णित महेश्वर भगवान् का स्वरूप बनावे। अब मैं इस प्रकार से शिव नारायण के मिश्रित स्वरूपका वर्णन करूँगा जो समस्त प्रकार के महापापों का विनाश करने वाला है।२१।

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम्।
बाहुद्वयञ्च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम्।२२
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम्।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद् गदाभृतः।२३
शङ्खञ्चैवेतरे दद्यात् कट्यर्धे भूषणोज्वलम्।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम्।२४
दक्षिणार्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम्।
भुजंगहारवलयं वरदं दक्षिणे करम्।२५
द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम्।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम्।२६

मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।
शिवनारायणस्यैव कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ।२७
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनीवामकूर्परम् ।२८

श्री शिवनारायणात्मक स्वरूप में वाम भाग में भगवान् माधव को जानना चाहिये और दक्षिण भाग में शूल हाथ में धारण करने वाले शिव का स्वरूप समझ लेवे। भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों बाहुओं को मणियों से जटित केयूरों से समलंकृत करे।२२। भगवान् माधव का स्वरूप शंख और चक्र को धारण करने वाला—परम शान्त-आरक्त अंगुलों के विभ्रम से संयुक्त हो—भगवान् गदाधर के कर में चक्र के स्थान में गदा को ही धारण करा देवे। दूसरे कर में शंख को धारण कराना चाहिये भगवान् के कटि का अर्धभाग भूषण से समुज्ज्वल बनावे। पीतवर्ण वाले वस्त्र का उनका परिधान करावे और मणियोंसे जटित भूषण से युक्त चरण प्रदर्शित करे। इस तरह से वाम भाग के ईश्वर भगवान् का स्वरूप प्रदर्शित कराना चाहिये। अब दक्षिण अर्ध भाग में भगवान् शिव के स्वरूप का प्रदर्शन होना चाहिये। वह शिव का स्वरूप जटाओं के भार से युक्त है और अर्ध चन्द्र के द्वारा भूषण किये हुए हैं भुजङ्गों के हार एवं वलय वाला है और जिस शिव स्वरूप का दक्षिण कर वर के प्रदान करने वाला है। दूसरे स्वरूप को भी करना चाहिये जो त्रिशूल वर का धारण करने वाला—व्यालों के उपवीत से समन्वित है तथा कटि का अर्धभाग कृत्ति (गज चर्म) के वस्त्रसे समावृत है। मणि रत्नों के द्वारा पाद संयुक्त हैं तथा नागों से विभूषित हैं। इस प्रकार से शिव और नारायण के मिश्रित उत्तम स्वरूप की कल्पना करनी चाहिये। अब मैं महा वराहके स्वरूप का वर्णन करूँगा महा वराह का स्वरूप पद्म हाथ में धारण करने वाला है—गदा के धारण करने वाला—तीक्ष्ण दंष्ट्रा से युक्त अग्र घोणा (नासिका) और अस्य (मुख) वाला है जिसके वाम कूर्पर पर मेदिनी है।२३-२८।

दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम् ।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ।२६
दक्षिणं कटिसंस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् ।
कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि ।३०
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत् ।
नारसिंहन्तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ।३१
रौद्रं सिंहासनं तद्वत् विदारितमुखेक्षणम् ।
स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तन्दितेः सुतम् ।३२
विनिर्गतान्त्रजालञ्च दानवं परिकल्पयेत् ।
वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ।३३
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित्करणबन्धनैः ।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ।३४
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खंगखेटकधारिणम् ।
स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ।३५

उस महा वराह के स्वरूप में धरणी की कल्पना भी करनी चाहिए जो दाढ़ के अग्रभाग से उद्धृत हो—उत्पलों से समन्वित हो—विस्मय से उत्फुल वदन वाली हो, ऐसी धारणी की ऊपर के भाग में रचना करावे उस महा वराहकी प्रतिमा का दक्षिण कर कटि पर स्थित हो—ऐसी कल्पना करे। उस महा वराह का एक चरण कूर्म के ऊपर और एक पाद नागेन्द्र के मस्तक पर स्थित होने की कल्पना करनी चाहिए।२६-३०। सब ओर से लोकपालों के द्वारा संस्तूयमान होनेवाले स्वरूप को परिकल्पित करे। नरसिंह भगवान्के शरीरको आठ भुजाओं से समन्वित कल्पित करना चाहिये।३१। उनका महान् रौद्र स्वरूप वाला सिंहासन होता है और उसी तरहसे विदारित मुख एवं नेत्र होते हैं। स्तब्ध पुष्ट सटाओं से युक्त कर्णों वाला वह स्वरूप होता है जो दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु के हृदय को विदीर्ण करता हुआ विद्यमान

है ।३२। उस दानव के आंतों का जाल विदीर्ण करने से बाहिर निकला हुआ हो ऐसा ही स्वरूप परिकल्पित करना चाहिये जो कि अत्यधिक घोर रुधिर का वमन कर रहा हो जो भृकुटि–मुख और नेत्रों से वह रुधिर निगलने वाला हो ।३३। कहीं किसी स्थल पर ऐसा भी स्वरूप कल्पित किया जा सकता है जो करण बन्धनों के द्वारा युद्ध करता हुआ हो और दैत्य परिश्रान्त होकर बारम्बार तर्जन किया जाने वाला हो । युद्ध करने की अवस्था में दैत्य को अङ्ग और खेटक का धारण करने वाला प्रदर्शित करना चाहिये । उस समय में यह भी प्रदर्शित करे कि अमराधिप गणों के द्वारा विष्णु स्तवन किये जा रहे हों ।३४-३५।

तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम् ।
पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ।३६
अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम् ।
दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत् ।३७
भृङ्गारधारिणं तद्वद्बलिं तस्य च पार्श्वतः ।
बन्धनञ्चास्य कुर्वन्तं गरुडन्तस्य दर्शयेत् ।३८
मत्स्यरूपं तथा मात्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत् ।
एवंरूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ।३९
ब्रह्माकमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः ।
हंसारूढः क्वचित्कार्य्यः क्वचिच्च कमलासनः ।४०
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः ।
कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ।४१
वामे दण्डधरं तद्वत् स्तुवञ्चापि प्रदर्शयेत् ।
मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः ।४२

अब भगवान् त्रिविक्रम के विषय में वर्णन किया जाता है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के क्रमण करने में अत्यन्त ही उल्वण थे । पादके पार्श्व में तथा ऊपर बाहु की कल्पना करनी चाहिए । नीचे की ओर उसी

भाँति वामन देव की कमण्डलुके सहित वर्त्तमान होनेकी कल्पना करना करनी चाहिये । उन वामन देव प्रभु के दाहिने हाथ में एक छोटा सा छत्र देवे और उनका मुख दीमता से परिव्याप्त ही कल्पित करे । उनके पार्श्व भाग में शृङ्गार के धारण करने वाले राजा बलि को प्रदर्शित करना चाहिए । वामन देव को इस दैत्यों के राजा बलि का बन्धन करते हुए ही दर्शित करना चाहिए तथा उनके समीप में ही गरुड़ को भी दिखलावे ।३६-३८। वहीं पर मत्स्य रूपी मात्स्य एवं कूर्म की आकृति से युक्त कूर्मका भी न्यास करना चाहिए । इस प्रकार के स्वरूप से सुसम्पन्न भगवान् नारायण हरिका स्वरूप वहाँ पर करना आवश्यक है ।३९। चारों मुखों से युक्त कमण्डलु के धारण करने वाले ब्रह्माजी को वहाँ पर दिखलाना चाहिये । किसी स्थल पर उन ब्रह्मा को हँसपर समारूढ़ और कहीं पर कमल के आसन पर विराजमान दिखलावे ।४० ब्रह्मा का वर्ण कमल की आभा के सदृश-चार भुजाओं से युक्त-शुभ नेत्रों वाला—बाँये हाथ में कमण्डलु लिये हुये तथा दाहिने हाथ में स्रुव धारण करने वाला दिखलाना चाहिए ।४१। उसी भाँति वाम हस्त में दण्ड को धारण करने वाला और स्रुव का धारी प्रदर्शित करे । सभी ओर मुनिगण—देवगण और गन्धर्वों के द्वारा स्तूयमान होने वाला श्री वामन देव को दिखाना चाहिये ।४२।

कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन् शुक्लाम्बरधरं विभुम् ।
मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ।४३
आज्यस्थालि न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः ।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च च सरस्वतीम् ।४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्य्याः पैतामहे पदे ।
कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसंप्रभम् ।४५
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम् ।
दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ।४६

स्थापयेत् स्वेष्टनगरेभुजान्द्वादश कारयेत् ।
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वने ग्रामे द्विबाहुकः ।४७

शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शूलं तथैव च ।
वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत् ।४८

एते दक्षिणतो ज्ञेयाः केयूरकटकोज्वलाः ।
धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ।४९

श्री वामन देव का स्वरूप वहाँ पर ऐसा प्रदर्शित कर मानो वे तीनों लोकों की रचना कर रहे हों । शुक्ल वर्ण वाले वस्त्रों से धारी-विभु मृग के चर्म के धारण करने वाले—दिव्य यज्ञोपवीत से सम्पन्न वामन देव के स्वरूप को दिखाना आवश्यक है । उनके समीप में आज्य की स्थाली रक्खे और चारों वेदोंको भी स्थापितकरे । इनके वामपार्श्व में सावित्री देवी और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती देवी की उपस्थिति दिखानी चाहिए ।४३-४४। आगे की ओर उन पितामह के पद में उसी तरहसे ऋषिगण की रचना करनी चाहिए । अब हम स्वामि कार्त्तिकेय के तरुण आदित्य के समान प्रभा वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं ।४५। कार्त्तिकेय प्रभु का वर्ण कमल के उदर की प्रभा के तुल्य है । और वह कुमार अत्यन्त ही सुकुमार हैं कुमार का स्वरूप दण्डक एवं चीरकों से समायुक्त है एवं श्रेष्ठ मयूर के वाहन वाला है ।४६। अपने अभीप्सित नगर में उनकी स्थापना करे तथा द्वादश भुजाओं की कल्पना करे । खर्बट में चार भुजाओं वाला स्वरूप-वन तथा ग्राम में दो बाहुओं वाला स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिये । शक्ति-पाश-खड्ग-शर-शूल—ये आयुध हाथों में धारण करने वाला स्वरूप हो और एकहाथ वरदान देने वाला एवं एक हाथ अभय के देने वाला होना चाहिये । ये सब दक्षिण भाग में जानने चाहिये—केयूर कटकोज्वल, धनुष, पताका, मुष्टि तथा तर्जनी प्रसारित होनी चाहिये ।४७-४९।

खेटकं ताम्रचूडञ्च वामहस्ते तु शस्यते ।

द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ।५०
चतुर्भुजे शक्तिपाशो वामतो दक्षिणे त्वसि ।
वरदोभयदोवापि दक्षिणः स्यात्तुरीयकः ।५१
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।५२
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम् ।
स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा ।५३
मोदकं परशुञ्चैव वामतः परिकल्पयेत् ।
बृहत्वात् क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ।५४
युक्तन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
कात्यायन्या प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ।५५
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् ।
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ।५६

खेटक-ताम्रचूड़ ये दोनों वाम हस्त में प्रशस्त होते हैं। जो दो भुजाओं वाले स्वरूप के वाम हस्त में कुक्कुट के ऊपर में शक्ति धारण करावे। चतुर्भुज स्वरूप में वाम भाग में शक्ति और पाश तथा दक्षिण हाथ में असि धारण करावे। वर देने वाला और अभय का दान करने वाला भी दक्षिण हाथ ही तुरीयक (चतुर्थ) होना चाहिये ।५०-५१। अब श्री विनायक के स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ जिनका गजके समान मुख है और तीन लोचन हैं। भगवान् विनायक लम्बे उदर वाले शूपके सदृश कर्मों से युक्त और व्यालों के यज्ञोपवीत को धारण करने वालेहैं, ध्वस्त कर्णों वाले—बृहत् तुण्ड से युक्त—एक दाँतसे संयुक्त-पृथु (विशाल) उदर वाले हैं। यह अपने दाहिने हाथ से आस्वाद लेने वाले और दूसरे हाथ में उत्पल रखने वाले हैं।५२-५३। मोदक और परशु का ग्रहण करना वाम हस्तसे कल्पित करना चाहिये, बृहत् होनेके कारणसे क्षिप्त वदन वाले और पीन (परिपुष्ट) स्कन्ध चरण और पाणि (हाथ) वाले

है तथा ऋद्धि और बुद्धि दोनों से युक्त हैं। इनके नीचे मूषक वाहनके रूप में स्थितहैं अत: उससे समन्वित हैं। इसके उपरान्त मैं भगवती का कात्यायनी देवी के विषय में वर्णन करता हूँ—इनका स्वरूप दो भुजाओं वाला है।५४-५५। यह देवी तीनों बड़े देवों के अनुकार का अनुकरण करने वाली हैं। इनकी भी आकृति जटा जूटों से समायुक्त है तथा अर्ध चन्द्र के द्वारा किये हुये लक्षणों से युक्त है।५६।

लोचनत्रयसम्पन्नां पद्मेन्दुसदृशाननाम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।५७
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।
सुचारुदशनान्मद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ।५८
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं तथैव च ।५९
तीक्ष्ण बाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत ।
खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमंकुशमेव च ।६०
घण्टां वा परशुञ्चापि वामत: सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषन्तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।६१
शिरच्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फारितेक्षणम् ।६२
वेष्टित नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्या: सिंहं प्रदर्शयेत् ।६३

कात्यायनी देवी तीनों लोचनों से सुसम्पन्न-पद्म तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली अतसी के पुष्प के तुल्य स्वरूप से युक्त-सुन्दर प्रतिष्ठा से समन्वित एवं रुचिर लोचनों वाली हैं नूतन यौवन से युक्त-सम्पूर्ण आभरणों से बिभूषित-सुन्दर दाँतों वाली और उसी तरह पीन एवं उन्नत पयोधरों से युक्त हैं।५७-५८। तीन भङ्गों से युक्त स्थानों के संस्थान वाली और महिषासुर के मर्दन करने वाली हैं। इनके दक्षिण

कर में त्रिशूल धारण कराने और खड्ग एवं चक्र भी देवे। तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को वाम कर में धारण कराना चाहिये। इनके अतिरिक्त वाम भाग में खेटक-पूर्णचाप-पाशु-अंकुश-घण्ट-परशु ये भी सब निवेशित करने चाहिए। इन देव के चरणों के नीचे के भाग में दो शिरों वाले महिषासुर को भी प्रदर्शित करे।५६-६१। शिर के छेदन होने से समुत्पन्न रक्त से रक्तीकृत अङ्गों वाला—रक्त से विस्फारित नेत्रों से संयुत-खड्ग हाथ में धारण किये हुये उस दानव का स्वरूप दिखाना चाहिये।६२। नाग पाश से वेष्टित-भ्रकुटी से संयुत भीषण आनन वाला—बहते हुये रुधिर से युक्त मुख वाला देवी का वाहन सिंह भी देवी की प्रतिमा के साथ ही समीप में प्रदर्शित करना आवश्यक है। ।६३।

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्द्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि।६४
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्।
इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः।६५
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्।
पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्।६६
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्।
वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्।६७
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम्।
छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्।६८
सिंहासनगतञ्चापि गन्धर्वगणसंयुतम्।
इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्य्यादुत्पलधारिणीम्।६९

देवी का दक्षिण पाद सिंह के ऊपर स्थित होता है। उससे कुछ ऊपर वाम पादका अंगुष्ठ महिषासुरके ऊपर समवस्थित होना चाहिए। ।६४। ऐसा देवी का स्वरूप अमर गणों के द्वारा संस्तूयमान होता हुआ

सन्निवेशिय करना चाहिये । अब इसके उपरान्त मैं सुरराज महेन्द्र देव के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—इन्द्रदेव का स्वरूप सहस्र नयनों वालाहै तथा मत्त गजेन्द्र पर समारूढ़-पृथु (विशाल) ऊरु, भुज और वक्षस्थल से समन्वित है । सिंहके समास स्कन्धों वाला—महान् भुजाओं से युक्त किरीट एवं कुण्डलोंके धारण करने वाला-पीवर ऊरू,भुजा एव ईक्षणों वाला है । वज्र एवं उत्पल का धारी तथा उसी भाँति अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित—देवों और गन्धर्वों से पूजित—अप्सरा गणों के द्वारा सेवित इन्द्र का स्वरूप कराकर उनके पार्श्व में छात्र एवं चमरोंके धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित करनी चाहिए ।६५-६६। इन्द्र देव को सिंहासन पर संस्थित-गन्धर्व गण के द्वारा सेवित निवेदित करे और इनके वाम भाग में उत्पलों के धारण करने वाली इन्द्राणी को कल्पित करना चाहिये ।६६।

१२४—नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः ।
रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ।१
सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथं तस्य प्रकल्पयेत् ।
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ।२
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम् ।
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा ।३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत् ।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ ।४
प्रतिहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ ।
कर्तव्यं खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ।५
लेखनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे धातारमव्ययम् ।

नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद्दिवाकरम् ।६
अरुण: सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभ: ।
अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयो: ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—हे द्विजगणो ! अब आप लोग प्रभाकर की प्रतिमाके स्वरूपादिके विषय का श्रवण करिये । सूर्यदेवको रथ में विराजमान-पद्म हाथ में धारण किये हुए एवं सुन्दर लोचनों वाला प्रदर्शित करना चाहिये ।१। सूर्य का रथ सात अश्वों से समन्वित एवं एक चक्रवाला परिकल्पित करे । शिखर एक विचित्र मुकुटसे समन्वित और पद्म के मध्य भाग के समान प्रभा वाला करे ।२। अनेक आभरण और भूषाओं से युक्त भुजाओं के द्वारा पुष्करों को धारण करने वाले और सदा लीला से ही स्कन्धों पर पुष्करों को धारण किये हुये इन्द्रदेव का स्वरूप है । कहीं पर चित्रोंमें चोलक से संवृत इन्द्रका स्वरूप दर्शित करना चाहिये । दोनों चरण तेज से समावृत होवें और दोनों पार्श्वभागोंमें दण्डी और पिङ्गल ये दोनों प्रतिहारी करने चाहिये । इन दोनों पुरुषों हाथोंमें खड्गधारा नियोजित करने चाहिये । पार्श्व में ही हाथमें लेखनी धारण करने वाले अव्यय धाता को दर्शित करावे । इस प्रकार से नाना के देवगणों से युक्त भगवान् भुवन भगवान् भुवन भास्कर को प्रदर्शित करना चाहिये ।३-६। इस दिवाकर-सारथि अरुण है जो पद्मिनी पत्र के सदृश है । इसके पार्श्वों में सुवलय ग्रीवा वाले अन्तस्थ दो अश्व होने चाहिये ।७।

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धा: सप्ताश्वा रश्मिसंयता: ।
पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत् ।८
वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् ।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ।६
बालार्कसदृश तस्य वदनञ्चापि दर्शयेत् ।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ।१०

कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् ।
ज्वालाविनानसंयुक्तमजवाहनमुज्वलम् ।११

कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।
तत्र यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ।१२
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ।१३
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किंकरास्तथा ।
समन्ताद्दर्शयेत्तस्य सौम्यासौम्यान् सुरासुरान् ।१४

रश्मियों से (बागडोरों से) संयत सात उनके अश्व हैं जो कि भुजंगों की रज्जुओं से बद्ध हैं। अरुण देव को पद्म पर स्थित-वाहन के ऊपर समारूढ़ और पद्म हाथमें ग्रहण करनेवाले परिकल्पित करना चाहिये ।८। अब वह्निदेव के लक्षण का वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओं के फल को प्रदान करने वाले हैं। इनका स्वरूप परमदीप्ति से युक्त-सुवर्ण के तुल्य वपु वाला अर्द्ध चन्द्र के आसन पर समवस्थित है ।९। बाल सूर्य के सदृश इनका मुख प्रदर्शित करे। इन देव को यज्ञो-पवीत धारी तथा लम्बी दाढ़ी से संयुत दिखलाना चाहिये ।१०। इनके वाम कर में कमण्डलु---दक्षिण हस्त में अक्षसूत्र---ज्वालाओं के वितान से संयुत और उज्ज्वल एवं अज के वाहन वाला कल्पित करना चाहिये ।११। मस्तक पर सात शिखाओं से संयुक्त इन अग्निदेव को कुण्ड में समवस्थित करे। इसके अनन्तर दण्ड और पाश के धारण करने वाले विभु यमदेव के स्वरूप का वर्णन करूँगा ।१२। महान् विशाल महिष के ऊपर समारूढ़-कृष्ण अञ्जन के समुदाय के समान काले वर्ण वाला-सिंहासन पर स्थित-दीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाला यमराज का स्वरूप है ऐसा ही दर्शित करना चाहिये। महिष और चित्रगुप्त ये इस देव के परम कराल किङ्कर हैं जिनको कि इनके चारों ओर दिखावे।

और अन्य सौम्य स्वरूप वाले असुरोंको यमराज के सब ओर दिखलाना चाहिये ।१३-१४।

राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च नैर्ऋतम् ।
नरारूढं महामायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ।१५
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम् ।
नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ।१६
वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम् ।१७
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् ।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम् ।१८
चित्राम्बरधरं शान्त युवानं कुञ्चितभ्रुवम् ।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ।१९
कुबेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलंकृतम् ।
महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ।२०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा ।
हारकेयूररचितं सिताम्बरं मदा ।२१
गदाधरञ्च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् ।
नरयुक्तविमानस्थं एवं नीत्या च कारयेत् ।२२

अब उसी तरह से राक्षसों के स्वामी और लोकपाल नैर्ऋत के विषय में वर्णन करूंगा । यह नर पर समारूढ—महती माया से सम्पन्न बहुत से राक्षसों से संवृत—अत्यन्त नील वर्ण वाले-हाथ में खड्ग को धारण किये हुये -काजल के पर्वत के समान स्थित—नर से युक्त विमान में स्थित हैं तथा पीतवर्णाके आभरणोंसे समन्वित इनका स्वरूप होताहै ।१५-१६। अब वरुण देव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—यह हाथ में पाशको धारण करने वाले-महान् बलवान्—शंख और स्फटिक मणि के वर्ण के तुल्य वर्णा वाले श्वेत हार एवं वस्त्रों से समावृत रूप

(मत्स्य) के आसन पर स्थित—परम शान्त और किरीट तथा अङ्गदों के धारण करने वाले हैं। अब वायुदेव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वायु का वर्ण धूम्र होता तथा मृग के वाहन पर विराजमान रहा करते हैं। इनका स्वरूप विचित्र वस्त्रों के धारण करने वाला—परम शान्त–युवावस्था से युक्त कुञ्चित भ्रूओं वाला—मृग पर समाधिरूढ़-वरदान प्रदान करने वाला-पताका तथा ध्वजा से युक्त होता है–ऐसाही इनका स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिए इसके अनन्तर कुवेर के स्वरूप का वर्णन करता हैं—यह कुण्डलों से अलंकृत होते हैं–इनका स्वरूप महान् उदर वाला—महान काया वाला—आठ निधियों से समन्वित-बहुत—से गुह्यकों से युक्त जो कि धन के व्यय करने वाले हैं—गदा के धारण करने वाला-वर देने वाला मुकुट से संयुत और नरों से युक्त विमान में समवस्थित होता है। इसी रीति से कुबेर के स्वरूप को प्रदर्शित करना चाहिये।१७-२२।

तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम् ।
त्रिशूलफणिगं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम् ।२३

मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः ।
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा ।२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ।२५

जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा ।
कपालशूलखट्वांगवरदाढ्या चतुर्भुजा ।२६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना ।
रक्तवस्त्रधरा तावच्छूलशक्तिधरा मता ।२७
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा ।
वैष्णवी विष्णुसदृशा गरुडे समुपस्थिता ।२८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा ।

सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ।२९
वाराहीञ्च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम् ।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी ।३०

इसी प्रकार से भगवान् ईश के स्वरूप का मैं अब वर्णन करता हूँ—शिव का स्वरूप एकदम धवल होता है तथा इनके नेत्र भी श्वेत हुआ करते हैं। शिव हाथ में त्रिशूल होता है—तीन नेत्रों से युक्त—वृषवाहन पर स्थित—ऐसे यह प्रभुदेव होते हैं—ऐसा ही इनका स्वरूप दर्शित करावे। अब इसके अनन्तर मातृगण के स्वरूप का वर्णन किया जाता है और इनके स्वरूप को यथारीति से आनुपूर्वश बतलाया जाता है—यह ब्रह्माणी-ब्रह्म के सदृश-चार मुखों वाली–चार भुजाओं से युक्त हंस पर समाधिरूढ-अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से युक्त ही इनका स्वरूप बतलाना चाहिए। भगवान् महेश्वर के रूप के साथ उसी भाँति माहेश्वरी को भी माना गया है। यह भी जटा और मुकुट से संयुत-वृषपर विराजमान-मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाली–चारों भुजाओं में क्रमशः कपाल–शूल–खट्वांग और वरदान रहा करते हैं—ऐसी ही चार भुजाओं वाली हैं।२३-२६। मयूर के श्रेष्ठ वाहन कौमारी कुमार के स्वरूप से सुसम्पन्नहै—रक्त वस्त्रों को धारण करती हुई शूल और शक्ति को धारण करने वाली इनको माना गया है।२७। हार तथा केयूरों के धारण करती हुई कृकवाकु धारिणी है—सिंहासन पर स्थित रहती हुई बालक से समन्वित है। चार बाहुओं वाली–वरदान प्रदान करती हुई शंख, चक्र और गदाधारिणी है। महिष पर समारूढ—वराह के सदृश यह देवी चिरकाल तक मस्तक पर चामरों को धारण करती हैं।२८-३०।

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी ।
इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम् ।३१
गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम् ।३२

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् ।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ।३३

दंष्ट्राकरालवदनां कुर्य्याच्चैव कृशोदरीम् ।
कपालमालिनी देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।३४

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम् ।
मस्तिष्काक्तञ्चबिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे ।३५

गृध्रस्था वायसंस्थां वा निर्मांसां विनतोदरी ।
करालवदनातद्वत्कर्तव्या सा त्रिलोचना ।३६

अब महिष के ऊपर विराजमाना वराह के ही तुल्य स्वरूप वाली वाराही गदा और चक्र के धारण करने वाली है और दानवेन्द्रों को उसी तरह से विनाश करती है। इन्द्र के सदृश वज्र शूल और गदा को धारण करने वाली इन्द्राणी है ।३१। गज के आसन पर स्थित-बहुत से लोचनों से युक्त यह देवी होती है—तप्त सुवर्ण के समान वर्ण की आभा से युक्त—दिव्य आभरणों से समन्वित एवं विभूषित-तीक्ष्ण खड्ग को धारण करने वाली अब इस योगेश्वरी का मैं वर्णन करूँगा। यह योगेश्वरी देवी लम्बी जिह्वा वाली—ऊर्ध्व की ओर जाने वाले केशों से संयुक्त और अस्थि खण्डों से मण्डित है ।३२-३३। दंष्ट्राओं के द्वारा कराल वदन वाली इस कृश उदर से सम्पन्न देवी को दर्शित करना चाहिए। कपाल मालिनी देवी मुण्डों की मालाओं से शोभित है। यह मांस और शोणित से परिपूर्ण कपाल को अपने बांये हाथ से ग्रहण किया करती है तथा वह मस्तिष्क से अक्त होता है एवं दक्षिण कर में शक्ति को धारण करने वाली है। गृध्र पर स्थित—वायस पर संस्थित-बिना मांस वाली—विशेष रूप से नत उदर से युक्त—कराल मुख वाली और उसी भाँति इसके स्वरूप को तीन लोचनों वाला करना चाहिये ।३४-३५-३६।

चामुण्डा बद्धघण्टा वा दीपिचर्मधरा शुभा ।
दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ।३७
सुरक्तपुष्पाभरणं वर्धनी ध्वजसंयुता ।
विनायकञ्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ।३८
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः ।
वीणाहस्तत्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ।३९
श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवनां पीतगण्डां रक्तौष्ठीं मुञ्चितभ्रुवम् ।४०
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ।४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुण्डलालकैः ।
कञ्चुकाबद्धगात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ ।४२

चामुण्डा-बद्धघण्टा-द्वीपि (गज के) चर्म को धारण करने वाली अर्थात् नग्न—कालिका-रासभ (गधा) पर संस्थित—कपालों के धारण करने वाली—सुन्दर रक्त वर्ण वाले पुष्पों के आभरणों से समलंकृत-वर्धनी–और ध्वज से संयुक्त कपाल मालिनी आदि का स्वरूप होता है। मातृ गणों के समीप में सदा भगवान् विनायक को अवश्य ही समवस्थित करना चाहिए। और वीरेश्वर भगवान्—वृष पर समारूढ़—जटाजूट के धारण करने वाले—हाथ में वीणा रखने वाले—त्रिशूलधारी उन मातृ-गणों के आगे विराजमान होने चाहिए।३७-३८-३९। अब हम श्री देवी के स्वरूप के विषय में वर्णन करेंगे जो कि नूतन वय में संस्थित हैं—सुन्दर यौवन से सम्पन्न—पीतगण्डों वाली रक्त ओष्ठों से संयुक्त—कुञ्चित भौंहों वाली—पीन एवं उन्नत स्तनतट से युक्त—मणि जटित कुण्डलों के धारण करने वाली हैं। उन श्री देवी का मुख सुन्दर मण्डल वाला है तथा शिर सीमन्त भूषण युक्त है।४०-४१। पद्म, स्वास्तिक, शंखों के द्वारा अथवा कुण्डल और अलकों के द्वारा भूषित है। कञ्चुकी

से आवृद्ध गात्रों वाले—हार की भूषा से भूषित श्री देवी के दोनों पयोधर हैं ।४२।

नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ ।
पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ।४३
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ।४४
पार्श्वस्ता: स्त्रिय: कार्य्याश्चामरव्यग्रपाणय: ।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ।४५
करिभ्यांस्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकश: ।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथापरौ ।४६
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यक: ।
तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ।४७
पार्श्वयो: कलशा: तस्यास्तोरणे देवदानवा: ।
नागाश्चैव तु कर्तव्या: खड्गखेटकधारिण: ।४८
अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरू र्ध्वन्तु पौरुषी ।
फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या: द्विजिह्वाबहव: समा: ।४९

नाग (गज) के हस्त (सूंड) के सदृश दोनों बाहुएं हैं जो केयूर और कटक आभूषणों से समुज्ज्वल हैं । इनके हाथ में पद्म अर्पित करे तथा दक्षिण कर में श्री फल देना चाहिए । तप्त काञ्च के प्रभा वाली मेखला के आभरण से युक्त—अनेक भूषणों से संयुत—परम शोभन अम्बरों के धारण करने वाली भगवती श्री देवीका स्वरूप होना चाहिए । उनके पार्श्व भाग में चामरों से युक्त हाथों वाली स्त्रियों का नियोजन आवश्यक है । वह देवी पद्म के आसन पर उपविष्ट हैं तथा पद्मों के द्वारा निर्मित सिंहासन पर समवस्थित हैं । वह देवी करियोंके द्वारा स्नाप्यमान होती हैं । अनेक बार भृङ्गारों के द्वारा क्षालन करते हुए दोनों करी हैं तथा दूसरे भृङ्गारों से क्षालन करने वाले हैं । लोकपालों के द्वारा

एवं गन्धर्वों और गुह्यकों के द्वारा वह देवी स्तूयमान होती हुई प्रदर्शित करे। इसी भाँति से सिद्धों और असुरों के द्वारा निषेवित यक्षिणी को भी दिखलाना उचित होता है। उसके दोनों पार्श्व भागों में दो कलश संस्थापित होने चाहिए तथा तोरण में देव और दानवों को स्थित करे। खड्ग और खेटक के धारण करने वाले नागों की भी स्थिति करनी चाहिए। उनके नीचे के भाग में प्रकृति होवे तथा नाभि के ऊर्ध्व भाग में पौरुषी होनी चाहिए, मूर्द्धा में फणा दर्शित करे और सब द्विजिह्वा (सर्प) प्रदर्शित करने चाहिये।४३-४९।

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातय:।
निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिण: ।५०

क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः।
दिग्वासा जटिलस्तद्वं श्वगोमायुनिषेवित: ।५१

कपालं वामहस्ते तु शिर: केशै: समावृतम्।
दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम् ।५२

अथात: सम्प्रक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायधुम्।
पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम् ।५३

दक्षिणे पुष्पबाणञ्च वामे पुष्पमयं धनु:।
प्रीति: स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्कराान्विता ।५४

रतिश्च वामाश्वेंतु शयनं सारसान्वितम्।
पटश्च पटहश्चैव खर: कामातुरस्तथा ।५५

पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च।
सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान कुसुमायुध:।
संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद्विस्मितवक्त्रम् ।५६

एतदुद्देशत: प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजा: ! ।५७

पिशाच–राक्षस–भूत–वेताल आति वाले—ये सब निर्मांस, रौद्र और विकृत रूप वाले होने चाहिये। जटाधारी तथा विकृत आनन वाला क्षेत्रपाल भी वहाँ पर स्थापित करके दर्शित करे जो दिशाओं के वसन वाला (नग्न) जटिल कुत्तों और गोमायु (गीदड़) आदि से ऐसा निषेवित हो कि उसके साथ रुला रहे हों। उसके वाम हस्त में कपाल हो तथा उसका शिर केशों से समावृत होवे। दाहिने हाथ में असुरों के क्षय के करने वाली शक्तिका को देवे—ऐसा ही उनका स्वरूप दिखलावे। इसके अनन्तर अब दो भुजाओं वाले कुसुमायुध कामदेव को वर्णित किया जाता है। उसके पार्श्व में मकरध्वज से संयुत अश्वमुख को संस्थित करना चाहिए।५०-५३। उसके दाहिने हाथ में पुष्पों का बाण और वाम हस्त में पुष्पमय धनुष होना चाहिए। उसके दक्षिण हस्त में भोजन के उपस्करों से समन्वित प्रीति होनी चाहिए। वाम पार्श्व में रति और सार सन्वित शयन–पट–पटह–खर जो काम से आतुर हो दिखाना चाहिए। उसके पार्श्व में जल की वापी और नन्दन वन दिखावे। इस प्रकार से भगवान कुसुमायुध को सुन्दर शोभा से समन्वित प्रदर्शित करना चाहिए। थोड़ा-सा तिरछा मुस्कराता हुआ मुख कल्पित करे। यह मैंने उद्देश्य से कुसुमायुध आदि समस्त देवों की प्रतिमाओं का लक्षण बतला दिया है। इन प्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की सामर्थ्य तो हे द्विजगण ! देवों के आचार्य बृहस्पति में भी नहीं है।५४-५७।

१२५–पीठिका लक्षण वर्णन

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
पीठोच्छ्राय यथवच्च भागान् षोडश कारयेत्।१
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगतीमता।

वृत्तोभागस्तथैकः स्याद्वृत: पटलभागत: ।२
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठ: कण्डपट्टस्त्रिभागत: ।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ।३
प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीयावदेवतु ।
निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै शेषपट्टिका ।४
वारिनिर्गमनार्थन्तु तत्र कार्य्यः प्रणालक: ।
पीडिकानान्तुसर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ।५
बिशेषान् देवताभेदान् शृणुध्वं द्विजसत्तमा: ! ।
स्थण्डिला वाथ वापि वा यक्षी वेदी च मण्डला ।६
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मावार्धशशिस्तथा ।
त्रिकोणादशमीतासांसंस्थानं वा निबोधत: ।७

महर्षि प्रवर श्री सूत जी ने कहा—अब मैं यथावत् आनुपूर्वी से पीठिका का लक्षण बतलाऊँगा । पीठिका की यथावत् ऊँचाई और इसके सोलह भागों को कराना चाहिए ।१। उनमें एक भाग भूमि में प्रविष्ट होवे और चार भागों के द्वारा यह जगतीतल माना गया है तथा एक भाग वृत्त होना चाहिए और वृत्त पटल ये समागत होंवे ।२। तीन भागों के द्वारा कण्ठ तीन भाग से कण्ठ पट्ट—दो भागों से ऊर्ध्व यह और शेष भाग से पट्टिका करे ।३। जितनी भी जगती है उसमें एक-भाग प्रविष्ट है । फिर उसका जितना निर्गम है वह शेष पट्टिका है ।४। जल के निर्गमन के लिये वहाँ पर प्रणालक करना आवश्यक है । समस्त पीठिकाओं का यह सामान्य लक्षण है ।५। हे द्विजश्रेष्ठगण ! अब विशेष देवताओं के भेदों का श्रवण करलो । स्थण्डिला-वापी-यक्षी-वेदी-मण्डल—पूर्ण चन्द्रा-वज्रा-पद्मा-अर्ध शशि-त्रिकोणा—दशमी है । अब उनके संस्थान को समझ लेना चाहिये ।६-७।

स्थण्डिला चतुरस्रातु वर्जिता मेखलादिभि: ।
वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षीचैवं त्रिमेखला ।८

चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् ।
मण्डलावर्तुलायातु मेखलाभिर्मणप्रिया ।९
रक्ता द्विमेखलामध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् ।
मेखलात्रसंयुक्ता षडश्रावज्रिका भवेत् ।१०
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रस्वा तु मूलतः ।
तथैव धनुषाकारा सार्द्धचन्द्रा प्रशस्यते ।११
त्रिशूलसदृशी तद्वत् त्रिकोणा ह्यूर्द्ध्वतो मता ।
प्रागुदक्प्रवणा तद्वतप्रशस्तालक्षणान्विता ।१२
परिवेषत्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत् ।
विस्तारं तत्प्रमाणञ्च मूले चाग्रे ततोर्द्ध्वतः ।१३
जलमानश्च कर्त्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः ।
लिङ्गस्यार्द्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिवा ।१४
मेखला तत्त्रिभागेन खातञ्चैव प्रमाणतः ।
अथवा पादहीनन्तु शोभनं कारयेत्सदा ।१५

स्थण्डिला चौकोर होती है और वह मेखला आदि से रहित ही हुआ करती है। वापी की दो मेखलाएँ होती हैं तथा यक्षी की तीन मेखलाएँ बताई गयी हैं। वेदी चतुरस्रायता होती है और वह लिङ्गों से योजित नहीं करनी चाहिये। मण्डला जो होती है वह वर्त्तुला होती है मेखलाओं से मणप्रिया है।८-९। जो दो मेखलाओं के मध्य में रक्ता है वह ही पूर्ण चन्द्रा होती है। तीन मेखलाओं से संयुक्त छैः कोणों वाली वज्रिका होती है। षोडश अस्त्रों वाली पद्मा कही जाती है। जो मूल से कुछ ह्रस्व होती है तथा धनुष के आकार वाली है वह सार्ध चन्द्रा प्रशस्त कही जाती है। उसी तरह से त्रिशूल के सदृश त्रिकोणा ऊर्ध्व भाग से मानी गयी है। उसी भाँति से प्राक् और उदक् की ओर जो प्रवणा होती है वह लक्षों से अन्वित प्रशस्त कही जाती है। वहाँ पर परिवेष निर्गम तीन भागों से कराना चाहिए। विस्तार और उसका

प्रमाण मूल में—अग्रभाग में और ऊर्ध्व में होता है।१०-१३। जल का मान तीन भाग से परम शोभन करना चाहिए। लिङ्ग के अर्द्ध विभाग से स्थूलता से समधिष्ठित उनके तीन भाग से और उसकी खुदाई के प्रमाण से अथवा सदा एक पाद से हीन शोभा से युक्त मेखला करानी चाहिए।१४-१५।

उत्तरस्थं प्रणालञ्च प्रमाणादधिकारते।
स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यञ्च पुष्कलम्।१६
गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी समत्प्रदाभवेत्।
मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका।१७
आयुः प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्।
पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणशत्रुनाशिनी।१८
देवस्य यजनार्थन्तु पीठिकादश कीर्तिताः।
शैले शैलमयींदद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा।१९
दारुजे दारुजां कुर्यात् मिश्रे मिश्रांतथैवच।
नान्ययोनिस्तुकर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः।२०
अर्च्चायामासमन्दंर्घ्यं लिङ्गायामसन्तथा।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत्॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम्।२१

उत्तर की ओर स्थित प्रणाल प्रमाण से अधिक करना आवश्यक होना चाहिए। स्थण्डिलामें आरोग्य धनतथा धान्यपुष्कल होता है।१६। यक्षी गौओं के प्रदान कराने वाली हुआ करती है और वेदी सम्पत्ति के देने वाली होती है। मण्डला में कीर्ति का विस्तार होता है तथा पूर्ण चन्द्रिका वरदान का प्रदान कराने वाली हुआ करती है।१७। वज्रा नाम वाली का फल आयु की वृद्धि होता है और पद्मा परम सौभाग्य के प्रदान करने वाली हुआ करती है। जो अर्द्ध चन्द्रा है वह पुत्र देने वाली हुआ करती है और त्रिकोण से युक्त का फल शत्रुओं का विनाश करना

होता है।१८। इस प्रकार से देवों के यजन करने के लिए पीठिका दश तरह की कीर्त्तित की गयी है। शैल में शैलमयी ही पीठिका देनी चाहिये और पार्थिव में पार्थिवी देवे। जो दारु (काष्ठ) से जात हो वहाँ पर दारुजा करे तथा मिश्रित होवे तो पीठिका भी मिश्रा ही करनी चाहिए। जो शुभ फल की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनको चाहिए कि पीठिका अन्य योनि की कभी भी न करें और जैसी होवे वैसा ही सदा पीठिका की रचना करावें।१९-२०। अर्चा में असम दैर्घ्य तथा लिंगा में असम करे। जिस देव की जो पत्नी होवे उसको पीठ पर परिकल्पित करना ही चाहिए। यह सब संक्षेप से हमने पीठिका का लक्षण बतला दिया है।२१।

—×—

१२६—लिंग लक्षण वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम्।
सुस्निग्धञ्च सुवर्णश्च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः।१
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते।
लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम्।२
चतुरस्रे समे गर्त्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्।
वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्च्चा वा लिङ्गमेव च।३
प्रागुत्तरेण लीनन्तु दक्षिणा पर्याश्रितम्।
पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत्।४
पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम्।
द्वारं विभज्य पूर्वन्तु एकविंशतिभागिकम्।५
ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत्।
तस्यार्द्धन्तु त्रिधाकृत्वा भागञ्चोत्तरतस्त्यजेत्।६
एवं दक्षितस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत्।
भागार्द्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यन्तदिह शस्यते।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब इसके अनन्तर मैं लिंग का उत्तम लक्षण बतलाता हूँ। विचक्षण पुरुष को सुस्निग्ध और सुवर्ण लिंग करना चाहिए।१। प्रासाद के प्रमाण से ही लिंग के मान का विधान किया जाता है अथवा लिंग के मान से ही प्रासाद शुभ लक्षण से युक्त माना जाया करता है।२। चतुरस्र (चौकोर) समगर्त्त में ब्रह्मसूत्र का निपात करना चाहिए। ब्रह्मसूत्र के वाम भाग से अर्च्चा अथवा लिंग होती है।३। पूर्व और उत्तर में लीन दक्षिणा परयाश्रित पुर के अमर द्वार माहेन्द्र दक्षिणोत्तर द्वार का विभाजन करके पूर्व को एक-विंशति भागित करे। फिर मध्यगत का वान प्राप्त करके ब्रह्म सूत्र को प्रकल्पित करना चाहिए। भाग के अर्ध से जो लिंग हो वह ही यहाँ पर करना चाहिए और यही प्रशस्त कहा जाता है।५-६-७।

पञ्च भागभविक्तं वा त्रिभागे जैष्ठ्यमुच्यते।
भाजिते नवधागर्भे माध्यमं पाञ्चभागिकम्।८
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम्।९
ज्येष्ठमद्र्धंकनीयोऽर्धं तथामध्येन मध्यमम्।
एवंगर्भे समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्।१०
ज्येष्ठन्तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमन्त्रिविधन्तथा।
कन्यसं त्रिविधं तद्वत् लिंगभेदा नवैव तु।११
नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः।
भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भञ्चतुरस्रकम्।१२
अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिंगस्य वै ध्रुवम्।
विकीर्णे चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः।१३
अष्टास्रं कारयेत्तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु।
षोडशास्रीकृतं पश्चाद्वतुलं कारयेत्ततः।१४

पाँच भाग में विभक्त में अथवा त्रिभाग में जैष्ठ्य कहा जाता है। गर्भ में नौ प्रकारसे भाजित करने पर पाञ्च भागिक माध्यम होता है। एक ही में नौ प्रकार से गर्भ में लिंगों को कराना चाहिये। सम सूत्र का विभाजन करके इसके अनन्तर नौ प्रकार से गर्भ भाजित करे ।८-९। अर्ध ज्येष्ठ—अर्ध कनीय तथा मध्यम होता है। इस प्रकार से गर्भ का समाख्यान किया गया है। तीन भागों से विभाजन करना चाहिए। लिंग के भेद नौ हुआ करते हैं—तीन प्रकार का ज्येष्ठ जानना चाहिए इसी तरह से मध्यम भी तीन प्रकार का है और तद्वत् कन्यस तीन तरह का होता है। लिंग के नौ प्रकार भेद हुआ करते हैं ।१०-११। नाभि के अर्ध भाग को अष्ट भाग से विभाजित करके इसके अनन्तर बुध पुरुषों को चाहिए कि ससे तीन भागों का परित्याग कर देवें। यह चतुरस्रक विष्कम्भ होता है। आठ अस्र वाला मध्यम जानना चाहिये जो कि लिंग का निश्चित भाग होता है। यदि विकीर्ण हो तो उससे ग्रहण करके बुध पुरुष को कोणों से लांछित करना चाहिए ।१२-१३। अष्टास्र करना चाहिये। उसी भाँति ऊर्ध्व को करावें। पीछे षोडसा स्रीकृत को वर्त्तुल कराना चाहिये ।१४।

आयाम, तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम्।
माहेश्वरं त्रिभागन्तु ऊद्ध्वंवृत्तं त्ववस्थितम् ।१५
अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रो विधीयते।
अष्टास्रोवैष्णवोभागो मध्यस्तस्य उदाहृतः ।१६
एवं प्रमाणसंयुक्तः लिंगवृद्धिप्रदम्भवेत्।
तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ।१७
गभमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत्।
चतुर्धा तद्विभज्याथ विष्कुम्भन्तु प्रकल्पयेत् ।१८
देवतायतने सूत्रं भागत्रयविकल्पतम्।
अधस्ताच्चतुरस्रन्तु अष्टास्रं मध्यभागतः ।१९

पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते ।
आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ।२०
चतुरस्रार्द्धं परित्यज्य अष्टास्य तु यद्भवेत् ।
तस्याप्यर्द्धं परित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत् ।२१

उस देव के आयाम नाभि में कुण्डली कृत है । माहेश्वर तीन भाग उर्द्धवृत अवस्थित है ।१५। नीचे की ओर ब्रह्मभाग चतुरस्र (चौकोर) विहित किया जाता है । अष्टास्र वैष्णव भाग उदाहृत कर दिया गया है । इस प्रकार से प्रमाण स संयुक्त लिंग वृद्धि का प्रदान करने वाला होता है । उसी तरह से और भी गर्भगान प्रमाण से बतलाऊँगा ।१६-१७। गर्भमान के प्रमाण से जो लिंग उचित होवे उसको चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ को प्रकल्पित करे ।१८। देवता के आयतन में सूत्र को तीनों भागों में विशेष रूप से कल्पित करे । नीचे की ओर चतुरस्र—मध्य भाग से अष्टास्र इससे आधा पूज्य भाग है तथा वह नाभिभाग कहा जाया करता है । आयाम में नाह के चतुरस्रक में आयाम में जो सूत्र होता है उस चतुरस्रार्थ का परित्याग कर देवे और अष्टास्र होता है उसके भी अर्धभाग का परित्याग करके इसके पश्चात् फिर वृत्त को कराना चाहिए ।१६-२१।

शिरः प्रदक्षिणं तस्य सक्षिप्त मूलतो न्यसेत् ।
ज्येष्ठापूज्यं भवेल्लिंगमधस्ताद्विपुलञ्च यत् ।२२
शिरसा च सदानिम्नंमनोज्ञंलक्षणान्वितम् ।
सौम्यन्तु दृश्यते लिंगन्तद्वैवृद्धिप्रदं भवेत् ।२३
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणे सर्वतः समम् ।
एवम्विधन्तु यल्लिंग भवेत्तात्सार्वकामिकम् ।२४
अन्यथा यद्भवेल्लिंग तदसत्संप्रचक्षते ।
एवंरत्नमयंकुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा ।२५
शुभं दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ।२६

उसका संक्षिप्त प्रदक्षिण शिर मूल से न्यास करना चाहिए। जो नीचे की ओर विपुल है वह ज्येष्ठ पूज्य लिंग होना चाहिए ।२२। सदा शिर से निम्न एवं मनोज्ञ लक्षणान्वित होता है। जो सौम्य लिंग दिखलाई देता है वह निश्चित रूप से वृद्धि के प्रदान करने वाला होता है। इसके अनन्तर मूल में—मध्य में और प्रमाण में सभी ओर से सम है। इस प्रकार का लिंग है वह सार्वकारिक होता है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार का जो लिंग होता है वह असत् ही कहा जाता है। इस रीति से इसको रत्नों से परिपूर्ण—स्फटिक मणि के द्वारा रचित तथा पार्थिव करना चाहिये अथवा मन का रुचिकर हो तो दारुमय भी परम शुभ होता है ।२३-२६।

—×—

१२७—देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
वद सूत ! यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः ।१
अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम् ।२
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघेवासर्वदेवानां प्रतिष्ठाशुभदा भवेत् ।३
प्राप्य पक्षं शुभंशुक्लमतीते दक्षिणायने ।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ।४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी ।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृत्वा बहुफला लभेत् ।५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च ।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ।६

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरास्तथा ।
अनुराधा च स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ।७

ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ! अब इस सबके कथन के अनन्तर आप जो भी उचित हो पूर्ण रूप से इन समस्त देवों की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करिये ।१। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम प्रतिष्ठा की विधि के विषय में मैं वर्णन करता हूँ और कुण्ड—मण्डप तथा वेदियों का भी यथाक्रम प्रमाण बतलाऊँगा ।२। चैत्र में, फाल्गुन में, ज्येष्ठ में) अथवा माधव में या माघ मास में सब देवों की प्रतिष्ठा शुभ देने वाली होती है ।३। दक्षिणायन के समाप्त होने पर परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके पञ्चमी, द्वितीया, तृतीय, सप्तमी, दशमी, पौर्णमासी और त्रयोदशी ये तिथियाँ परम श्रेष्ठ होती हैं । इन तिथियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कराने पर वह बहुत अधिक फल का लाभ किया करता है । अब नक्षत्रों के विषय में बतलाया जाता है—दोनों आषाढ़ा-मूल, दोनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्व भाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि कार्यों में प्रशस्त माने जाया करते हैं ।४-७।

बुधोबृहस्पतिः शुक्रस्त्रयाऽप्येते शुभग्रहाः ।
एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ।८
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च ।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ।९
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते ।
लग्ने ऋक्षे प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ।१०
अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा ।
एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ।११
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा ।
मुहूर्तेस्थापनं कुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः ।१२

प्रासादस्योत्तरे वापि पूर्वे वा मण्डपो भवेत् ।
हस्तान् षोडशकुर्वीतदशद्वादश वा पुन: ।१३
मध्ये वेदिकया युक्त: परिक्षिप्त: समन्तत: ।
पञ्चसप्तापि चतुर: करान् कुर्वीत वेदिकाम् ।१४

बुध, वृहस्पति और शुक्र ये तीनों ग्रह परम शुभ होते हैं। इन ग्रहों के द्वारा देखी गई लग्न और नक्षत्र प्रशस्त कहे जाया करते हैं।८। ग्रह और ताराओं का बल प्राप्त करके तथा ग्रहों की पूजा करके एवं निमित्त और शकुन पाकर तथा अद्भुत आदि को वर्जित करके शुभ योग में-शुभ स्थान में क्रूर ग्रहों से विवर्जित लग्न में तथा नक्षत्र में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कर्म को करना चाहिए।९-१०। विषुव अयन में उसी भाँति षडशीति मुख में विधि के द्वारा इष्ट कर्म्म से इनमें ही स्थापना करनी चाहिए।११। प्रजापत्य में शयन तथा श्वेत में उत्थापन विचक्षण पुरुष को पुनर्ब्राह्म मुहूर्त्त में स्थापना करनी चाहिए।१२। प्रासाद के उत्तर भाग में अथवा पूर्व भाग में मण्डप होना चाहिए। वह भी दश हाथ या द्वादश हाथ अथवा सोलह हाथ का विस्तृत बनाना चाहिए।१३। मध्य में वेदी से युक्त तथा चारों ओर से परीक्षित होना चाहिये। वेदी भी पाँच सात और चार हाथ विस्तार वाली निर्मित करावे।१४।

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डप: स्याच्चतुर्मुख: ।
प्लक्षाद्वारंभवेत्पूर्वं याम्येचौदुम्बरं भवेत् ।१५
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे ।
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानिचोच्छ्रये ।१६
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम् ।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ।१७
कृत्वैव मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् ।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ।१८

चूतपल्लवसंच्छन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् ।
सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ।१६
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः ।
ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ।२०
ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
पताकाजलदाकारा मध्येस्यान्मडपस्य तु ।२१

मण्डप चार मुखों वाला चार तोरणों से युक्त होना चाहिए । पूर्व द्वार में प्लक्ष (पोखर) वृक्ष वाला होना चाहिए। दक्षिण द्वार में उदुम्बर का वृक्ष होना चाहिए । पश्चिम दिशामें जो द्वार हो वह अश्वत्थ (पीपल) से युक्त एवं घटित होना चाहिए तथा उत्तर दिशा में न्यग्रोध (वट) का वृक्ष होना चाहिए भूमि में एक हाथ प्रविष्ट और ऊँचाई में चार हाथ होना आवश्यक है। भूमि का भाग अच्छी तरह से उपलिप्त-श्लक्ष्ण एवं शोभन होना आवश्यक है। नाना प्रकार के वस्त्रों के द्वारा भूषित-पुष्प और पल्लवों से शोभित पहिले मण्डप की रचना कराकर फिर इस प्रकार से चारों द्वारों में विन्यास करना चाहिए अर्थात् व्रण से रहित-ज्वलत्काञ्चन अर्थात् देदीप्यमान सुवर्ण जिनके मध्य में प्रक्षिप्त किया गया हो ऐसे आठ कलशों को प्रत्येक द्वार पर दो-दो विन्यस्त करे ।१५-१६-१७-१८। आम्र के पल्लवों से संच्छन्न श्वेत दो वस्त्रों से समन्वित—सर्वौषधि एवं फलों से उपेत—चन्दन के जल से पूरित आठ कलशों को वहाँ पर निवेषित करके उनके मध्य में गन्ध-धूप और अर्चन आदि से संयुत करके मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि से उसे सुशोभित करना चाहिए ।१९-२०। समस्त दिशाओं में लोकपालों की ध्वजाओं को निवेशित करना चाहिए। मण्डप के मध्य भाग में जलद के आकार वाली पताकाएँ होनी चाहिए ।२१।

गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् ।
बलिञ्च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ।२२

उद्ध्वंन्तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुके: ।
संहितायान्ते ये मन्त्रा तद्वैवत्या: श्रुतौ स्मृता: ।२३
तैः पूजा लोकपालानां कर्मक्ष्या च समन्तता ।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा ।२४
अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम् ।
एवं सतोरणं कृत्वा शधिवासनमुत्तमम् ।२५
तस्याप्युत्तरत: कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम् ।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुन: ।२६
आनीय लिङ्गमर्च्चा वा शिल्पिन: पूजयेद् बुध: ।
वस्त्राभरण रत्नैश्च येऽपि तत्परिचारका: ।२७
क्षमध्वमिति तान् ब्रूयाद्यजन्मानोऽप्यत: परम् ।
देव प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योति: प्रकल्पयेत् ।२८

ऋतुक्रम से पने २ मन्त्रों के द्वारा गन्ध—धूप आदि सब करना चाहिए । अपने मन्त्रों से लोकपालों के लिये बलि विवेदित करे ।२२। ऊपर की ओर ब्रह्माजी को बलि समर्पित करे और नीचे की ओर शेष तथा वासुकि को बलि देनी चाहिए । जो मन्त्र संहिता मेंहैं वह वैवती की श्रुति कहे गये है ।२३। उनमें ही सभी ओर लोकपालों की पूजा करनी चाहिए । तीन रात्रि तक—एक रात्रि पञ्च रात्रि अथवा सप्त रात्रि पर्यन्त अधिवासन करना चाहिए । इस प्रकार से सतोरण उत्तम अधिवासन करके उसके भी उत्तर में उत्तम स्नान मण्डप की रचना करनी चाहिए । उनके अर्धभाग से—तीन भाग से अथवा चार भाग से लिङ्ग को लाकर अथवा अर्चा को लाकर बुध पुरुष को शिल्पी की पूजा करनी चाहिए । जो भी उनके परिचारक हों उनकी भी वस्त्र—आभरण और रत्नों से पूजा करे । उनके आगे देव के समक्ष में यजमान को 'क्षमा कीजिए'—ऐसा बोलना चाहिए और फिर देव को प्रस्तरण पर करके नेत्रों की ज्योति की परिकल्पना करे ।२४-२८।

अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासम: ।
सर्वतस्तु बलि दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसै: ।२९
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलुधूपितम् ।
विप्राणाञ्चार्चनं कुर्य्यांद्दद्याच्चशक्त्या च दक्षिणाम् ।३०
गां महीं कनकञ्चैव स्थापकाय निवेदयेत् ।
लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विज: ।३१
ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने ।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नम: ।३२
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्यपि स्मृत: ।
एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत् ।३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं संगीतकम् ।
वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ।३४
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहित: ।
त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षणं स्याद् विभाजकम् ।३५

अब मैं नेत्रों का और संक्षेप से लिंग का भी उद्धरण बतलाऊँगा । सभी ओर सिद्धार्थघृत और पायसों से बलि देनी चाहिए । शुक्ल वर्ण वाले पुष्पों से अलंकृत करके घृत और गूगल से धूपित करना चाहिये । फिर वहाँ पर जो भी विप्रगण हो उनका भी अभ्यर्चन करे तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये ।२९-३१। जो स्थापक हो उसको गौ—भूमि और सुवर्ण को निदित करे । द्विज को भक्ति की भावना से निम्न मन्त्र के द्वारा लक्षण करना चाहिये । 'ओंनम:' इत्यादि मन्त्र है जिस का अर्थ है परमात्मा हिरण्यरेता हे विष्णो ! आपके लिये नमस्कार है भगवान् शिव आपके लिये नमस्कार है ।' यह मन्त्र समस्त देवों की नेत्र ज्योति में भी कहा गया है । इस प्रकार से देव को आमंत्रित करके काञ्चन से विलेखन करना चाहिये । ।३१-३३। विद्वान् पुरुष का कर्तव्य है कि अमङ्गल का विनाश

करने वाले मङ्गल वाद्य—गीतों के सहित ब्रह्म घोष वृद्धि के लिए करने चाहिए ।३४। अब मैं सुसमाहित होकर लिङ्ग के लक्षण का उद्धरण कहूँगा पूज्या में तीन प्रकार से विभाग करके लक्षण विभाजक होता है ।३५।

लेखात्रयन्तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् ।
न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वस्त्रं छेदवर्जितम् ।३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् ।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथामध्यमके न्यसेत् ।३७
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः ।
लम्बयेत्सप्तरेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः ।३८
तावत् प्रलम्बयेद्विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् ।
भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमन्ततः ।३९
रेखयोः सङ्गमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् ।
एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ।४०

अष्ट यवों के अन्तर से संयुत तीन लेखायें करना चाहिए । न तो अति स्थूल हों और न अत्यन्त कृश ही हों और उसी भाँति ववत्र छेद वर्जित नहीं होना चाहिए ।३२। ज्येष्ठ लिंग का यव से प्रमाण से निम्न कराना चाहिए । इसके उपरान्त सूक्ष्म करने चाहिए और यथा मध्यमक में न्यास करे । बुध पुरुष को चाहिए फिर अष्ट भक्त करके भाग त्र य को त्याग देवे और दोनों पार्श्वों में सम सप्त रेखाओं को लम्बमान करे । विद्वान् को तब तक प्रलम्बित करना चाहिए जब तक चार भाग होवें । पाँच भाग ऊपर की ओर भ्रामित किये जाते हैं और अन्ततः संग, कराना चाहिए दोनों रेखाओं के संयम में उसी तरह से पृष्ठ में दो भाग होने चाहिए । इस प्रकार से मैंने संक्षेप से लक्षण को बतला दिया है ।३७-४०।

१२८–देवप्रतिष्ठा विधि वर्णन (२)

अत: परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् ।
स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजा: ! ।१
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारद: ।
पुराणवेत्ता तत्वज्ञो दम्भलोभविवर्जित: ।२
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृति: ।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिस्पृह: ।३
सम: शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रिय: ।
ऊहापोहार्थं तत्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्यपारग: ।४
आचार्य्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जित: ।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ।५
द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगा: ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपाव: प्रकीर्तिता ।६
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ।७

महर्षि प्रवर सूत जी ने कहा—इसमें आगे मैं मूर्त्तियों के लक्षण बतलाता हूँ । हे द्विजगण ! जो मूर्त्तियों की स्थापना करने वाले पुरुष हैं उनके लक्षणों को आप लोग श्रवण करें ।१। स्थापक के किन २ गुणों से सुसम्पन्न होना आवश्यक है—यह बतलाते हुए कहते हैं जो पुरुष देवों की प्रतिमा की स्थापना करता है वह अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों से संयुत होना चाहिए—वेदों के मन्त्रों का पण्डित पुराणों का ज्ञाता-तत्वों का जानकार-दम्भ, लोभ से रहित भी होना उसका आवश्यक है । सब के कथन का निचोड़ यही है कि उपर्युक्त गुणों से ही पुरुष मूर्ति स्थापक होने का पात्र ही नहीं होता है ।२। मूर्त्ति स्थापक कृष्णसारों से परिपूर्ण देशों में समुत्पन्न हो और शुभ आकृति वाला होना चाहिए । वह

शौच के आचार में परायण तथा नित्य ही पाषण्ड के कुल में स्पृहा न रखने वाला भी होना आवश्यक है ।३। देवमूर्ति का स्थापक पुरुष शत्रु और मित्र दोनों में समान व्यवहार रखने वाला होवे—ब्रह्मा—विष्णु और शिव का प्रिय हो—ऊहा और अपोह के तत्वों का ज्ञाता तथा वास्तु शास्त्र का पारगामी विद्वान होना चाहिए ।४। स्थापना कराने वाला आचार्य्य नित्य ही सभी दोषों से विशेष रूप में रहित होना चाहिए। जो भी द्विजगण मूर्त्तिप हों वे सभी अच्छे शुद्ध कुलों में समुत्पन्न और सरल स्वभाव एवं व्यवहार वाले होवे ।५। बत्तीस-सोलह-आठ ऐसी ही संख्या उन द्विजों को होनी चाहिए जो देव प्रतिमा की स्थापना के कर्म कराने में सम्मिलित हों तथा ये सभी श्रुति के पारगामी पण्डित भी होने चाहिए। ये ज्येष्ठ-मध्यम और कनिष्ठ-इन तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ करते हैं जो भी मूर्त्तिप कहे गये हैं ।६। इसके अनन्तर वे सब लिङ्ग अथवा अर्चा को लेकर स्नपन मण्डप में प्राप्त होकर वहां गीत मंगल की ध्वनियों से स्नपन करावें ।७।

पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा ।
शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ।८
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः ।
यासां राजेतिमन्त्रस्तु आपोहिष्ठेति चापरः ।९
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः ।
प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रेत्युदाहृतम् ।१०
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! ।
अमूरजेति च तथारथे तिष्ठेति चापरः ।११
रथे ब्रह्मरथेवापि धृतां शिल्पिगणेक तु ।
आरोप्य च ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत् ।१२
ततः प्रास्तीर्य्यं शय्यायां स्वापये जनकैर्बुधः ।
कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत् प्राङ्मुखं ततः ।१३

ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् ।
शिरोभागेतु देवस्य जपन्नेव निधापयेत् ।१४

वहाँ पर प्राप्त होकर उन सबका कर्तव्य होता है कि वे सब पञ्च गव्य (गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गोघृत, गोदधि) कषाय के द्वारा—मृत्तिकाओं से अथवा भस्म एवं उदक से चारों निम्न निर्दिष्ट वेद के मन्त्रों के द्वारा शौच सर्व प्रथम करावें। वे चारों मन्त्रों की प्रतीक ये हैं—'समुद्र ज्येष्ठ' मन्त्र—दूसरा 'आपोदिव्य'—मन्त्र—तृतीय 'यासां राजा'—मन्त्र और चतुर्थ 'अयोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्र होते हैं ।८-९। इस विधि से देव प्रतिमा का स्नपन कराकर गन्धानुलेपन आदि से पूजा करें और फिर दोनों वस्त्रों से प्रच्छादन करें एवं 'अभिवस्त्र'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।१०। इसके अनन्तर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव का उत्थापन कराना चाहिए ।फिर 'अमूरज'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा और 'रथे तिष्ठ'—इत्यादि मन्त्र से रथ में अथवा ब्रह्मरथ में जो कि शिल्पिगण के द्वारा वहाँ पर निर्मित कर प्रस्तुत किया गया है उसमें समारोपित कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उसमें प्रतिमा का प्रवेश करावें ।११-१३। इसके पश्चात् शय्या में प्रास्तरण करके बुध पुरुष को चाहिए कि धीरे से देव प्रतिमा को वहाँ पर स्थापित करें। कुशाओं का आस्तरण करके प्राङ्मुख होकर फिर पुष्पों की स्थापना करनी चाहिए ।१३। इसके उपरान्त वस्त्र और सुवर्ण से समन्वित निद्रा कलश को निम्न निर्दिष्ट मन्त्र का जाप करते हुए देव प्रतिमा के शिरो भाग में निधापित करना चाहिये ।१४।

आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च ।
ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रोपधानकम् ।१५
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षण: ।
मधुनासर्पिषाभ्यज्य पूज्यसिध्यार्थकस्तत: ।१६

आप्यास्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च ।
उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ।१७
सितप्रतिसरं दद्यात् बार्हस्पत्येति मन्त्रतः ।
दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापिवा ।१८
आच्छाद्य देवं सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम् ।
पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानपुष्पसंयुतम् ।१९
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च ।
भोजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च ।२०
अभित्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो यसे ।
क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वत् भक्ष्यभोज्यान्व (न्न) पायसैः ।२१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात् पारपूजयेत् ।
बलि दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ।२२

"आपो देवी"—इत्यादि मन्त्र से तथा "आपोऽस्मान् मातरोऽपिच"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दुकूल पट्टों से समाच्छन करके देव प्रतिमा के शिरोभाग में नेत्रोपधानक अथवा कौशेय देना चाहिए—यह विचक्षण पुरुष का परम कर्त्तव्य है। फिर इसके उपरान्त में मधु और सर्पि से (घृत से) अभ्यजन करके सिद्धार्थकों के द्वारा पूजा करे। आप्यास्व' इत्यादि मन्त्र से 'यातेरुद्रशिव' इत्यादि मन्त्र के द्वारा वहाँ पर उपविष्ट होकर सब ओर से गन्धाक्षत पुष्पों से देव का अभ्यर्चन करना चाहिए।१५-१७। 'बार्हस्पत्य'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव को सित प्रतिसर समर्पित करना चाहिए। दुकूल पट्टों के द्वारा अथवा अनेक प्रकार के कपास के सूती वस्त्रों से सर्वत्र देव प्रतिमा का भली भाँति समाच्छादन करे और वहाँ हर पार्श्व भाग में छत्र—चामर और दर्पण स्थापित करना चाहिए। वहाँ पर पुष्पों से संयुक्त एक वितान निर्मित करावे। रत्न—औषधियाँ-गृह के अन्य समस्त उपकरण-भोजन—विचित्र शयन—आसन शूर मन्त्र के द्वारा अभित करके अपने वैभव के

अनुसार इन सभी का न्यास करना चाहिये क्षीर, क्षौद्र, घृत भक्ष्य भोज्य, अन्न, पायस, छै प्रकार के रस इन सबसे सभी ओर से देव प्रतिमा का पूजन करना चाहिये। फिर निम्न निर्दिष्ट मन्त्र के द्वारा अच्छी तरह से प्रयत्न पूर्वक बलि देना चाहिए।१८-२२।

त्र्यम्बकं यजामहे इति सर्वतः शनकैर्भुवि ।
मूर्तिपामूस्थापयेत्पश्चात्सर्नेदिक्षुविक्षणः ।२३
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् ।
श्रीसूक्तं पावमानश्च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ।२४
तथाच शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्त तथैव च ।
रक्षोघ्नञ्च तथा सूक्तं पूर्वतोबह्वृचोजपेत् ।२५
रौद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं सशुक्रितम् ।
तथैव मालाध्यायमध्यायमध्वर्यु र्दक्षिणेजपेत् ।२६
वामदेव बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् ।
तथा पुरुषसूक्तञ्च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ।२७
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दश्च पश्चिमे जपेत् ।
अथर्वोऽङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ।२८

'त्र्यम्बकं यजामहे'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा सब ओर धीरे से भूमि पर मूर्तियों को स्थापित करे। उसके पश्चात् विचक्षण पुरुष को सभी दिशाओं में द्वारों में चार द्वारपालों को विनिवेक्षित करना चाहिए। इसके अनन्तर श्रीसूक्त, पावमान सोम सूक्त, सुमंगल, शान्तिका ध्याय, इन्द्र सूक्त, रक्षोघ्न सूक्त और पहिले बह्वृचो का जाप करना चाहिए। रौद्र, पुरुष सूक्त श्लोकाध्याय, संशुक्रित, माला को ध्याय इनका जाप अध्वर्यु दक्षिण दिशा में करना चाहिए।२३-२६। छन्दों के ज्ञाता को वामदेव, बृहत्साम, ज्येष्ठ साम, रथन्तर, पुरुष सूक्त, रुद्र सूक्त शान्तिक, भारुण्ड नाम ऋचाऐं—उन सबका जाप पश्चिम दिशा में करना चाहिए। जो अथर्व वेद का ज्ञाता ऋत्विज है उसको अ ंगिरस, नील, रौद्र का जाप करना चाहिए।२७-२८।

तथा पराजितां देवीं सप्तसूक्तं सौद्रकम् ।
तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ।२९
शिर: स्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।
शान्तिकै: पौष्टिकैस्तद्वन् मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकै: ।३०
पलाशोदुम्बराश्वत्थ अपामार्ग: शमी तथा ।
हुत्वा सहस्रमेककैक देवं पादे तु संस्पृशेत् ।३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्तत: ।
नाभिमध्यं तथावक्ष: शिरश्चाप्यालभेत् पुन: ।३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपा: सर्वतोदिशम् ।
समेखलेषुते कुर्यु र्योनिववक्त्रं तु चादरात् ।३३
वितस्तिमात्रायानि: स्यद्गजोष्ठसदृशी तथा ।
आयताच्छिद्रसंयुक्ता पार्श्वत: कलयोच्छ्रिता ।३४
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला ।
विस्तारेणोच्छ्रयातद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ।३५

अथर्वा मगीषी को पराजित देवी—सप्त सूक्त, रौद्रक और शांतिका ध्याय पाठ तथा जाप उत्तर दिशा में करना चाहिए ।२९। देव प्रतिमा के शिर के भाग की ओर स्थापक को होम का समाचरण करना चाहिए और वह होम शान्तिक पौष्टिक व्याहृतियों से युक्त मन्त्रों के द्वारा उसी भाँति करे ।३०। पलाश—(ढाक) उदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—अपमार्ग (ओंघा)—शमी (छौंकर) इनकी समिधाओं से एक-एक सहस्र आहुतियाँ देकर देव के चरण में स्पर्श करे ।३१। एक—एक सहस्र आहुतियों से होम करके फिर नाभि के मध्य भाग का वक्ष:स्थल का और शिरका आलभन करना चाहिये ।३२। सब दिशाओं में एक साथ के विस्तारवाले कुण्डोंमें जोकि मेखलाओंसे युक्तहोने चाहिए और योनिवक्त्र वाले हों उनमें बड़े ही आदर के साथ उन मूर्तिपाओं को करना चाहिए । ।३३। उनको योनि एक वितस्ति (बालिश्त) भर विस्तार वाली गज के

ओष्ठ के तुल्य होनी चाहिए। वह आयत—छिद्र संयुक्त–पार्श्व भाग में कला से उच्छ्रित कला के अनुसार कुण्ड से सब ओर चार अंगुल वाली विस्तार उच्छ्रय-चतुरस्र और सम होनी चाहिये।२४-३५।

वेदीभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलैः।
एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणञ्चैव दृश्यते।३६
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तयो लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा।३७
तथा मूर्त्येधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः।
वसुधा वसुरेता च यजमानो दिवाकरः।३८
जलं वायुस्तथासोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मतयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत्।३९
एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
पृथ्वीं पाति शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च।४०
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवोजलं सदा पाति वायुमीशान एव च।४१
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येत एव च।४२

तेरह अंगुलों से वेदी की भित्ति का परित्याग करके इस प्रकार से नौ कुण्डों में लक्षण दिखलाई देता है।३६। उत्तर की ओर मुख करने वालों को आग्नेय-शाक और यामा दिशाओं में हवन करना चाहिये तथा क्रम से लोकपालों के लिए एवं मूर्तियों के लिए शान्ति करे तथा मूर्त्ति के अधिदेवों का होम परम सावधान होकर करे। देव की आठ मूर्त्तियों का नामोल्लेख किया जाता है। वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम, और आठवाँ आकाश बताया गया है। ये देव की आठ मूर्त्तियाँ होती हैं उनको कुण्डों में संस्मृत करना चाहिये।३७-३९। अब इनके पवित्र अधिदेवों को बतलाता हूँ। उनके नाम और मूर्ति दोनों ही बतलाते हैं। शर्व पृथिवी की रक्षा करते हैं—पशुप अग्नि का रक्षण

करता है। उग्र यजमान की रक्षा करता है—रुद्र आदित्य का भव जल का और ईशान वायु का संरक्षण किया करता है।४०-४१। महा देव चन्द्र का रक्षक है तो भीम आकाश की रक्षा किया करता है। सब देवों की प्रतिष्ठाओं में ये ही मूर्त्तिप हुआ करते हैं।४२।

एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत् ।
तथा शान्तिघटं कुर्य्यात् प्रतिकुण्डेषु सन्न्यसेत् ।४३
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते ।
समपादः पृथिव्यान्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ।४४
आहुतीनान्तु सम्पातं पूणकुम्भेषु वै न्यसेत् ।
मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ।४५
स्थितश्च स्नापयेत्तेन सम्पाताहुतिवारिणा ।
प्रतियामेषु धूपन्तु नैवेद्यञ्चन्दनोदकम् ।४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनःपुनः ।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ।४७
सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
विचित्रै र्हेमकटकै र्हेमसूत्रांगुलीयकैः ।४८

इनके लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा यथास्व अर्थात् अपने वैभव के और वित्त के अनुसार होम करने का समाचरण करना चाहिये। प्रत्येक कुण्ड में शान्ति घट करे और वहाँ पर उसका न्यास भली-भाँति करना चाहिए।४३। एक सौ आहुतियों के अवसान में या एक सहस्र आहुतियाँ समाप्त होने पर अन्त में सम्पूर्णाहुति देना अभीप्सित होता है। प्रशान्त आत्मा वाले को समपाद होते हुए विशेष रूप से निक्षेप करना चाहिए। ।४४। आहुतियों का जो सम्पात है उसको पूर्ण कुम्भों में न्यास करे जो कि मूल-मध्यम और उत्तमाङ्ग होते हैं। उससे देवका अवसेचन करना चाहिए। उस सम्पाताहुतियों के जल से स्थित होते हुए स्नापन कराना चाहिये। प्रत्येक यामों में धूप-नैवेद्य-चन्दनोदक समर्पित करे। ऐसा पुनः

पुनः करे तथा बारम्बार होम करना चाहिये। यजमान के द्वारा पुनः दक्षिणा भी देना परमावश्यक होता है। सभी ओर से श्वेत वस्त्रों में उनकी सबकी पूजा करनी चाहिये। अपनी आर्थिक शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार उनको विचित्र सुवर्ण के कटक—हेम सूत्र तथा सुवर्ण की अंगुलीयक समर्पित करके उन्हें पहिनावें।४५-४८।

वासोभिः शयनीयैश्च परिधाप्याः स्वशक्तितः।
भोजनञ्चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम्।४९
बलिस्त्रिसन्ध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतो दिशम्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांश्तु कामतः।५०
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः।
सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्म यावता।५१
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापिवा।
सप्तरात्रमथोकुर्य्यात् क्वचित्सद्योऽधिवासनम्।
सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा।५२

उन सबका सत्कार वस्त्रों के—शयनीयों के द्वारा अच्छी रीति से करना चाहिये और ये सबको परिधान करावें। जब तक इनका वहाँ पर अधिवासन होवे तब तक सबको भोजन भी देना चाहिए।४९। सभी दिशाओं में भूतों के लिये बलि भी तीनों सन्ध्यानों के समय में देनी चाहिये। सबसे पूर्व ब्राह्मणों को भोजन करावे और इसके उपरान्त शेष सभी वर्णों को इच्छा पूर्वक भोजन देवे।५०। नृत्य-गीत और अन्य मङ्गलों के द्वारा रात्रि के समय में महान् उत्सव करना चाहिये। जब तक यह चतुर्थी कर्म्म रहे सदा प्रयत्न पूर्वक सबकी पूजा करे। त्रिरात्र-एक रात्र-पञ्च रात्र अथवा सप्त रात्र पर्यन्त करे। कहीं पर तुरन्त ही अधिवासन कर देवे। क्योंकि अधिवास का उत्सव सदा ही समस्त यज्ञों के फल वाला हुआ करता है।५१-५२।

१२६—कलियुगीन भावी राजा

शिशुकोध्र: सजातीय: प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ।१
त्रयोविंशत् समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ।२
श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ।
पूर्णोत्संगस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ।३
पञ्चाशतं समा: षट्च शान्तकर्णिर्भविष्यति ।
दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदर: सुत: ।४
आपीतकोदशाष्टेच तस्य पुत्रो भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति ।५
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु ।
स्कन्दचातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ।६
मृगेन्द्रस्वातिकर्णस्तु भविष्यति समास्त्रय: ।
कुन्तल: स्वातिकर्णस्तु भविताष्टौसमानप: ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—शिशुकोध्र इस वसुन्धरा को प्राप्त कर लेगा । वह शिशुक तेईस वर्ष पर्यन्त राजा रहेगा ।१२। फिर उसका पुत्र श्री मल्ल कर्णिदश वर्ष राजा होगा । इसके पश्चात् अट्ठारह वर्ष तक पूर्णोत्संग इस भूमि पर शासन करेगा ।३। पञ्चाशत और छै वर्ष तक शान्तकर्णि राजा होगा । उसका पुत्र लम्बोदार अठारह वर्ष तक राजा होगा । फिर आपीतक उसका पुत्र दश और दो वर्ष तक राजा होगा । अठारह वर्ष तक मेघस्वाति राजा इस मही मण्डल पर राज्य करेगा । इसके अनन्तर अष्टादश वर्ष तक स्वाति इस मही का राजा होगा फिर सात वर्ष पर्यन्त स्कन्दर चाति राजा होगा । तीन वर्ष तक महेन्द्र स्वाति कर्ण इस वसुन्धरा पर राज्य करेगा । कुन्तल और स्वाति कर्ण आठ वर्ष तक इस पृथ्वी पर नृप होगा ।४-७।

एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ।८
भविता रिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशति: ।

ततः संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति ।९
पञ्चमन्दुलकोराजा भविष्यतिसमा नृप ।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्यो भविष्यति ।१०
सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति ।
चकोरः स्वातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ।११
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति ।
राजा च गौतमो पुत्रो ह्येकविंशत्यतोनृपः ।१२
अष्टाविंशतिसुतस्तस्य सुलोमवैभविष्यति ।
शिवश्रोर्त्रे सुलोमत्तु सप्त व भवितानृपः ।१३
शिवस्कन्धशान्तिकर्णाविभविता ह्यात्मजः समाः ।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञश्रीः शान्तिकर्णिकः ।१४

एक वर्ष तक स्वातिवर्ण इस पृथ्वी का राजा होगा ।८। पच्चीस वर्ष तक रिक्तवर्ण शासन करेगा । फिर इसके पश्चात् पाँच वर्ष तक हाल राजा होगा । हे नृप ! फिर पञ्च मन्दुलक राजा होगा—पुरीन्द्र-सेन और इससे सौम्य नृपति होगा । सुन्दर शान्तिकर्ण एक वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा का राजा होगा । चकोर स्वातिकर्ण छै मास तक नृप होगा ।९-११। अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त शिव स्वाति इस मही मण्डल का नृपति बनेगा । गौतमी का पुत्र राजा इक्कीस वर्ष तक रहेगा । उनका पुत्र सुलोमा अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त राजा होगा । उस सुलोम से समुत्पन्न शिव श्री सात वर्ष पर्यन्त नृप रहेगा । शान्तिकर्ण से शिव स्कन्ध आत्मज होगा । उन्नीस वर्ष तक यज्ञ, श्री, शान्तिकर्णिक राजा होंगे ।१२-१४।

षडेव भवितास्यद्विजयस्तु समास्ततः ।
चण्डश्री शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समादश ।१५
सुलामा सप्तवर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ।
एकोनविंशतिह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।१६
तेषां वर्ष शतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च ।

आन्ध्राणां संस्थितता राज्येतेषांभृत्यान्वयेनृपाः ।१७
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ।
सप्तगदभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ।१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश ।
त्रयोदश गु (नु) रुंडाश्च हूणाह्येकोनविंशतिः ।१९
यवनाष्टौभविष्यन्तिसप्तशीतिर्महीमिमाम् ।
सप्तगर्दभिलाभूयोभोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ।२०
सप्तवर्षसहस्त्राणि तुषाराणां मही स्मृता ।
शतानि त्रीण्यशीतिञ्च शतान्यष्टादशैव तु ।२१

हे द्विज ! इसके पश्चात् केवल छै वर्ष ही विजय इसका राजा हुआ था। चण्डश्री और शान्तिकर्ण उसका पुत्र दश वर्ष तक शासक रहा था। सुलोमा सप्त वर्ष तक होना फिर उनका अन्त होना इस तरह से ये इक्कीस आन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ।१५-१६। उनके शासन का काल एक सौ वर्ष और चौसठ होगा आन्ध्रों के राज्य में उनके भृत्यों के वश में नृप संस्थित होंगे। सात ही आन्ध्र तथा दश आभीर नृप होंगे। सात गर्दभिल भी होंगे तथा अट्ठारह शक होंगे। आठ यवन राजा होंगे और चौदह तुषार नृपति होंगे। तेरह गुरुंड राजा होंगे तथा उन्नीस हूण राजा इस मही का शासन करेंगे। इस मही को सत्तासी वर्ष तक आठ यवन भोगेंगे तथा सात गर्दभिल फिर इस वसुन्धरा का उपभोग करेंगे। यह मही सात हजार वर्ष तक तुषारों की बतलाई गई है। तीन सौ अस्सी और अट्ठारह सौ वर्ष तक का समय बताया गया है ।१७-२१।

शतान्यर्द्धञ्चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गु (मु) रुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ।२२
शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु ।
आन्ध्राः श्रीपार्व्वतीयाश्चतेद्विपञ्चाशतसमाः ।२३
सप्तषष्टिस्तुवर्षाणि दशाभीरास्तथैव च ।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिला नृपाः ।२४

भविष्यन्तीह यवना धर्मत: कामतोऽर्थत: ।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्य्याम्लेच्छाश्च सर्वश: ।२५
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजा: ।
लुब्धानृतब्रुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ।२६
कल्किन निहता: सर्वे आर्य्याम्लेच्छाश्चसर्वत: ।
अधार्मिकाश्चयेऽत्यर्थ पाषण्डाश्चैवसर्वस: ।२७
प्रणष्टे नृपवंशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टा: प्रजास्तावै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहा: ।२८

डेढ़ सौ और चार वर्ष देक तेरह होंगे । वृषलों के साथ म्लेच्छों से समुत्पन्न गुरुण्ड इस भूमि का उपयोग करेंगे ।२२। तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्र नृप इस भूमण्डल का उपयोग करेंगे और श्री पार्वतीय द्विपञ्चाशत वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा पर शासन करेंगे । उसी भाँति दश आभीर सड़सठ वर्ष तक इसका उपभोग करेंगे । समय आने पर उन सबके उत्पन्न हो जाने पर फिर इस मही मण्डल पर किलकिला नृप होंगे जो यहाँ पर काम से—अर्थ से और अधर्म से यवन होंगे । उन से मिले-हुए जनपद सब ओर आर्य्य और म्लेच्छ हो जांयगे । सब विपर्यय से बरताव करेंगे और प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायेगी । राजा लोग आम तौर पर बड़े ही लालची तथा मिथ्या भाषण करने वाले हो जांयगे । फिर ये सब आर्य तथा म्लेच्छ सब ओर में कल्कि के द्वारा निहत होंगे । जो भी उस समय में अधार्मिक और अत्यन्त ही पाखण्डी होंगे वे सब निहत हो जांयगे । इस तरह से नृपों के वंश के प्रनष्ट हो जाने पर और कलियुग के सन्ध्या भाग के बाकी रहने पर कुछ थोड़ीसी प्रजा के जन शिष्ट रहेंगे और वे भी धर्म्म के नष्ट हो जाने पर परिग्रह शून्य होंगे ।२३-२८।

असाधवो ह्यसत्वाश्च व्याधिशोकेन पीड़िता: ।
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सव: ।२९
अशरण्या: परित्रस्ता: सङ्कटं घोरमाश्रिता: ।
सरित्पर्वतवासिन्यीभविष्यन्त्यखिला: प्रजा: ।३०

पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः ।
वृत्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ।३१
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाकाले युगान्तके ।
निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ।३२
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षं सहस्रके ।
ससन्ध्यांशे सुनिःशेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते ।३३
एव वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो यो मया क्रमात् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।३४
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः ।
एवं वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ।३५

प्रजाजनों में सभी असाध वृत्ति वाले--सत्व से हीन तथा व्याधियों एवं शोकों से उत्पीड़ित होंगे । अनावृष्टि से अर्थात् वर्षा के पूर्णतया अभाव होने से सब लोग हत होंगे और सब लोग परस्पर में वध करने की इच्छा रखने वाले हो जायेंगे । सब रक्षक से रहित-भयभीत तथा परम घोर सङ्कटको प्राप्त करने वाले—मही, तरु और पर्वतों में निवास करने वाले सभी प्रजाजन उस भीषण एवं महान् दारुण समय से हो जायेंगे । भोजन के अभाव में सब लोग पत्ते--मल और फलोंके आहार करने वाले होंगे तथा चीर पत्र-कर्म के वस्त्र धारण किया करेंगे । सब लोग अपनी वृत्ति के प्राप्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण पृथिवी पर इधर उधर घूमने फिरेंगे । इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले प्रजा के समय में सभी इस कलियुग के साथ ही निःशेष हो जायेंगे । उस कलि-युग के क्षीण हो जाने पर दिव्य वर्ष सहस्र वाले सन्ध्यांश के समय में जो कि उस समय ये सुनिः शेष है कृतयुग ही प्राप्त हो जायगा ।२९-३३। इस रीति से मैंने यह वंश का क्रम पूर्ण रूप से तथा क्रम से आप सब लोगों के सामने कह दिया है । इस वंश क्रम में जो राजा लोग पहिले हो चुके हैं वे सब वर्तमान काल ने जितने भी विद्यमान हैं वे सब तथा जो भविष्य में होंगे वे सभी कीर्त्तित कर दिए गए हैं । महापद्म के अभिषेक से जब तक परीक्षित राजा का जन्म था एक सहस्र और आगे पञ्चाशत वर्ष समझने चाहिए ।३४-३५।

पौलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः ।
अनन्तरंशतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा ।३६
तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः ।
भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ।३७
सप्तर्षयस्तदाप्रांशु प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिभाव्यानां आन्ध्राणान्तु यदापुनः ।३८
सप्तर्षयस्तु वर्त्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।३९
सप्तर्षीणामुपर्यं तत् स्मृत वौ दिव्यसंज्ञया ।
समादिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ।४०
एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तुवः ।
सप्तर्षीणाञ्च यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि ।४१
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि ।
तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ताव्योम्नि शतं समाः ।४२

फिर पौलोम और आन्ध्र उस महा पद्मान्तर में अनन्तर आठ सौ छत्तीस वर्ष पर्यन्त समय था । तब तक परीक्षित नृप से लेकर आन्ध्रों के अन्त तक होगा । श्रुतर्षि पुराणों के ज्ञाताओं ने वे सब भविष्य में ख्यात किये हैं ।३६-३७। उस समय में प्रांशु प्रदीप्त अग्नि के समान सप्तर्षिगण ये होने वाले सत्ताईस आन्ध्रोंके जब फिर सप्तर्षिगण हैं जिस नक्षत्र मण्डल में पर्याय (पारी) से सौ-सौ सप्तर्षिगण स्थित रहा करते है । सप्तर्षियों के ऊपर में जो बताये गये हैं वे दिव्य संज्ञा से दिव्य वर्ष ही कहे गये हैं ! वे दिव्य वर्ष साठ और सात के साथ हैं ।३८-४०। इनसे सप्तर्षियों से दिव्य काल प्रवर्त्तित होता है । सप्तर्षियों के जो दो पूर्व में होने वाले निशा में उदित दिखलाई देते हैं उन दोनो के मध्य में जो नक्षत्र सम दिवलोक में दिखलाई देता है उससे व्योम में सौ वर्ष तक युक्त सप्तर्षिगण जानने के योग्य हैं ।४१-४२।

नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यंतन्निदर्शनम् ।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ।४३

ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशा भविष्यन्ति शतंसमा: ।
ततः प्रभृत्ययं सर्वोलोकोव्यापत्स्यते भृशम् ।४४
अनृतोपहतालब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
श्रौतस्मार्तेति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ।४५
सङ्कुरादुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः ।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्था शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ।४६
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः ।
क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ।४७
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन्कृष्णोदिवं यातस्तस्मिन्न वै तदाहनि ।४८
प्रतिपन्ने कलियुगे प्रमाणं तस्य मे शृणु ।
चतुः शतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः ।४६

नक्षत्रों के और ऋषियों के योग का यह निदर्शन है। परिक्षित काल में तो मघा से युक्त सप्तर्षिगण हैं। सौ वर्ष तक चालीस ब्राह्मण होंगे। तब से लेकर यह सब लोक अत्यन्त ही अधिक आपत्तिको प्राप्त होगा धर्म से और काम से हीन-अनृत से उपहृत-लुब्ध लोग होंगे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म एकदम शिथिल हो जाने पर वर्णों और आश्रमों के नष्ट होने पर दुर्बल आत्मा वाले परम मोह के प्राप्त हुई लोग संक-रता को प्राप्त हो जायेंगे ब्राह्मण लोग शूद्र योनियोमें स्थित हो जायेंगे और जो शूद्र होंगे वे मन्त्रयोनि वाले हो जायेंगे ।४३-४६। उसके अर्थके जानने की इच्छा वाले विप्रगण उन शूद्रों के समीप में समुपस्थित हुआ करेंगे। इसी क्रम से दिखलाई देंगे। अपने वर्ण के अन्तर को देने वाले युग के क्षय में क्षीण शेष सब क्षय को ही प्राप्त हो जायेंगे। उस दिन में भगवान् श्रीकृष्ण दिवलोक में अन्तर्हित होकर चले गयेथे उसी समय में और उस ही दिन में यह कलियुग प्रतिपन्न हो गया था। उसका प्रमाण अब आप मुझसे श्रवण करिये। बुधजनोंके द्वारा चार सौ सहस्र वर्ष अर्थात् चार लाख बताया गया है ।४७-४६।

चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यातं मानुषेण तु ।
दिव्यं वर्ष सहस्रन्तु तदा सङ्ख्या प्रवर्तते ।५०
निःशेषे तु तदा तस्मिन् कृतं वै प्रतिपत्स्यते ।
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्त्तिताः ।५१
इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तंभविष्यति ।
ऐलं क्षत्रं समाक्रान्तं सोमवंशविदोविदुः ।५२
एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।५३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्यते ।५४
देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाको यश्च ते मतः ।
महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ ।५५
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे ।
सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ।५६

मानुष ने बत्तीस हजार वर्ष संख्यात किया है। उस समय में दिव्य सहस्र वर्ष की संख्या प्रवृत्त होती है।५०। उस समय में उस कलियुगके निःशेष हो जाने परही कृतयुग प्राप्त हो जायगा। ऐल और सहदेव इक्ष्वाकु वंश प्रकीर्त्तित किये गये हैं। इक्ष्वाकु का संस्मृत क्षत्र सुमित्र के अन्त तक होगा। ऐल क्षत्र समाक्रान्त को सोम वंश के वेत्ता लोग जानते हैं। ये सब विवस्वान् के कीर्ति के वर्धन करने वाले पुत्र कीर्तित किये गये हैं जो व्यतीत हो चुके हैं—वर्तमान काल में विद्यमान हैं तथा जो अब तक अनागत हैं अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं।५१। ।५३। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तर में यह वंश समाप्त हो जाया करता है।५४। देवापि और पौरव राजा जो आप ऐक्ष्वाक मानतेहैं। ये दोनों महान् योग बल से समुपेत थे तथा कलाप ग्राममें आश्रय ग्रहण करने वाले थे। ये दोनों ही नवविंश चतुर्युग में क्षत्र के प्रणयन करने वाले थे। मनु का पुत्र सुवर्चा ऐक्ष्वाकों में सबसे आदि में होने वाला होगा।५५-५६।

नवविंशे युगे सांगी वंशस्यादि भविष्यति ।
देवापिपुत्र: सत्यस्तु ऐलानां भविता नृप: ।५७
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्येत चतुर्युगे ।
एवं सर्वेषु विज्ञेयं सन्तानार्थन्तु लक्षणम् ।५८
क्षीणे कलियुगे चैव तिष्ठन्तीति कृते युगे ।
सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुन: ।५९
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुन: ।
एवमेव तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ।६०
सप्तर्षयौनृपैः सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे ।
एव क्षत्रस्य चोत्सेधः सम्बन्धो वै द्विजैः स्मृत: ।६१
मन्वन्तराणां सन्ताने सन्तानाश्चश्रुतौस्मृता: ।
अतिक्रान्तयुगाश्चैव ब्रह्मक्षेत्रस्यसम्भवा: ।६२
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां यथाक्षय: ।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुस्त्वं क्षयोदयौ ।६३

नवविंश युग में वह वंश का आदि होगा । देवापि का पुत्र सत्य ऐलों का नृप होगा । भविष्य चतुर्युगमें ये दोनों क्षत्र के प्रवर्त्तक होंगे। इसी प्रकार से सबमें समस्त तथा जान लेना चाहिए । सबका समान अर्थ वाला लक्षण है ।५७-५८। कलियुग के क्षीण हो जाने पर कृतयुग में सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं । मध्य में त्रेतायुगमें पुन: उनके साथ रहते हैं ।५९। पुन: बीजके लिए वे होंगे । पुन: ब्रह्म और क्षत्र होंगे । इस प्रकार से सब तिष्यान्त अन्तरों में युग में सन्तान के लिए नृपों के साथ में सप्तर्षिगण होंगे । इस तरह में क्षत्र का उत्सेध द्विजों के साथ सम्बन्ध कहा गया है । मन्वन्तरों के सन्तानमें सन्तान श्रुतिमें कहे गये हैं । अतिक्रान्त युग वाले ब्रह्म और क्षत्र के सम्भव बताये गये हैं ।६०-६२। जिस प्रकार से उनकी प्रशान्ति और जिस तरह से प्रकृतियों का क्षय, ये दोनों क्षय और उदय सप्तर्षिगण उनके दीर्घायुस्त्व को जानते हैं ।६३।

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपा: ।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणः कलौ युगे ।६४
अनुयान्ति युगाख्यान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम् ।

जामदग्न्येन रामेण क्षत्रेनिरवशोषिते ।६५

रिक्तेयं वसुधासर्वा क्षत्रियंर्वसुधाधिपैः ।

द्विवंशकरण सर्वा कीर्तयिष्ये निबोध मे ।६६

त्वलञ्चेक्ष्वाकुवंशञ्च प्रकृति परिचक्षते ।

राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि ।६७

ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः ।

एषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ।६८

तावदेव तु भोजानां विस्ताराद्द्विगुणं स्मृतम् ।

भोजानां द्विगुणं क्षेत्रं चतुर्द्धा तद्यथातथम् ।६९

ते ह्यतीताः स नाम्नो ब्रुवतस्तान्निबोध मे ।

शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शत नागाः शतं हयाः ।७०

इस क्रम के योगसे ऐल और इक्ष्वाकु नृप त्रेता में उत्पद्यमान होते हैं और कलियुग में क्षीयमाण हुआ करते हैं ।६४। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है युगाख्या का अनुमान किया करते हैं । जामदग्नि (परशुराम) के द्वारा समस्त क्षत्रियोंके निरवशेषित होनेपर इस सम्पूर्ण वसुधाके स्वामी क्षत्रियों से यह समस्त वसुन्धरा रिक्त हो गई थी । सब द्विवंश करण को मैं कीर्त्तित करूँगा । उसे अब आप लोग मुझसे समझ लेवें ।६५-६६। ऐलवंश और ईक्ष्वाकु वंश प्रकृति के अनुकूल होते हैं । श्रेणीबद्ध राजा लोग तथा भूमंडल में क्षत्रियगण हैं । ऐलवंश वाले बहुत अधिक हैं और उस तरह से इक्ष्वाकु के वंश वाले नृप नहीं है । इन कुलों के पूर्ण एकशत अभिरोचित होता है । उतना ही विस्तार से भोजों का द्विगुण कहा गया है । भोजों का द्विगुण क्षत्र यथातथा है । ।६७-६९। वे सब अतीत हो गये हैं । उनके नामों को बतलाने वाले मुझसे आप लोग ज्ञान प्राप्त कर लेवें । एक सौ प्रतिविन्ध्यों के थे । सौ नागों के थे और एकशत हय थे ।७०।

शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः ।

शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम् ।७१

ततः शतञ्च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः ।

तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशविन्दवः ।७२

इष्टवन्तश्च ते सर्वो सर्वे नियुतदक्षिणाः ।
एवं राजर्षयोऽतीताः शतमथ सहस्रशः ।७३
मनु वैवस्वतस्यास्मिन् वर्तमानेऽन्तरेविभोः ।
तेषांतु निधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः ।७४
न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ।७५
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
ऐते देवगणैः सार्द्धं शिष्टा ये तान्निबोधतः ।७६
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भवितास्ते महात्मनः ।
अवशिष्टं युगाख्याते ततो वैवस्वतोह्ययम् ।७७

एकशत धृतराष्ट्र थे । अस्सी जन्मेजय थे । ब्रह्मदत्तों के एक शत थे जो कि महावीर हुए थे । कुरुगण शत थे ।७१। पञ्चाल एक शत थे और काशि कुशादिक एक सौ थे । जो नीप शशबिन्दु थे उसी भाँति दूसरे दो सहस्र थे ।७२। वे सब इष्टवान् थे और सभी नियुत दक्षिणा वाले थे इस प्रकार से राजर्षिगण सैंकड़ों तथा सहस्रों की संख्या से अतीत हो चुके हैं । ये सब विभु वैवस्वत मनु के वर्त्तमान अन्तर में थे । उनके निधन और उत्पत्ति में लोकों की संस्थितियाँ स्थित थीं । उनके सन्तान का परस्पर में विस्तार उनके पूर्वापर योग से एक सौ वर्ष में भी कहा नहीं जा सकता है ।७३-७५। ये अट्ठाईस वैवस्वत मन्वन्तर में समाख्यात किये गये हैं । ये देवगणों के साथ में जो शिष्ट हैं उनको भी समझलो ।७६। चालीस और तीन वे महान् आत्मा वाले होने वाले हैं । वे अवशिष्ट युगाख्य हैं उसके पश्चात् यह वैवस्वत है । ।७७।

एतद्वः कीर्त्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः ।
पुनरुक्तु बहुत्वात्तु न शक्यं विस्तरेण तु ।७८
उक्ता राजर्षयो येतु अतीतास्ते युगैः सह ।
ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते ।७९
कीर्त्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
लभते स वरान् पञ्च दुर्लभानिहलौकिकान् ।८०

आयुः कीर्ति धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते ।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः ।८१

यह संक्षेप और विस्तार के योग से भली भाँति आपको बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नहीं जा सकता है । राजर्षिगण बतलाये गये हैं वे सब युगों के साथ अतीत हो गये हैं वे जो ययाति के वंश में होने वाले हैं और जो विशाम्पति के वंश हैं वे द्यु तिमान् सब कीर्त्तित कर दिये गये हैं इनको जो नर धारण करताहै वह पाँच लौकिक दुर्लभ वरोंको प्राप्त किया करता है आयु, कीर्त्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है । उस धीमान् को इनके धारण करने से, श्रवण करने से स्वर्ग में परम पद प्राप्त हुआ करता है ।७८-८१।

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।
मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ।८२
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् ।
एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ।८३
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ।८४

यहाँ तक विश्व स्वरूप भगवान् मत्स्य का कहा हुआ पुराण कह दिया गया तो समस्त धर्म, अर्थ, काम का सिद्ध करने वाला है ।८२। यह पवित्र महा पुराण आयु और कीर्त्ति की वृद्धि करने वाला और परम कल्याणजनक है । बड़े से बड़े पाप भी इसके द्वारा दूर हो जाते हैं ।८३। जो कोई इस पुराण का एक श्लोक भी पढ़ेगा वह पाप से विमुक्त हो जायगा और भगवान् की कृपा से देवताओं के समान दिव्य सुखों का उपभोग करेगा ।८४।

॥ मत्स्य-पुराण द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

==